राग - विराग
की
सरल व्याख्या

[डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित महाकवि निराला के कविता-संकलन राग-विराग का विस्तृत व्याख्यत्मक अध्ययन]

आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र
एम०ए०, साहित्यरत्न

प्रमुख विक्रेता
VIDYA MANDIR
(Hindi Book Centre)
588, Avenue Road
BANGALORE-2

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य भण्डार
५५, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३.

मुद्रक : रचना आर्ट प्रिंटर्स
९१, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३.

संस्करण : १९७६

मूल्य : आठ रुपये मात्र

विषय सूची

राग-विराग की सरल व्याख्या

* संदर्भ * शब्दार्थ * व्याख्या * टिप्पणी * तुलनात्मक दृष्टि

१—रँग गयो पग पग धन्य धरा (पृष्ठ ४३)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में महाप्राण निराला ने प्राकृतिक सुषमा का चित्रण करते हुए धरती के प्रकृति वैभव की झाँकी अंकित की है।

शब्दार्थ—पग-पग = प्रत्येक चरण। धरा = धरती, पृथ्वी। मनोहरा = मन को अच्छी लगने वाली, बहुत सुन्दर। मरन्द = मकरन्द, सुगन्ध। अरुणिमा = लालिमा। सुपरिसरा = खूब फैली हुई। पिक पावन पंचम = कोयल का पवित्र पंचम स्वर। खग-कुल-कलरव = पक्षियों के समूह का मधुर शब्द। मृदुल = कोमल। मनोरम = सुन्दर। चारुतर = अधिक सुन्दर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि धरती का प्रत्येक चरण अर्थात् प्रत्येक स्थल सौन्दर्यपूर्ण जान पड़ता है और अब तो सम्पूर्ण पृथ्वी प्रकृति वैभव से जगमगाती सी मनोमुग्धकारी प्रतीत होती है।

कवि का कहना है कि धरती पर चारों ओर सुगंध सी उड़ रही है और पेड़ों के हृदय की कोमल लालिमा दूर तक फैली हुई है तथा सुन्दर-सुन्दर कलियाँ भी खिल रही हैं।

कवि कहता है कि कोयल का पंचम स्वर सुनाई दे रहा है और पक्षियों का समूह भी मधुर कलरव कर रहा है तथा अत्यन्त सुन्दर वन श्री अर्थात् वन की शोभा भी सुख के भय से काँप रही है। वस्तुतः अत्यधिक सुख भी मन में संशय उत्पन्न करता है अतः सुख के भय से यहाँ वनश्री का काँपना स्वाभाविक ही कहा जायगा।

टिप्पणी—यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो काव्य का कारण प्रतिभा ही है और नयी-नयी स्फूर्ति, नव-नव उन्मेष तथा नवीन सूझ ही प्रतिभा को कहते

हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने तो 'रसगंगाधर' में यही कहा है कि 'साच काव्य घटनानुकूल शब्दार्थोपस्थिति' अथात् प्रतिभा शब्द और अर्थ की उपस्थिति द्वारा ही काव्य क [illegible] [illegible] [illegible] है इस प्रकार 'राग-विराग' में संकलित निराला का यह गीत उनकी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का ही परिचायक है।

२—अमरण भर वरण-गान (पृष्ठ ४३-४४)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत प्रकृति वर्णन सम्बन्धी है और इसमें वसंत ऋतु का भी अत्यंत मनोरम चित्रण किया गया है।

शब्दार्थ—अमरण = न मरने वाला, अविनश्वर, अमर। वरण-गान = स्वागत गीत। उपवन = बाग, उद्यान। वसन = वस्त्र, कपड़ा। विमल = स्वच्छ। तनु वल्कल = देह या शरीर में धारण की गयी पेड़ की छाल। पृथु = पीन, मांसल। सुर पुल्लव दल = सुन्दर वृक्ष के पत्ते। दृग = नेत्र। मधुप निकर = भ्रमर समूह। पिक प्रिय स्वर = कोयल की मधुर कूक। स्मर = कामदेव, मदन। शर = वाण। मधुपूरित = मधुपूर्ण।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि चारों ओर वन उपवन अर्थात् बाग, बागियों और जंगलों में प्रकृति की अनुपम शोभा विद्यमान है तथा ऐसा जान पड़ता है कि ऋतुराज वसंत का आगमन हो रहा है। अतएव उसके—वसंत के—स्वागत के लिए कभी न समाप्त होने वाला स्वागत गीत गाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि प्राकृतिक सुन्दरता में वृद्धि करने वाले वसन्त का स्वागत करने के लिए हम सबको तैयार हो जाना चाहिए।

कवि कह रहा है कि अब तक जो वृक्ष सूखे से थे और पत्र विहीन जान पड़ते थे, उनमें भी सुन्दर पत्ते निकल रहे हैं। अर्थात् चारों ओर वृक्षों के सुन्दर सुकोमल पत्ते दृष्टिगोचर होते हैं तथा भ्रमर समूह मधुर गुंजार कर रहा है। साथ ही कोयल की मधुर कूक ही उस प्राकृतिक वन्य छवि का मधुर गीत है अर्थात् कोयल वन में सुमधुर गीत गा रही है और कामदेव के बाणों का प्रभाव मंद करने वाली मधुपूर्ण केशर की सुगन्ध चारों ओर

निर्भूरित हो रही है अर्थात् केशर की सुगंध में कामदेव के वाणों से अधिक मादकता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत में प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किया गया है और कवि ने चित्रकार की भाँति अपनी लेखनीरूपी तूलिका की कुशलता प्रदर्शित करते हुए मानवीय मनोभावनाओं का सजीव चित्रण किया है।

३—सखि बसन्त आया (पृष्ठ ४४-४५)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में वसन्त ऋतु के आगमन का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ—नवोत्कर्ष=नवीन उत्थान। किसलय वसना=नवीन पत्तों के वस्त्रों वाली। नववय-लतिका=नवोत्पन्न या हाल ही में बढ़ती हुई बेल। मधुप वृन्द=भ्रमरों का समूह। नभ=आकाश। लता-मुकुल=लता और कलियाँ। गंधभार=सुगंधि का बोझा। माया=आकर्षण। आवृत=घिरे हुए। सरसी=तड़ाग, तालाब। सरसिज=कमल। स्वर्ण-शस्यत्र-अंचल=सोने के समान पीली फसलों से युक्त अंचल।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि वसंतऋतु आ गयी है और अब वन का मन हर्ष पूर्ण हो गया है तथा उसके जीवन में नवीन उत्थान अर्थात् आशाएँ छा गयी हैं। इसका अर्थ यह भी किया जा सकता है कि वसंत ऋतु के आगमन से जिस प्रकार वन में चारों ओर हर्ष छा गया है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के जीवन में नवोत्थान छा गया है।

कवि वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कहता है कि नवीन पत्तों के वस्त्रों वाली नवोत्पन्न बेल अपने मधुर प्रिय तरु के हृदय से मिल गई है और भ्रमर समूह कमल की पंखुड़ियों में बंद हो गया है तथा कोयल का स्वर आकाश में सरसता की वृष्टि कर रहा है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि वसंत ऋतु के आगमन से प्रकृति में चारों ओर सरस अनुराग की भावना फैल गयी है।

कवि वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कह रहा है कि लता, कलियाँ और हरसिंगार के बोझ से पूर्ण पवन मंद-मंद गति से प्रवाहित हो रहा है तथा चारों ओर वन के यौवन का आकर्षण छा गया है। इसका अर्थ यह है कि वन की अपार सुषमा अनायास ही प्रत्येक प्राणी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

कवि वसंत ऋतु के प्रकृति वैभव का वर्णन करते हुए कहता है कि चारों ओर से घिरे हुए तालाब के हृदय में कमल विकसित हो उठे हैं अर्थात् तालाब में कमल खिल रहे हैं। साथ ही केशर से युक्त कली के केश बिखर गए हैं अर्थात् कलियाँ खिल गई हैं और धरती का स्वर्ण सदृश्य पीली फसलों से मुक्त आंचल लहराने लगा है अर्थात् फसलें पक गई हैं।

टिप्पणी—समीक्षकों का कहना है कि निराला के ऋतु गीत हमारे काव्य साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं और प्रस्तुत गीत इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें वसन्त ऋतु के आगमन का अत्यंत मनोरम वर्णन किया गया है और कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से यह बतलाया है कि किस प्रकार वसंत ऋतु में सर्वत्र हरियाली छा जाती है, नबीन पत्ते विकसित होने लगते हैं, सुगंधित मधुर पवन प्रवाहित होने लगती है, कमल विकसित हो उठते हैं तथा अनाज की फसलें पक जाती हैं।

तुलनात्मक दृष्टि—रीतिकालीन कवि पद्माकर ने भी वसंत के आगमन का अलंकारिक वर्णन करते हुए कहा है—

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्त है।
कहै पदमाकर परागन में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पगन्त है॥
द्वार में, दिसान में, दुनी में, देस देसन में,
देखौ दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में बागन में बगरयो बसन्त है॥

४–(प्रिय) यामिनी जागी (पृष्ठ ४५)

सन्दर्भ—प्रस्तुत गीत में रात्रि का चित्रण एक सद्यः जागृत (सोकर तुरन्त उठी हुई) नायिका के रूप में किया गया है।

शब्दार्थ—यामिनी = रात्रि। अलस = अलसाये हुए। पंकज दृग = कमल के समान नेत्र। अरुण मुख = लाल मुख। तरुण अनुरागी = युवा पुरुष से प्रेम करने वाली। पृष्ठ ग्रीवा बाहुउर पर = पीठ, गर्दन, बाँह और हृदय पर। अपर = दूसरा। दिनकर = सूर्य। तन्वी = कृशांगी। तड़ित द्युति = बिजली की चमक। हेर = देखकर। उरपट = अंचल। चतुर्दिक = चारों दिशाओं में। मराल = राजहंस। गेह = घर। मुक्ता = मोती।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि प्रिय यामिनी अर्थात् रात्रि जाग गई है और उसके कमल के समान नेत्र अलसाए हुए हैं तथा मुख लाल है। वस्तुतः कवि ने यहाँ मानवीकरण की सहायता से रात्रिरूपी युवा नारी के जागने का वर्णन किया है और उसने यहाँ यह भी कहा है कि वह रमणी युवा पुरुष से प्रेम करती है अर्थात् युवकों को प्रिय है।

कवि रात्रिरूपी सद्यः जागृत नायिका का वर्णन करते हुए कहता है कि उस रमणी के खुले हुए केश सम्पूर्ण शोभा को धारण कर उसकी पीठ, गर्दन, बाहु एवम् हृदय पर पड़े हुए हैं और उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो बादलों में घिरा हुआ दूसरा सूर्य चमक रहा हो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उस युवा रमणी का गोरा शरीर काले-काले बादलों में उसी प्रकार चमक रहा है जिस प्रकार काले-काले बादलों के मध्य प्रातःकालीन सूर्य चमकता है। कवि पुनः उस रात्रि रूपी सद्यःजागृत नायिका का वर्णन करते हुए कहता है कि वह कृशांगी रमणी, ज्योति का रूप है अर्थात् ज्योतिवान है और उसके सामने बिजली की ज्योति भी क्षमा माँगती है। इसका अर्थ यह है कि बिजली का प्रकाश भी उस नारी की शारीरिक आभा के सामने तुच्छ है।

कवि कह रहा है कि वह रात्रिरूपीसद्यःजागृत नायिका अपने हृदय पर पड़े हुए आँचल को देखती हुई, मुख पर पड़े हुए बालों को पीछे समेटकर अपने

चारों ओर देखती हुई राजहंस की मंद गति से चल रही है। कवि का कहना है कि उसकेहृदय रूपी मंदिर में प्रिय प्रेम की जयमाल है और वह वासना की मुक्ति है अर्थात् उसमें वासना का अभाव है तथा वह मोतियों के त्याग में लगी हुई है।

टिप्पणी—इस गीत में रूपक, अनुप्रास और व्यतिरेक नामक अलंकारों की सफल व्यंजना हुई है तथा यह कविता निराला की श्रेष्ठतम कविताओं में गिनी जाती है। एक विचारक के कथनानुसार 'गीतों के शाश्वत विषय प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति गीतिका के गीतों में सर्वाधिक है, जिसमें लोकगीतों का प्रकृत संवेदना और तीव्रता है। (प्रिय) यामिनी जागी श्रृंगार का एक निर्वैयक्तिक रूप प्रस्तुत करता है। इसमें सौन्दर्य की चेतना मन की बाह्य और आभ्यंतर सत्ता को ग्रहण करती है, फिर भी वासनात्मक नहीं है। सौन्दर्य का यही चित्र स्पंदित, उज्जवल और निर्मल है। नारी का यह मानवीकृत चित्र प्रकृति के आरोपण से उभरता है और साथ ही एक अतीन्द्रियता का आभास देता है। निराला का यह भावाक्षिप्त चित्रण बेजोड़ है।''''''नायिका की छोटी से छोटी मुद्रा भी इस चित्र में छूट नहीं पायी है और गति चित्र को काव्य में उतार दिया गया है। खुले केश अशेष शोभा भर रहे, पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर उतर रहे से प्रतीत होता हैं कि नायिका ने सिर को झटककर बालों को विखेर दिया है और पीठ, गर्दन, भुजा पर वे बिखर गये हैं। आँखों की ललाई, बालों से आवृत्त मुख की दीप्ति और लख चतुर्दिक में नायिका की क्रियाओं की स्वाभाविकता चित्रित है और बादलों में घिर अपर दिनकर रहें से काले बादलों के बीच से उद्भासित होते हुए सूर्य का प्रकाश ही इस गीत का केन्द्र है। प्रकृति के पक्ष में यह नैश जागरण का प्रभात कालीन चित्र है। सौन्दर्य चित्र में वासना की मुक्ति का संदेश है। आचार्य वाजपेयी का कथन है कि इस जैसे पद में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारणा हुई है। यहाँ भी श्री निराला का नारी दृष्टिकोण स्वस्थ और निर्लिप्त है। सूक्ष्म और दिव्य ऐसे निराला के चित्र एकाधिक हैं। शब्दों का ऐसा चित्र इस युग में विरल है

५–मौन रही हार (पृष्ठ ४६)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत प्रणय सम्बन्धी ही है पर उसमें अनूठी रहस्यात्मकता भी है।

शब्दार्थ—मौन रही हार=हार कर मौन हो गई। प्रिय पथ=प्रिय के मार्ग पर अर्थात् प्रिय से मिलने के लिए। रव=ध्वनि, आवाज। किंकिणी=करधनी, कमर में पहनने का एक गहना। नूपुर=पायल।

व्याख्या—कवि यहाँ एक ऐसी युवती का वर्णन कर रहा है जो अपने प्रिय से मिलने जा रही थी पर वह जो आभूषण धारण किए हुए थी वे उसके चलने से बजने लगते थे और इससे यह मालूम हो जाता था कि वह अपने प्रिय से मिलने जा रही है। यहाँ यह ध्यान में रखना होगा कि वह युवती यह नहीं चाहती थी कि प्रिय के पास उसके जाने की बात किसी को भी ज्ञात हो पर जब उसके आभूषणों ने उसके इस कार्य को गुप्त न रहने दिया तब वह हार कर मौन हो गयी।

कवि कहता है कि उस युवती के कंकण, किंकिणी एवं नूपुर आदि आभूषण जब उस युवती के चलने से बजने लगते तब उसके हृदय में लज्जा उत्पन्न होती और वह लौट पड़ती लेकिन उसी समय उसकी पायल और भी अधिक जोर से आवाज करने लगती। इस प्रकार उस युवती के वापिस लौटने की बात उसके प्रियतम को मालूम हो जाती और उसका प्रियतम यह जान जाता कि उसकी प्रियतमा उसके पास आ रही थी पर वह द्वार के समीप से ही वापिस लौट गयी।

कवि कह रहा है कि उस युवती के आभूषण उसके चलते समय जिस प्रकार बज रहे थे अब उसके उसी प्रकार मार्ग में ही रुक जाने से अब उसके सजे हुए हृदय के तार भी झंकृत होने लगे अर्थात् वह युवती सोचने लगी कि जब प्रिय ने मेरे आभूषणों की आवाज सुन ली है तो अब मैं और कहाँ जाऊँ क्योंकि मुझे तो अपने प्रिय चरणों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शरण न मिलेगी। इसका अर्थ यह है कि वह युवती प्रिय के पास पहुँचना ही उचित

समझती है क्योंकि उसके वापिस लौटने से उसकी प्रेमसाधना की उज्जवलता भंग हो जाने का डर है ।

टिप्पणी—सरल सुबोध शब्दावली में अपूर्व भाव व्यंजना की दृष्टि से यह गीत निस्संदेह सराहनीय है और इसमें प्रेमभावना का भी उत्कृष्ट चित्रण है ।

६—नयनों के डोरे लाल……(पृष्ठ ४६-४७)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में होली का सुन्दर मनोमुग्धकारी चित्रण करते हुए कवि ने प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत कर शृंगार के संयोग पक्ष का सुन्दर चित्रण किया है ।

शब्दार्थ—रति=संयोग क्रीड़ा । कंज छवि=कमल की शोभा । उरोज =वक्ष । एक वसन=एक ही वस्त्र में । अधर=होठ । दशन=दाँत । मधु ऋतु रात=बसंत ऋतु की रात्रि । पट=पर्दा, वस्त्र । ठठोली=मसखरापन, एक प्रकार की मजाक ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि नायिका ने अपने प्रिय के साथ उल्लासपूर्ण हृदय से होली खेली और गुलाल के कारण उसके नेत्र लाल हो गए । कवि का कहना है कि वह नायिका अपने प्रिय के साथ रति क्रीड़ा में भी संलग्न रही और वह सारी रात जागकर प्रेम रस का पान करती रही तथा दीपक के प्रकाश में अपने कमल के सदृश्य सुन्दर मुख से मुस्कराती रही पर उस मुख का भी प्रिय ने चुम्बन लेकर उसे खुलकर हँसने भी न दिया ।

कवि कहता है कि प्रिय के हाथों द्वारा बार-बार उस युवती के उरोजों का स्पर्श किए जाने से उसकी चोली भी कसक कर रह गयी अर्थात् वह चोली उस युवती के शरीर से अलग-सी हो गयी और अब वह रमणी केवल वस्त्र ही पहने हुए रह गयी तथा उसके मन्द-मन्द मुस्कराने से ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उसके दाँत कली के समान हों । कवि ने यहाँ रति क्रीड़ा का यथातथ्य चित्रण किया है अक वसना से उसका अभिप्राय यह है कि उस युवती के शरीर

से चोली अलग हो जाने से वह केवल एक साड़ी मात्र पहने हुए दिखाई देने लगी।

कवि का कहना है कि इस वसंत ऋतु की रात्रि में उन दोनों—नायक-नायिका—ने अधरोंरूपी मदिरा का पान कर अपनी सुधबुध खो दी है और रति क्रीड़ा में निरन्तर संलग्न रहने से अब उनकी केश राशि तो बिखरी हुई है पर नेत्र की पलकें मुँदी हुई हैं तथा ऐसा जान पड़ता है कि मानो उसके परिश्रम की कोई सीमा ही न रही हो। कवि यहाँ यह भी कहता है कि उस नायिका की छवि रति के समान जान पड़ती है अर्थात् वह कामदेव की पत्नी के समान सुन्दर प्रतीत हो रही है।

कवि कह रहा है कि रति क्रीड़ा में संलग्न उन दोनों—नायक-नायिका—की रात्रि सुखद वार्तालाप में ही व्यतीत हो गयी और जब प्रातःकाल पवन प्रवाहित होने लगा तब वह नायिका अपने बालों को समेटती हुई सेज से उठी तथा वस्त्रों को ठीक करके दीप बुझाकर हँसते हुए उसने प्रिय से कहा कि यह एक अच्छी ठठोली रही। उस नायिका के इस कथन से ऐसा आभास होता है कि वह स्वयं रति क्रीड़ा के लिए पहले से प्रस्तुत नहीं थी पर प्रिय ने उसे अचानक ही यह सुख प्रदान किया अतः वह इसे एक प्रकार की ठिठोली ही मानती है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में शृंगार के संयोग पक्ष का चित्रण करते समय कवि ने रति क्रीड़ा का वास्तविक चित्रण किया है और इस प्रकार कहीं-कहीं अश्लीलता की भी झलक दीख पड़ती है। हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी उचित समझते हैं कि विचारक काम व प्रेम में विभिन्नता मानते हुए भी प्रेम को कामदेव का धनुष मानते हैं तथा काम शब्द पहले न केवल प्रेम ही वैदिक-रूप था अपितु इससे भी अधिक व्यापक समझा जाता था। श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी के शब्दों में 'शृंगार रसाचार्यों के मत से तो सृष्टि सृजन-कारी रति भाव के कारण ही सुधांशु अपने रूप लावण्य को पराकाष्ठा पर आकर समुद्र का हृदय डाँवाडोल कर देता है। बाल सूर्य की कोमल किरणें कमलों का द्वार खोल देती हैं। कोकिला की कूक में वसुधा का अभाव भरा

शृंगार परिलक्षित होता है सच तो यह है कि शृंगार और सौन्दर्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है।'

७—जागृति में सुप्ति थी (पृष्ठ ४७-४८)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'जागृति में सुप्ति थी' कविता में एक सोती हुई नायिका का भावपूर्ण चित्रण किया है।

शब्दार्थ—जागृति = जागरण। सुप्ति = निद्रित, सोती हुई। बहुरंग = अनेक रंग के। विहग से = पक्षी के समान। सुरा = शराब, यहाँ मादक से अभिप्राय है। क्षुब्ध = अधीर, चंचल। सरोवर = तालाब। प्रगल्भ = अधिक बोलनेवाला, वाचाल। मृदु = कोमल। जग = संसार। अरुण = लाल, रक्तवर्ण। क्लांति = श्रम, थकान।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि नेत्रों में स्वप्न बसाये हुए और पक्षी के अनेक रंग के पंखों के समान अपने पंखों को खोलकर मादक स्वर प्रिया के अधरों में उसी प्रकार सो चुका था जिस प्रकार शांत सरोवर में कोई मौन तरंग निश्चल हो गयी हो। कवि कहता है कि लाज के कारण सुहाग का मान के द्वारा वाचाल प्रिय के प्रणय निवेदन का वह मंद और कोमल हास जागरण के जगत को सज्जित कर विलुप्त हो गया तथा वह लाजमयी चेतना भी थक कर अरुण किरणों में समा गयी। कवि का कहना है कि उस जाग्रत प्रभात में भी किसी प्रकार की शांति नहीं थी बल्कि उस जाग्रति में सुप्ति थी और जागरण में एक प्रकार की थकान का अनुभव भली भाँति हो रहा था।

टिप्पणी—वस्तुतः 'जागृति में सुप्ति थी' कविता शृंगारिक कविता ही है और विचारक यही कहते हैं 'विहंग के बहुरंगों की भाँति स्वप्नों से आच्छादित प्रिया के नेत्र बन्द थे। सरोवर में उठी लघु लहरी के समान प्रिया के मौन अधरों में सुरा मादक स्वर सो चुका था। इस प्रकार निद्रा का लीन सौन्दर्य के सूक्ष्म अंकन के पश्चात् प्रिया के जागरण का स्वप्न-समाधि-भंग वर्णित है। सुप्ति और थकान के हटते ही सपने बिखर गये, यह दुखद हुआ। कविता में एक आध्यात्मिक संकेत भी निहित है। ब्रह्म ही प्रिय है।' इसी

प्रकार समीक्षक यह भी कहते हैं 'जागृति में सुप्ति थी' में सोई हुई प्रिया के मौन अधरो पर गान से प्रगल्भ प्रिय प्रणय निवेदन के स्वर तथा नयनों में जड़े हुए बहुरंगी स्वप्नों का संवेदनात्मक और रहस्यात्मक चित्र।

८–जुही की कली (पृष्ठ ४८-४६)

संदर्भ—'जुही की कली' कवि निराला की सर्वप्रथम कविता है और इसकी रचना अर्द्ध रात्रि के समय महिषादल में श्मशान में हुई थी। 'जुही की कली बंगाल में वसंत और उत्तर प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु में खिलती है तथा इसी जुही की कली का मानवीकरण इस कविता में किया गया है। इस प्रकार पवन नायक है और जुही की कली नालिका है तथा इस कविता में प्रकृति का चित्रण संयोग शृंगार की भूमिका पर आध्यात्मिक स्तर पर हुआ है। स्वयं कवि के शब्दों में जुही की कली तथा पवन नायक का मिलन 'तमसो मा ज्योतिर्मय' की काव्य में उतारी गई तस्वीर है।'

विजन वन वल्लरी·········· मलयानिल। (पृष्ठ ४८)

शब्दार्थ—विजन=एकान्त, निर्जन। वन वल्लरी=उपवन की लता। सुहाग भरी=सौभाग्यवती। अमल=स्वच्छ, निर्मल। तनु=तन, शरीर। तरुणी=युवती। दृग=नेत्र। वासन्ती निशा=वसंत की रात्रि। विरह विधुर =वियोग की अग्नि से विदग्ध। मलयानिल=मलयपर्वत से चलनेवाली वायु, सुगन्धित पवन।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि अर्द्ध रात्रि की नीरवता और निस्तब्धता के मध्य निर्जन एकान्त वन की एक लता पर बिछे पत्तों की शय्या पर वह जुही की कली प्रगाढ़निद्रा में मग्न थी। साथ ही सौभाग्यवती सुन्दरी और कोमल वदना तरुणी के सदृश्य वह पूर्ण यौवना कली भी अपने प्रिय के प्रेम में पगी और उसकी मधुर क्रीड़ाओं तथा स्नेहयुक्त प्रेमालापों से युक्त स्वप्न का आनन्द ले रही थी।

कवि का कहना है कि इस गौरववर्णा जुही की कली रूपी युवती की देह सुकोमल थी और वह प्रियतम की याद कर थक चुकी थी तथा शिथिल होकर

गम्भीर निद्रा में लीन हो गयी पर प्रगाढ़ निद्रा के बीच भी वह प्रिय को भुला नहीं पाई। इस प्रकार जाग्रतावस्था का स्मरण और चिंतन गम्भीर निद्रा के मध्य स्वप्न बनकर आया। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रिय के बिना उसका मुख अविकसित अर्थात् खिला हुआ नहीं था और कवि ने भी उसे कली कहा है। साथ ही दूर परदेश स्थित नायक मलयानिल भी अपनी प्रिया का वियोग अत्यन्त कठिनाई से झेल रहा था।

कवि कह रहा है कि वह वसंत की रात्री थी और चारों ओर कादकता छायी थी जिसके कारण विरह का उद्दीपन रह-रह कर बढ़ रहा था। साथ ही मलयानिल की प्रिया उसे स्मरण कर सो गयी और स्वप्न में भी वह उसी की क्रिया कलापों तथा मधुर प्रेरणाओं को देख रही थी। इस प्रकार एक ओर अपने ही निवास में प्रोषित पति का नायिका परदेशस्थित प्रियतम को स्मरण कर रही थी और दूसरी ओर परदेश स्थित प्रियतम भी विरह विकल हो उठा था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में पवन को नायक और जुही की कली को नायिका के रूप में अंकित कर कवि ने प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से भौतिकजगत में रंगरूपों एवं मानवीय क्रिया व्यापारो का सजीव चित्रण किया है। यह अवतरण छायावादी काव्यशिल्प का सुन्दर उदाहरण है और कवि ने जुही की कली को 'अमल कोमल तनु तरुणी' तथा पवन को 'विरह मधुर मलयानिल' कहकर दोनों का मानवीकरण किया है। साथ ही यह पद्यांश तत्सम समास-निष्ठ कोमलकांत पदावली से युक्त है और इसमें माधुर्य गुण की छटा भी विद्यमान है तथा सार्थक एवं साभिप्राय शब्द योजना के भी दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ निशा शब्द के प्रयोग से अर्द्धरात्रि और तीसरे पहर के बीच का वातावरण मूर्त्तिमंत हो उठता है तथा 'पत्रांक' शब्द तरुणी नायिका जुही की कली की कोमलता और स्निग्धता को एकदम से उभारकर रख देता है। साथ ही 'सोती थी दृग बन्द किये' और 'प्रिया संग छोड़' आदि के प्रयोग से नाटकीयता और गत्यात्मक बिम्ब की भी सृष्टि हो गई है तथा वातावरण

चित्रण में भी सजीवता है। इसी प्रकार अनुप्रास और मानवीकरण अलंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

यायी याद बिछुड़न·········खिली साथ। (पृष्ठ ४८-४९)

शब्दार्थ—कान्ता=स्त्री, रमणी, प्रेमिका। कम्पित=काँपती हुई। कमनीय गात=सुन्दर शरीर। गहन गिरि कानन=गहरे या बीहड़ पर्वत और वन। कुंज लता पुंज=वन वाटिका का लता समूह। केलि=प्रेम क्रीड़ा।

व्याख्या—कवि ने 'स्नेह स्वप्न मग्न' और 'अमल कोमल तनु तरुणी' नायिका जुही की कला की दशा का चित्रण करने के पश्चात् प्रिया संग छोड़, किसी दूर देश में स्थित, विरह विधुर, नायक पवन की विह्वलता और प्रेमातुरता का चित्रण करते हुए कहा है कि आज वसंत की स्वच्छ ज्योत्स्ना-मयी मादकतापूर्ण रात्रि में पवन को प्रियतमा की स्मृति अधिक व्याकुल करने लगी। अतएव आज के सुरम्य वातावरण में उसे अपने संयोगकालीन विगत क्षणों का स्मरण होने लगा और उसमें कामोद्दीपन की सृष्टि होने लगी तथा उसके नेत्रों के समक्ष एक-एक कर अभिसार के सभी दृश्य सजीव होकर उपस्थित होने लगे। इस प्रकार अब उसे अपनी विरहावस्था में कभी न समाप्त होने की इच्छा करनेवाली मधुर बातें स्मरण हो रही थीं और चाँदनी से धुली श्वेत स्निग्ध स्वच्छ शीतल अर्द्धरात्रि की बेला पुनः उपस्थित होकर गलबाहीं डाले प्रेमी युगल की मधुर प्रेम क्रीड़ा के दृश्य उसके नेत्रों के समक्ष समाप्त होने लगे।

कवि का कहना है कि पवन को अभिसार की बेला के समय का मधुर प्रेमालाप, ज्योत्स्नास्नात निर्मल रात्रि और प्रियतमा का कंपित शरीर आदि की स्मृतियाँ प्रिया से जा मिलने को आतुर करने लगीं तथा वह अपने को न सँभाल सका और इन समस्त स्मृतियों ने पवन को अपनी प्रियतमा जुही की कली से मिलने को विवश कर दिया। इस प्रकार पवन अपनी इस मिलनो-त्कंठा को न दबा सका और आवेगवश वह उद्विग्न एवं अधीर हो प्रियतमा से मिलने तीव्रगति से चल पड़ा। साथ ही प्रिया मिलन की उत्सुकता और

आवेग के कारण पवन को मार्ग की कठिनाइयों एवं बाधाओं का भी ध्यान नहीं आया और वह उन सबको तुच्छ समझता हुआ तीव्र गति से आगे बढ़ा।

कवि कह रहा है कि पवन के मार्ग में कितने ही नदी, नाले, पहाड़, जंगल, खाई और काँटे आदि थे पर उसे इन बाधा विघ्नों की कोई चिन्ता न थी। वह तो अत्यंत सहज भाव और आवेग के साथ समस्त उपवन-सरिस-सर, गहन गिरि कानन और कुंजलता पुंजों को पार करता हुआ अपनी प्रेयसी कली के पास पहुँच गया। इस प्रकार पवन ने अपनी प्रियतमा जुही की कली के साथ केलिक्रीड़ा की और उस कली का मुरझाया हुआ मुख अब प्रसन्नता से खिल उठा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रेमी की विरव विह्वल मनोदशाओं का चित्रण किया है और प्रेमी हृदय में मिलन की आकुलता, पथ की बाधाओं तथा प्रिय की गति की तीव्रता आदि को न केवल सूचित किया है बल्कि भावोद्वेगों का सजीव अंकन और स्पष्ट गत्यात्मक बिम्ब का निर्माण भी किया है। साथ ही इन पंक्तियों में विशुद्ध प्रकृति सौन्दर्य की झाँकी भी विद्यमान है और मानवीकरण अलंकार का भी सफल प्रयोग हुआ है।

सोती थी·········कौन कहे ? (पृष्ठ ४९)

शब्दार्थ—कपोल = गाल। हिंडोल = झूलना, हिलना। वंकिम = कुछ टेढ़ा या तिरछा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि विरह व्याकुल कामातुर अधीर पवन मार्ग की सभी बाधाओं को पार कर प्रियतमा जुही की कली के पास पहुँचा पर उसे कुछ क्षणों के लिए रुकना पड़ा क्योंकि कली प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थी। कवि का कहना है कि संभवतः वह कली स्वप्न में प्रियसमागम के आनन्द का उपभोग कर रही थी पर उसे यह अनुमान न था कि वह जिनका स्वप्न देख रही है, वे प्रियतम उसकी शय्या के समीप ही पहुँच गए हैं और वह प्रिय के आगमन को न जान सकी।

कवि कहता है कि प्रियतमा को जगाने के लिए अधीर नायक ने उसके गाल चूम लिए और इस चुम्बन के कारण लता झूले की भाँति झूल उठी पर उस प्रियतमा कली पर इस चुम्बन का कोई प्रभाव न हुआ। कवि का कहना है कि वह कली अपने विशाल वक्र नेत्रों को मूँदकर सोयी रही और उसने प्रियतम का स्वागत न करने की भूल के लिए क्षमा भी नहीं माँगी तथा अपने नेत्र मूँदे रही। कवि कह रहा है कि उस जुही की कली की यह अवस्था देखकर ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह यौवन की मदिरा पीकर आज मदहोश हो गयी है। कहने का अभिप्राय यह है कि कली ने यौवन की मदिरा इतनी अधिक पीली थी कि उसे अब बाह्य जगत की कोई सुधि ही न थी और वह अपने विशाल बाँके नेत्रों को मूँदकर प्रगाढ़ निद्रा में मग्न थी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अत्यंत स्पष्ट एवम् सजीव बिम्ब चित्रण किया गया है और अर्थ की व्यंजकता, प्रभावोत्पादकता एवम् चारुता आदि विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। साथ ही अनुप्रास अलंकार की भी स्वाभाविक योजना हुई है।

निर्दय उस·········प्यारे संग। (पृष्ठ ४९)

शब्दार्थ—निर्दय = निष्ठुर, कठोर। नायक = यहाँ पवन से अभिप्राय है। सुकुमार = कोमल। देह = शरीर। हेर = देखकर। नम्रमुख = नीचे की ओर मुँह कर, मुख झुकाकर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि नायक पवन ने नायिका जुही की कली के गाल चूमकर उसे जाग्रत करना चाहा पर उस कली की नींद नहीं खुली और उस अधीर नायक ने आवेश में आकर अत्यंत निर्दय की भाँति निष्ठुरतापूर्वक उस सुन्दर कोमलांगी सुकुमारी के सुकोमल शरीर को झकझोर दिया और उसके गोरे व गोल कपोलों को भी मसल दिया। कवि का कहना है कि नायक पवन के उक्त कार्य से वह युवती अर्थात् जुही की कली चौंक पड़ी और चकित हो अपने चारों ओर देखने लगी तथा अपने प्रियतम को अपनी सेज के समीप पा प्रसन्न हो हँसने लगी। कवि कह रहा है कि जुही

की कली अपना मुख नीचे झुकाकर हँसने लगी और प्रियतम पवन के साथ केलिक्रीड़ा में मग्न हो गयी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने मानव आवेग का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है और नायक को निर्दय कहकर सुकुमारी जुही की कली के प्रति सहानुभूति प्रकट की है।

६—जागो फिर एक बार : १ (पृष्ठ ५०-५२)

सन्दर्भ—कवि निराला की रचना 'जागो फिर एक बार' उद्‌बोधन गीत है और वह भारतीय दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक पीठिका पर लिखा गया है। वस्तुतः जागो फिर एक बार के दो भाग हैं और इस प्रथम भाग में आकाश के नक्षत्र, प्रभात की किरणें, यामिनी गंधा तथा रात्रि आदि सभी प्राकृतिक उपादान आदि काल से ही सम्पूर्ण विश्व में जागरण का स्वर संचार करते हुए अंकित किए गए हैं।

जागो फिर···············**एक बार ! (पृष्ठ ५०)**

शब्दार्थ—अरुण पंख=लाल पंख, बाल रवि की किरणें। तरुण किरण= नवीन किरण।

व्याख्या—कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम एक बारफिर जागो और भारत की दीन हीन दशा का अवलोकन करो। कवि का कहना है कि प्रिय भारत वासियों तुम्हें जगाते हुए सभी तारे हार गये हैं और बाल रवि की लाल-लाल किरणें भी तुम्हारे लिए जागृति द्वार खोल रही हैं, अर्थात् अब नवीन प्रभात हो गया है और जागरण की इस वेला में अपनी सम्पूर्ण मोह निद्रा का परित्याग कर तुम्हें पुनः एक बार जागृत होना चाहिए।

टिप्पणी—कवि प्रभात के आगमन का संकेत कर भारतीयों को जागरण का संदेश दे रहा है और कवि की यही मनोकामना है कि भारतवासी दासता के बन्धनों को तोड़ने के लिए अग्रसर हैं।

आँखें अलियों सी···············**एक बार। (पृष्ठ ५०)**

शब्दार्थ—अलियों सी=भ्रमरों अर्थात् भौंरों के समान। मधु=फूल का

रस । पाँखें = पंख । कमल कोरकों = कमल की कली । गुंजार = भ्रमरों का गुंजन ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे भारतवासियों; तुम्हारे नेत्र भ्रमरों के समान न जाने कौन सी मधु की गलियों में फँस गये हैं जौर जिस प्रकार भ्रमर फूलों के रस पान में लीन होकर सब कुछ भूल जाता है उसी प्रकार तुम भी सांसारिक आकर्षण और वैभव में लीन होकर अपना कर्त्तव्य भूल गए हो तथा तुम्हें कर्त्तव्याकर्त्तव्य का कुछ भी ध्यान नहीं रहा । कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कहता है कि नींद के कारण मुँदी तुम्हारी आँखें न जाने अपनी पलक पंखुड़ियों को बन्द करके मौन हो किस कली का मधु पान कर रही हैं और तुम्हारी गुंजार भी मौन हो गयी है अतः तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी विलास निद्रा का त्याग कर सावधान हो जाओ तथा अपने विरोध को वाणी प्रदान करो ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि भारतवासियों को भोग विलास से दूर हो विदेशी शासन का विरोध करने की प्रेरणा दे रहा है । साथ ही इस अवतरण में उपमा, संदेह एवं अनुप्रास आदि अलंकारों की सफल अभिव्यक्ति भी हुई है ।

अस्ताचल ढले रवि..................एक बार । (पृष्ठ ५०-५१)

शब्दार्थ—शशि छवि = चन्द्र ज्योत्स्ना अर्थात् चन्द्रमा की चाँदनी । विभावरी = रात्रि । यामिनी गंधा = एक प्रकार का फूल जिसे रजनी गंधा भी कहा जाता है । चकोर कोर = चकोर के नेत्र । चाव = उत्सुकता । शिशिर भार = शिशिर ऋतु का भार । कुल = समूह, सभी । मद उर = मतवाला हृदय । यौवन उभार = यौवन का उठान ।

व्याख्या—कवि का कहना है कि सूर्य अस्ताचल की ओर पहुँच रहा है और वह अब धीरे-धीरे अस्त हो रहा है तथा रात्रि में चन्द्रमा की मनोमुग्धकारी चाँदनी को देखकर रजनीगंधा भी जाग गयी है तथा अपने प्रिय चन्द्रमा के दर्शन के लिए आशा युक्त चकोर के नेत्र एकटक एवं उत्सुकता और उत्साह से उसी ओर लगे हुए हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि चकोर अपने प्रिय

चन्द्रमा के दर्शन के लिए बड़ी ही तमन्यता के साथ उसकी ओर देख रहा है। कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कहता है कि शिशिर के भार से व्याकुल हुए सभी वृक्षों के फूल विकसित होकर नीचे की ओर झुक गये हैं और कलियों के मधुर मादक उन्माद से पूर्ण हृदय में पुनः यौवन का उभार आ गया है अर्थात् कलियाँ भी इस मधुर मादक वातावरण से प्रभावित होकर विकसित होने के लिए आकुल व्याकुल हो रही हैं अतः इस वातावरण में तुम एक बार पुनः जागृत हो उठो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने जागरण की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का तदनुकूल वर्णन किया है और अनुप्रास एवं मानवीकरण अलंकारों की अभिव्यक्ति भी हुई है।

पिउ रव·············· **एक बार। (पृष्ठ ५१)**

शब्दार्थ—पिउ = प्रियतम। रव = ध्वनि, आवाज, कोलाहल। सेज = शय्या। विरह विदग्धा = वियोग से व्यथित। चारु = सुन्दर। नयन जल = आँसू। व्यथा = दुःख, पीड़ा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि पपीहा अपनी मधुर ध्वनि में पिउ पिउ का स्वर उच्चारित कर रहे हैं और शय्या पर विरह व्यथिता नायिका रात्रि में होने वाले प्रिय मिलन की अनेक स्मृतियों का स्मरण कर रही है तथा उसे बीती बातें याद आने के कारण उसने अपने सुन्दर नेत्रों को मूंद लिया है। कवि का कहना है कि वियोगिनी नायिका प्रियतम की याद कर आँसू बहा चुकी है और रोने से उसके हृदय का भार भी अब पहले की अपेक्षा कम हो गया है अतः हे भारतवासियों तुम भी अपनी विगत स्वर्णिम दशा का स्मरण कर, एक बार पुनः जाग्रत होकर देश को स्वतन्त्र करने के लिए तत्पर हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में नायिका की वियोगावस्था का सुन्दर मर्मस्पर्शी वर्णन है और अनुप्रास अलंकार की भी स्वाभाविक योजना हुई है।

सहृदय समीर ·········· **एक बार! (पृष्ठ ५१-५२)**

शब्दार्थ—सहृदय = सुन्दर और शीतल। समीर = पवन। शयन शिथिल बाँहें = सोने के कारण ढीली हुई बाँहें। उर = हृदय। वसन मुक्त = कपड़े से

अलग, निर्वसन। अलस=आलस्य। ऋजु=सरल, सीधा। कुटिल=दुष्ट, वक्र, टेढ़ा। प्रसार कामी=प्रसार या फैलाव का इच्छुक। केश गुच्छ=केश राशि, जटाएँ। मृदु=कोमल। सुरभि=सुगंधि। उभय=दोनों।

व्याख्या—कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम सुन्दर, शीतल और मंद समीर के समान आँसुओं को पोंछो तथा आलिंगन में आबद्ध होने के कारण शिथिल भुजाओं को स्वप्न के सदृश्य मधुर आवेग में भरकर आकुल हृदय को निर्वसन कर दो; जिससे कि मन की सुषुप्तावस्था भी सुखोन्माद में परिणत हो जाय। इन पंक्तियों का आध्यात्मिक अर्थ यह है कि आत्मा सुषुप्तावस्था में भी परमात्मा का संस्पर्श प्राप्त कर अलौकिक आनन्द प्राप्त कर लेती है और सोते समय शिथिल भुजायें स्वप्निल आवेश से पूर्ण हो जाती हैं। साथ ही कवि ने हृदय के आकुल-व्याकुल निर्वसन होने में माया के आवरण से मुक्त होने का संकेत भी किया है।

कवि का कहना है कि कल्पना के सदृश्य कोमल कुंतल राशि को आलस्य से मुक्त होकर पीठ पर फैल जाने दो और तुम इस प्रकार काम में प्रवृत्त हो कि तुम्हारे तन-मन दोनों थक जायँ और बुद्धि बुद्धि में, मन मन में, तथा प्राण प्राण में तन्मय होकर आत्माएँ एक में ही एकरूपता का अनुभव करने लगे। आत्मा कहती है कि मैं इसी तथ्य को कब से पुकार पुकार कर कह रही हूँ कि तुम एक बार जाग उठो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अद्वैतवादी विचारधारा की स्थापना हुई है और कवि ने आत्मा-परमात्मा की एकरूपता का भावग्राही चित्रण किया है।

उगे अरुणाचल··············एक बार (पृष्ठ ५२)

शब्दार्थ—अरुणाचल=पूर्व दिशा। भारती-रति=सरस्वती के प्रति प्रेम, भारतमाता के प्रति प्रेम। प्रकृति पट=प्रकृति का परदा। पक्ष=पखवाड़ा अर्थात् महीने के पन्द्रह दिन; यहाँ कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष दोनों से अभि-प्राय है।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि पूर्व दिशा में सूर्य उदय हो गया है और कवि अपने कंठ से सरस्वती तथा भारत भूमि के प्रति अपना प्रेम भाव व्यक्त

कर रहे हैं। कवि का कहना है कि प्रकृति का परदा प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है और दिन के बाद रात तथा रात के बाद पुनः दिन के आने जाने का क्रम विद्यमान है और इस प्रकार संसार में दिन, पक्ष, मास आदि व्यतीत होकर हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति में नित्य परिवर्तन हो रहा है और यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। कवि कहता है कि समय चक्र भी अनवरत गति से क्रियाशील है पर भारत में नवजागरण का सुप्रभात नहीं हुआ और भारतवासी सोते ही रहे अतः अब उन्हें अपनी दीन-हीन असह्य स्थिति को देखकर आलस्य और प्रमाद की निद्रा का परित्याग कर जाग्रत होना चाहिए।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की देश प्रेम की भावना ही अपने समुज्जवल रूप में दीख पड़ती है और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार की भी योजना हुई है।

१०—प्रिया के प्रति (पृष्ठ ५२-५३)

संदर्भ—महाकवि निराला ने अपनी कविता 'प्रिया के प्रति' में प्रमोद्गारों की ही अभिव्यक्ति की है।

शब्दार्थ—अजान = अनजान। अतीत = विगत, वह युग जो बीत गया है। अगणित = असंख्य। पावन = पवित्र। चिर निर्मल = हमेशा से पवित्र।

व्याख्या—कवि प्रिया को सम्बोधित कर कह रहा है कि यदि अनजाने में एक बार भी तुम मेरे सामने आ जातीं तो मुझे हर्ष ही होता? कवि प्रिया से कहता है कि काश, एक बार भी तुम प्राणों के अंधकार की छाया में अपने हृदय की वास्तविक दशा का वर्णन करते हुए यह बतलातीं कि वह प्राचीन युग कैसा था और समय कैसा बीत रहा है। कवि प्रिया को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम जब मेरे पास आतीं तो मैं तुमसे कभी कुछ न कहता और केवल तुम्हारी ओर देखता रहता। मेरी चकित व थकी सी चितवन तुम्हारी ओर देखती ही रह जाती और मौन दृष्टि की भाषा ही मेरे विदग्ध हृदय के असंख्य व्याकुल भाव प्रकट कर देती।

कवि का कहना है कि वियोग की हमेशा प्रज्वलित रहने वाली ज्वाला से तपकर मेरा यह हृदय कितना उज्जवल हुआ है और कठिन साधना रूपी चट्टान के आघात सहकर मेरा यह प्रेम कितना पवित्र हो गया है। कवि कहता है कि मेरी मौन दृष्टि ही मेरी सम्पूर्ण दशा प्रकट कर देती है और इस मौन दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि मेरा भूतकाल कैसा था और अब यह समय कैसा बीत रहा है। कवि अपनी प्रिया को सम्बोधित कर कह रहा है कि क्या तुम मेरी यह दशा देखकर व्याकुल हो रही हो और मेरे दुःख पर रो रही हो पर मेरे नेत्रों में तो अश्रु नहीं आ रहे हैं। कवि का कहना है कि मेरी यह मौन दृष्टि ही प्रिया के प्रति मेरा प्रेम प्रकट कर देती है और मेरा हमेशा स्वच्छ रहने वाला हृदय भी स्पष्ट हो जाता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यंजना हुई है और प्रेमी की प्रेम साधना का समुज्जवल रूप भी दृष्टिगोचर होता है। साथ ही सरल एवं सुबोध भाषा में उत्कृष्ट भावों की आकर्षक अभिव्यक्ति भी हुई है।

११--बादल राग : १ (पृष्ठ ५३-५४)

संदर्भ—कवि निराला की काव्यकृति 'बादल राग' एक विशिष्ट रचना है और यह छः भागों में विभाजित है। सत्य तो यह है कि 'इस बादल राग का इतना महत्व है कि केवल इसी आधार पर निराला की कीर्ति अक्षुण्य मान ली गई है।' सामान्यतया बादल राग कविता में निरालाजी ने बादलों के आगमन का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट करना चाहा कि वर्षा ऋतु के आगमन के समय प्रकृति सौन्दर्य में क्या आकर्षण रहता है।

शब्दार्थ—अम्बर = आकाश। शेर = कल कल, शोरगुल। निर्झर = झरना। गिरि = पर्वत। सर = तालाब। सरित = नदी। तड़ित = बिजली, विद्युत। भैरव = भयंकर, भयानक। विकल = व्याकुल। नद = बड़ी नदी। बेकल = बेचैन। गगन = आकाश।

व्याख्या—कवि बादलों को सम्बोधित कर कह रहा है कि झूम-झूमकर

घनघोर गर्जना से आकाश को अपनी आवाज से गुंजायमान कर दो। साथ ही आकाश से बूँदों के रूप में झर-झरकर झरने, पर्वतों, तालाब, घर, वृक्ष, पौधे और समुद्र में अपना जल फैला दो और बिजली चमकने लगे तथा अंधकार भी दूर हो जाय।

कवि बादलों को वर्ष के हर्ष कहकर सम्बोधित करता है क्योंकि पानी बरसने पर ही लोगों का जीवन सुखी रहता है। कवि यह भी कहता है कि हे बादलों, तुम बरस बरस कर अपनी रसधार चारों ओर फैला दो और मुझे वहाँ ले चलो जहाँ तुम्हारी गर्जना का भीषण संसार विद्यमान है। कवि बादलों से कह रहा है कि तुम अपनी आवाज से मेरे हृदय में उथल-पुथल मचा दो और मुझे भी अपने साथ-साथ ले चलो।

कवि का कहना है कि बादल धरती पर तीव्र वर्षा करते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि चारों ओर दलदल सा फैल जाता है तथा नदियों में भी जल बढ़ता जाता है जो कि कलकल ध्वनि करता है। कवि कह रहा है कि प्रकृति की इस सुषमा को देख मन नाचने लगता है और हृदय विचारों को व्यक्त करने के लिए उमड़ पड़ता है। कवि बादलों को सम्बोधित कर कहता है कि तुम मुझे आकाश का वह सघन घोर दिखाओ जहाँ पर तुम्हारा राग अपने अमर रूप में विद्यमान है।

टिप्पणी—इस कविता में अनुपम शब्द सौन्दर्य विद्यमान है. और ध्वन्यात्मकता, सरसता एवम् चित्रमयता आदि कलागत विशेषताओं के साथ-साथ नूतन भावाभिव्यक्ति के भी दर्शन होते हैं।

१२—बादल राग ६ (पृष्ठ ५५-५६)

संदर्भ—निरालाजी ने 'बादल राग' शीर्षक से छः कविताएँ लिखी हैं और उनमें से यह अंतिम अर्थात् छठवीं कविता है। इस रचना में कवि निराला ने दीन दुखी जनता की व्यथा का चित्रण करते हुए यह स्पष्ट करना चाहा है कि इस बादल राग में किसान, जिसका जीवन उसकी खेती पर निर्भर

करता है, बादलों से यह प्रार्थना करता है कि वे अंधाधुंध वर्षा कर उसकी खेती को नष्ट न करें।

तिरती है·········फिर फिर। (पृष्ठ ५५)

शब्दार्थ—तिरती है=तैरती है या तैर रहा है। समीर=वायु, पवन। अस्थिर=चंचल। जग=संसार. दग्ध=जलता हुआ। विप्लव=प्रलय, विद्रोह, तूफान। रण=युद्ध। तरी=नाव, नौका। सुप्त=सोये हुए।

व्याख्या—कवि का कहना है कि सागर के ऊपर पवन इस प्रकार तैर रहा है जिस प्रकार चंचल सुखों पर दुःख की छाया प्रतिपल मँडराती रहती है और मनुष्य के दुःखों से पीड़ित हृदय पर एक भयंकर तूफान का भ्रम निरंतर बना हुआ है। कवि कहता है कि ये विप्लव लाने वाले बादल, तेरी नौका युद्ध के उपकरणों से युक्त है और तू बवंडर की सूचना दे रहा है। कवि बादलों को सम्बोधित कर कह रहा है कि धरती में सोये हुए अंकुर अर्थात् किसान द्वारा जमीन में बोये हुए बीज बादलों और बिजली की गड़गड़ाहट सुनकर जाग गये हैं तथा जीवन की आशा में सिर उठाकर बार-बार आकाश की ओर देख रहे हैं अर्थात् उन्हें आशा है कि अब वे अंकुरित होकर लहलहायेंगे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में मानवीकरण और रूपक अलंकारों का सफल प्रयोग हुआ है।

बार बार गर्जन···············**शोभा पाते। (पृष्ठ ५५-५६)**

शब्दार्थ—अशनि पात=उल्कापात, ओलों की वर्षा। गगन स्पर्शी=आकाश को छूने वाले। स्पर्द्धा=होड़। शायित=सुलाया या लिटाया हुआ, गिरा हुआ। शस्य=धान। वज्र हुंकार=कठोर ध्वनि।

व्याख्या—कवि कहता है कि बादल बार बार गरज रहे हैं और ऐसी मूसलाधार वर्षा हो रही है कि उसकी अत्यधिक भयंकर आवाज सुनकर जन समूह अपना कलेजा थाम लेता है तथा सहस्त्रों वीरों के सदृश्य उन्नत पथगामी हिमालय उल्का की शैय्या के समान प्रतीत हो रहा है। साथ ही उसका (हिमालय का) अचल शरीर ओलों के आघात से छिट गया है पर वह आकाश

को छूने की होड़ लगाये हुए धैर्यशाली ही बना है। कवि कह रहा है कि छोटे छोटे पोधे ओलों का भार सहते हुए भी मुस्करा रहे हैं और चारों ओर हरियाली छाई हुई है। कवि का कहना है कि तूफान की तरह शोर मचाना तो छोटों को ही शोभा देता है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि एक ओर तो हिमालय धीर गम्भीर होकर अपनी मर्यादा में खड़ा है और दूसरी ओर छोटे-छोटे पौधे हिल डुलकर अपनी चंचलता का प्रदर्शन कर रहे हैं लेकिन गम्भीरता और चंचलता की तुलना में हमेशा गम्भीरता ही श्रेष्ठ मानी जाती है। साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, वीप्सा, पुनरुक्ति और मानवीकरण नामक अलंकारों की योजना भी हुई है।

अट्टालिका नहीं···················**सुकुमार शरीर (पृष्ठ ५६)**

शब्दार्थ—अट्टालिका = ऊँची हवेली। आतंक भवन = भय का निवास। पंक = कीचड़। क्षुद्र = तुच्छ। प्रफुल्ल = खिलता हुआ। जलज = कमल। नीर = जल। शैशव = बचपन। सुकुमार = कोमल।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि यह मेघ खंड ऊँची हवेली के समान केवल ऊँचा ही नहीं है बल्कि भय का आवास भी है। कवि का कहना है कि हमेशा कीचड़ पर से पानी तूफान बनकर शीघ्र बह जाता है और छोटा तथा खिलता हुआ कमल ही हमेशा पानी की बूंदे छलकाता है अर्थात् कमल पर वर्षा के गिरे हुए जलकण चमकते रहते हैं। कवि कह रहा है कि रोगी और दुःखी होने पर भी कोमल शिशु सहज भाव से हँसता रहता है अर्थात् छोटे व्यक्तियों द्वारा ही सहज व निश्छल व्यवहार सम्भव है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने छोटे व्यक्तियों का महत्व प्रतिपादित किया है और अनुप्रास अलंकार का भी स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

रुद्ध कोष··················**पारावार! (पृष्ठ ५६)**

शब्दार्थ—रुद्ध = रुका हुआ, बन्द। कोष = खजाना। अंगना = स्त्री, पत्नी। आतंक = भय। जीर्ण शीर्ण = दुर्बल, कमजोर। पारावार = सागर।

व्याख्या—कवि का कहना है कि बादलों ने जनता को भयभीत करके

उसकी खुशियों का कोश बन्द कर दिया है और उसका सब कुछ छीन लिया है तथा स्त्री के साथ आलिंगन बद्ध होने पर शरीर भय से काँप रहा है। कवि कहता है कि हे बादल; धनी व्यक्ति भी तुम्हारी गर्जना से दुखी होकर आँखें मूँदे पड़े हैं और बेचारा किसान अधीर होकर अपने कमजोर शरीर और दुर्बल बाहों को उठाकर तुम्हें बुला रहा है। कवि बादलों को सम्बोधित कर कह रहा है कि हे विप्लव ढाने वाले वीर योद्धा; तुमने किसान के जीवन का सम्पूर्ण रस चूस लिया है और केवल शरीर ही अब उसका आधार है तथा तुम्ही उसके जीवन की नौका को पार लगाने वाले हो।

टिप्पणी—वस्तुतः वर्षा पर ही किसान की खेती निर्भर रहती है और घनघोर वर्षा तथा उल्कापात से खेती नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। इसीलिए इन पंक्तियों में कवि ने किसान की चिन्ता का स्वाभाविक वर्णन किया है। साथ ही यहाँ अनुप्रास अलंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

१३–गर्जन से भर दो वन (पृष्ठ ५७)

सन्दर्भ—प्रस्तुत गीत में कवि निराला ने बादलों से भयंकर गर्जना की प्रार्थना की है जिससे कि प्रत्येक पत्ता नवीन जीवन लेकर फूल उठे।

शब्दार्थ—घन=बादल। पादप=वृक्ष। छवि निर्भर=शोभा पर निर्भर रहने वाली। मधु ऋतु कानन=वसंत ऋतु की सुषमा से पूर्ण वन। मन्द्र=गम्भीर। भूधर=पर्वत। पल्लव=पत्ता।

व्याख्या—कवि बादलों को सम्बोधित कर कहता है कि हे घन! तुम वन, तरुओं और प्रत्येक वृक्ष के शरीर को अपनी गर्जना से पूर्ण कर दो अर्थात् तुम्हारी—बादलों की—भयंकर आवाज जंगल, वृक्ष समूह और प्रत्येक वृक्ष में गूँज उठे।

कवि कह रहा है कि अब तक तो भँवरों की प्रत्येक गूँज की सुषमा पर निर्भर रहने वाली कलियाँ नृत्य करती रही हैं और भँवरों ने फूलों का मधु पान कर वसंत ऋतु की शोभा से पूर्ण वन को स्थिर माना है अर्थात् प्रकृति में

अभी तक एक प्रकार की शान्ति सी विद्यमान रही पर सम्भवतः कवि को यह निस्तब्धता रुचिकर नहीं जान पड़ती।

कवि का कहना है कि हे गम्भीर व कठोर स्वर वाले बादल। तुम कुछ इतनी प्रबलता के साथ गरजो कि तुम्हारी आवाज सुनकर प्रत्येक पर्वत भी थर्रा उठे और झर झर करके पानी की धारा बह चले तथा प्रत्येक पत्ते में नवजीवन दृष्टिगोचर हो। इस प्रकार कवि बादलों को भयंकर ध्वनि कर सृष्टि को नवजीवन प्रदान करने की प्रार्थना कर रहा है।

टिप्पणी—सामान्यतया छायावादी काव्य धारा में प्रकृति के सौम्य रूप का ही चित्रण विशेष रूप से हुआ है और छायावादी कवि प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण करने की दृष्टि से प्रसिद्ध भी रहे हैं पर उन्होंने—छायावादी कवियों ने—प्रकृति के कठोर एवं भयंकर रूप की भी उपेक्षा नहीं की। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी काव्य धारा के एक प्रशंसनीय कवि निराला ने भी प्रस्तुत कविता में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण करते हुए इस प्रलयंकारी रूप में ही नवीन सृष्टि के निर्माण की आशा प्रकट की है। साथ ही इस गीत में पुनरुक्ति प्रकाश और अनुप्रास नामक अलंकारों की भी सफल योजना हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी अपनी कविताओं में एक स्थल पर इसी प्रकार प्रकृति के भयानक रूप का वर्णन करते हुए कहा है—

> क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
> सिंधु में मथकर फेनाकार
> बुलबुलों का व्याकुल संसार
> छमा, बिथुरा देती अज्ञात
> उठा तब लहरों से कर कौन
> न जाने, मुझे बुलाता मौन।

१४—जागो फिर एक बार : २ (पृष्ठ ५७-६०)

सन्दर्भ—महाकवि निराला की कविता 'जागो फिर एक बार' के दो खंड हैं और इस प्रकार जहाँ कि पहले खंड में कवि ने अत्यन्त मधुमय वातावरण का चित्रण करते हुए वर्तमान भारतवासियों की मोह निद्रा की स्थिति का निरूपण किया है वहाँ इस दूसरे खंड में देश प्रेम की भावनाओं का उल्लेख कर भारतवर्ष की दुर्दशा के प्रति अपार क्षोभ भी प्रकट किया है।

जागो फिर··················आज स्यार। (पृष्ठ ५७-५८).

शब्दार्थ—समर=युद्धभूमि। महासिन्धु=विशाल सागर। सिन्धु नद तीर वासी=सिन्धु नदी के किनारे पर बसने वाले सन्धत्व सिन्धु प्रदेश के। तुरंगों पर=घोड़ों पर सवार होकर। चतूरंग चमू संग=हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल आदि चार प्रकार की सेनाओं के साथ। वीरजन मोहन=वीरों को मोहने वाला। दुर्जय=अजेय, जो सरलता से जीता न जा सके। संग्राम= युद्ध। रण=युद्ध। माँद=गुफा, रहने का स्थान।

व्याख्या—कवि भारतीय इतिहास के अतीत पृष्ठों की गौरवमयी कथाओं की ओर भारतवासियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहता है कि हे भारत-वासियों, तुम मोह निद्रा में अधिक समय तक न पड़े रहो और एक बार फिर जागो। कवि कह रहा है कि सिंधु नदी के किनारे पर बसने वाले आर्यों ने विशाल सागर के सदृश्य गंभीर गीत गाते हुए युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त कर अपने प्राणों को अमर बना लिया था और सिन्धु प्रदेश के घोड़ों पर सवार होकर चार प्रकार की सेनाओं के साथ युद्ध किया था।

कवि का कहना है कि हमारे देश में गुरु गोविन्दसिंह जैसे प्रसिद्ध वीर हो गये हैं और उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब मैं सवा-सवा लाख शत्रुओं पर एक-एक सिख की बलि चढ़ा दूंगा तभी अपना नाम गोविन्दसिंह धारण करने का अधिकारी बनूंगा। कहने का अभिप्राय यह है कि गुरु गोविन्दसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि उनकी सेना का प्रत्येक सिख सवा लाख शत्रुओं को मारकर ही चैन लेगा।

कवि कह रहा है कि गुरु गोविन्दसिंह का वीरों के मन को मोहने वाला

और अजेय संग्राम का राग किसने सुनाया था ? साथ ही किसने यह बताया था कि गुरु गोविन्दसिंह बारह महीने अर्थात् हर समय जहाँ युद्ध भूमि में फाग खेलते रहे अर्थात् युद्ध कौशल दिखाते रहे वहाँ वीरों की इस जन्मभूमि पर अब गीदड़ों ने अधिकार कर लिया है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने प्राचीन आर्य वीरों और गुरु गोविन्द सिंह की शूरवीरता का उल्लेख करते हुए यह बतलाना चाहा है कि हमारा जो देश प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर शूरवीरों से पूर्ण था वही अब गीदड़ों अर्थात् डरपोक पुरुषों से पूर्ण है। साथ ही इस अवतरण में उपमा और अनुप्रास अलंकार की भी स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है।

सत्श्रीअकाल·········एक बार ! (पृष्ठ ५८)

शब्दार्थ—भाल अनल=माथे की आग। तीनों गुण=सत, रज और तम नामक तीन गुण। ताप त्रय=दैहिक, दैविक और भौतिक नामक तीन प्रकार के दुःख। अभय=निर्भय, जिसे कोई डर न हो। मृत्युजंय=मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले, भगवान शंकर का एक नाम। व्योमकेश=भगवान शंकर। सप्तावरण=सात आवरण। शोकहारी=हर प्रकार का दुःख दूर करने वाले। सहस्त्रार=हजार दलों या पंखुड़ियों वाला वह कल्पित कमल जिसमें मन के पहुँचने पर मुक्ति मिल जाती है।

व्याख्या—कवि देशवासियों को सम्बोधित कर कहता है कि जब गुरु गोविन्दसिंह 'सत् श्री अकाल' कहकर युद्ध भूमि में उतरे थे तब उनके मस्तक से आग निकलने लगती थी और उसी आग में धक्-धक् करके स्वयं काल अर्थात् मृत्यु तथा तीनों गुण व तीनों दुःख भस्म हो गए थे और तुम अभय हो गए थे। कवि भारतवासियों से कह रहा है कि तुम मृत्यु को जीतने वाले शिव के समान अमृतपुत्र थे और तुमने योग द्वारा प्रतिपादित सातों आवरणों को भेंट कर, मरणलोक को छोड़कर तथा शोक को दूर कर उस स्थान में प्रवेश किया था जहाँ पर सहस्त्र दलों वाला कमल स्थित है अर्थात् योगसाधना द्वारा देशवासी जीवन मुक्त हो गये थे। कवि का कहना है कि हमारे देशवासियों को उक्त गौरव का स्मरण कर पुनः जाग्रत होना चाहिए।

टिप्पणी—यहाँ योगशास्त्र और काव्यशास्त्र का सामंजस्य सफल एवम् सशक्त है तथा उपमा और वीप्सा नामक अलंकारों की भी स्वाभाविक योजना हुई है।

सिंह·········एक बार ! (पृष्ठ ५८-५९)

शब्दार्थ–मेषमाता = मेढ़े की माँ। निर्निमेष = अपलक, टकटकी लगाकर। दुर्बल = कमजोर। अभिशप्त = अभिशाप से पूर्ण, दु:ख या कष्ट से पूर्ण। तप्त = गर्म, दु:खपूर्ण। योग्य = समर्थ। उक्ति = कहावत।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि भला सिंह की गोद से उसके बच्चों को छीनने वाला कौन है और यदि कोई यह कार्य करना चाहेगा तो उसका यह कार्य निःसन्देह बहुत ही भयंकर होगा क्योंकि जब तक उस सिंहनी के शरीर में प्राण हैं तब तक वह मौन रहकर अपने बच्चे को छीनने नहीं देगी। कवि ने यहाँ यह स्पष्ट करना चाहा है कि जिस प्रकार सिंह अपने जीवित रहते, अपने बच्चों को छीनने नहीं देता, उसी प्रकार हमारे भारतवासियों को चाहिए कि वे परतंत्र न रहें और शासक गण, जो राष्ट्रीय आंदोलन को कुचलने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका यह प्रयत्न सफल न होने दें।

कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कहता है कि हे मूर्ख; वह तो केवल मेढ़े की माँ ही ऐसी है जो अपनी दुर्बलता के कारण अपने छिनते हुए शिशु को अपलक दृष्टि से देखती रहती है और पुत्र वियोग के कारण जन्म भर अभिशाप से भरे हुए दु:खपूर्ण अश्रुओं की धारा बहाती रहती है। कवि का कहना है कि वास्तविकता तो यह है कि इस संसार में वही जीवित रहता है जिसमें शक्ति है और हम भारतीय अज्ञानतावश जो यह समझते हैं कि यह कहावत पश्चिम की है, वह गलत है क्योंकि गीता ने ही सर्वप्रथम इस कर्मयोग का प्रचार अनेक बार किया था। अतएव हमें इसे हमेशा याद रखना चाहिए और अपने पुनर्जागरण का परिचय देना चाहिए।

टिप्पणी—यहाँ कवि निराला का भारतीय संस्कृति के प्रति अथाह प्रेम अभिव्यक्त हुआ है और दृष्टांत एवं रूपक अलंकारों की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

पशु नहीं.........एक बार ! (पृष्ठ ५९-६०)

शब्दार्थ—समर शूर=युद्धवीर । क्रूर=अत्याचारी । समर सरताज= युद्धविद्या में कुशल । मुक्त=स्वतंत्र । नश्वर=नाशवान । कायरता=भीरुता । काम परता=सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति या लगाव । पदरज=चरणों की धूल ।

व्याख्या—कवि का कहना है कि हे भारतवासी; तुम पशु नहीं हो बल्कि वीर हो और निष्ठुर न होकर युद्धवीर हो अर्थात् भारतवासियों को पशु एवं निष्ठुर समझना भ्रमपूर्ण ही है । कवि भारतवासियों को सम्बोधित कर कह रहा है कि हे राजकुँवर और युद्धविद्या में कुशल, आज तुम भले ही समयरूपी चक्र में दब गए हो अन्यथा तुम तो सदैव इस प्रकार मुक्त रहे हो जिस प्रकार माया आदि के बंधनों में बन्द होता है तथा तुम तो हमेशा सच्चिदानन्द ब्रह्म के रूप में निमग्न रहे हो ।

कवि भारतवासियों से कहता है कि हमारे ऋषियों के ये शब्द सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त हैं कि तुम महान हो और सदा ही महान् रहे हो अतः कायरता एवं सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति का भाव दीन भाव ही है क्योंकि तुम तो ब्रह्म के रूप हो और यह विश्व भार तुम्हारे चरणों की धूल के बराबर भी नहीं है ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में निराला जी ने अद्वैतवाद की प्रतिस्थापना कर मानव के महत्व का प्रतिपादन किया है ।

१५–हताश (पृष्ठ ६०)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'हताश' कविता में अपने जीवन के प्रति अत्यधिक निराशा प्रकट की है ।

जीवन चिरकालिक.........अभिनंदन ? (पृष्ठ ६०)

शब्दार्थ—चिरकालिक—हमेशा से । क्रन्दन=विलाप, रोना । वज्र कठोर=वज्र के समान अर्थात् बहुत अधिक कठोर । तम निशि=अंधकार पूर्ण रात्रि । भोर=प्रभात का समय । वन्दन=वन्दना । अभिनंदन= स्वागत ।

व्याख्या—कवि अपने जीवन के प्रति निराशा व्यक्त करते हुए कह रहा है कि यह जीवन तो हमेशा से क्रन्दन का रूप रहा है अर्थात् जीवन हमेशा से दुःखपूर्ण रहा है और मेरा हृदय भी वज्र के समान कठोर होने के कारण, उसे चाहे कितना ही झकझोरते रहो पर वह इस प्रकार झकझोरने से तनिक भी विचलित नहीं होता। कवि का कहना है कि मेरे जीवन की यह गहन अंधकारपूर्ण रात्रि कभी प्रभातकाल में परिवर्तित नहीं होगी अर्थात् मेरा यह जीवन निराशापूर्ण ही रहेगा और इसमें सुख की आशा करना बेकार ही है अतएव इतनी उज्जवलता, इतनी वंदना और इतने स्वागत की आशा करना भ्रमपूर्ण ही रहेगा। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरा जीवन हमेशा दुःखों से पूर्ण रहेगा और इसमें किसी भी प्रकार के आनन्द की कल्पना करना बेकार ही है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि की मानसिक मनोव्यथा का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण हुआ है।

हो मेरी प्रार्थना..............जर्जर स्यन्दन ? (पृष्ठ ६०)

शब्दार्थ—विफल = व्यर्थ, बेकार। म्लान = मुरझाया हुआ, दुःखी, निराश। अन्तर्धान = छिपा हुआ। जग = संसार, सृष्टि। जर्जर = टूटा हुआ। स्यन्दन = रथ।

व्याख्या—हताश कवि का कहना है कि मेरी प्रार्थना विफल हो जाय और मेरे हृदयरूपी कमल की जितनी भी पंखुड़ियाँ हों, वे सब मुरझा जायें तथा मेरा जीवन निराशापूर्ण हो और सूनी सृष्टि में रहकर मेरे प्राण सृष्टि की शून्यता प्राप्त करें। कवि कहता है कि मेरा संसार भले ही नष्ट हो जाय पर ऐसी दशा में भी क्या इस प्रकार के अन्धकार में मेरा यह जर्जरित रथ रुक जायेगा ? कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन में बधाएँ आने के बावजूद मेरा जीवन हमेशा प्रगति करता रहेगा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि की उत्कट आस्था एवं सुदृढ़ आशा के दर्शन होते हैं।

१६–अध्यात्मफल (पृष्ठ ६१)

संदर्भ—कवि निराला ने 'अध्यात्मफल' कविता में जीवन की विषमताओं और उनके निवारण का सहज उपाय स्पष्ट किया है।

जब कड़ी............छाया यहाँ। (पृष्ठ ६१)

शब्दार्थ—कड़ी मारें=भयंकर आघात या चोटें। मुक्ति=मोक्ष, जीवन की विषमताओं से छुटकारा। युक्ति=उपाय। चाव=उमंग, उत्साह।

व्याख्या—कवि जीवन की विषमताओं की ओर संकेत करते हुए कह रहा है कि जब जीवन में मुझे भयंकर चोटें सहनी पड़ीं, और कठोर बाधाओं का सामना करना पड़ा तब उन सबके कारण मेरा दिल हिल गया लेकिन मैं चूं भी न कर सका और न एक आह ही निकली। कवि का कहना है कि जब मुझे उक्त विषमताओं और कठिनाइयों से विमुक्त होने का उपाय मिल गया तो मैं उस भाव से आनन्दित और उत्साहित हुआ तथा यही भाव अब यहाँ पर छाया हुआ है।

खेत में............सम्पदा। (पृष्ठ ६१)

शब्दार्थ—लता=बेल। भावी=भविष्य। सम्पदा=सम्पत्ति।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे मनरूपी खेत में भाव की जड़ें जम गयीं हैं और उन्हें हमेशा धैर्य ने दुःखरूपी नीर से अभिसिंचित किया है तथा उससे उत्पन्न होनेवाली आशारूपी लता अब सफलता से परिपूर्ण भी है। कवि का कहना है कि उस आशारूपी लता पर अब भूत और भविष्य के सुख स्वप्न झूलते हुये प्रतीत होते हैं।

दीन का............अंग का। (पृष्ठ ६१)

शब्दार्थ—दीन=दुःखी, बेचैन, गरीब। हीन=तुच्छ, साधारण। वक्त=समय। रंग=आनन्द। भंग=नाश, नष्ट। सुख संघ=सुख का समूह। रक्त=रुधिर, खून।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि समय दुःखी प्राणी के लिए महत्वहीन ही है क्योंकि वह सुख के समूह का आनन्द नष्ट करता है और भेद से राज के सुखसाज से परिपूर्ण अंगों को छेदकर खून पीता है।

काल की…………अकूल में। (पृष्ठ ६१)

शब्दार्थ—काल = समय। चाल = गति। हूले = कसक, वेदना। शूल = काँटें। मूल = जड़, नींव। त्राण = छुटकारा। सिन्धु = सागर, समुद्र। अकूल = जिसका कोई किनारा न हो, अपार।

व्याख्या—कवि कहता है कि काल-चक्र की गति से वे सभी फूल मुरझा गये और अब तो केवल दुःख तथा वेदना से उत्पन्न काँटे ही शेष रह गये हैं और इन काँटों से हमें केवल यह फल ही प्राप्त हुआ कि हममें काँटों को सहन करने की शक्ति आ गयी है। कवि कह रहा है कि हे प्राण ; हमें उस सहन-शक्ति के बल पर इस अपार संसार सागर को पार करने की शक्ति भी प्राप्त हुई।

मिष्ट है…………एक है। (पृष्ठ ६१)

शब्दार्थ—मिष्ट = मीठा, मधुर। इष्ट = इच्छित, जिसकी इच्छा की गई हो। अभीष्ट = वांछित, चाहा हुआ। नेक = अच्छा, भला। मही = पृथ्वी, धरती। सरस = रसपूर्ण।

व्याख्या—कवि का कहना है कि यद्यपि बल और शान्ति के सहारे सांसारिक कष्टों को दूर करने से जिस फल की प्राप्ति होती हैं, वह फल मीठा और आनन्दप्रद अवश्य होता है लेकिन जो लोग अशिष्ट आचरण करनेवाले होते हैं और जिनका उद्देश्य सत्य भावना से युक्त नहीं होता वे इस फल को नहीं चाहते तथा बुराई से सम्पूर्ण धरती को भर देते हैं। कवि कह रहा है कि नीति का पालन करनेवालों के लिए अवश्य वह फल सरस और जीवन में लाभदायक होता है।

टिप्पणी—कवि निराला की अध्यात्मफल कविता में सरल सुबोध शब्दावली में चित्ताकर्षक भावाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

१७—अधिवास (पृष्ठ ६२)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'अधिवास' कविता में स्वानुभूतियों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

शब्दार्थ—अधिवास = वास, स्थान, निवास। आवेश = वेग, जोश, उमंग, आतुरता। धाय = दौड़कर पहुँचना। निरुपाय = बेसहारा, लाचार, विवश। विमर्श = विचार। त्रास = कष्ट।

व्याख्या—कवि अपनें आप से ही यह प्रश्न करता है कि मेरा वासस्थान कहाँ है और कुछ देर बाद स्वयं ही यह उत्तर देता है कि जहाँ गति रुकती है वहीं मेरा निवास स्थान है ? कवि का कहना है कि जब तक मुझमें करुण स्वर का आवेश रहता है तब तक इस गति का रुकना भी सम्भव हो सकता है।

कवि कह रहा है कि मैंने 'मैं' शैली अपनाई और जहाँ कहीं भी मुझे अपना कोई दुःखी बन्धु दिखाई दिया, मेरे हृदय पर उसके दुःख की छाया पड़ी और तुरन्त वेदना उमड़ आई तथा मैं दौड़कर उसके पास गया और उसे हृदय से लगा लिया। यहाँ 'मैं' शैली अपनाने से कवि का अभिप्राय यह है कि वह अन्य व्यक्तियों को अपने समान ही मानता है और उनके हृदय में किसी के प्रति तनिक भी भेदभाव नहीं है।

कवि का कहना है कि मैं तो माया में फँसा होने के कारण विवश हो गया हूँ और मेरी गति भला अब कैसे रुक सकती है। कवि कह रहा है कि प्रिय की अश्रुपूर्ण आँखों पर मेरे करुणांचल का स्पर्श है और मैं चाहे कितनी ही दूर तक क्यों न प्रगति करूँ पर इस सम्बन्ध में विचार करना उचित नहीं समझता। कवि कहता है कि मेरा निवासस्थान अवश्य छूट रहा है परन्तु मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं है।

टिप्पणी—कवि निराला की 'अधिवास' कविता में कवि के करुणापूर्ण हृदय की झाँकी अंकित हुई है और इन पंक्तियों में करुण रस का संनिवेश भी हुआ है।

१८—ध्वनि (पृष्ठ ६३-६४)

संदर्भ—'ध्वनि' कविता में महाप्राण निराला का जीवन के प्रति आशा-वादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है।

अभी न होगा ·········· प्रत्यूष मनोहर। (पृष्ठ ६३)

शब्दार्थ—मृदुल=कोमल, सुन्दर, मनोहर। गात=शरीर, तन। निद्रित =सोती हुई। प्रत्यूष=प्रभात।

व्याख्या—कवि जीवन के प्रति आस्था एवं दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए कह रहा है कि अभी मेरा अन्त नहीं होगा क्योंकि मेरे जीवनरूपी वन में तो अभी तक सुन्दर वसन्त विद्यमान है और हरे-हरे पत्ते तथा कोमल डालों और कलियों ने अभी-अभी महकना शुरू किया है अर्थात् उनमें अभी-अभी सुगन्ध आई है। कवि कहता है कि मैं अपना स्वप्नों सदृश्य कोमल हाथ फेरकर सोई हुई कलियों में एक मनोहर प्रभात जाग्रत करूँगा।

पुष्प पुष्प............हो जीवन। (पृष्ठ ६३)

शब्दार्थ—पुष्प=फूल। तंद्रालस्य=नींद के कारण आलस्य से पूर्ण। लालसा=इच्छा, अभिलाषा, चाह। सहर्ष=हर्षपूर्वक। अनन्त=ईश्वर, भगवान।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मैं प्रत्येक फूल में, जो कि निद्रा के कारण आलस्य से पूर्ण है और उनमें जो इच्छायें जाग्रत हैं, उन्हें दूर कर प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन के अमृत से सींच दूँगा। साथ ही उन्हें वह मार्ग भी दिखाऊँगा, जहाँ पर सच्चिदानन्द भगवान निवास करते हैं और इस प्रकार अभी मेरा अन्त नहीं होगा। कवि कह रहा है कि अभी तो मेरे जीवन का पहला ही चरण है अर्थात् मैंने अभी-अभी अपने जीवन में कदम रखा है अतः इस जीवन में मृत्यु की बात सोचनी ही न चाहिये क्योंकि मुझमें तो अभी नवजीवन का आवेश है।

अभी पड़ा है.............मेरा अन्त। (पृष्ठ ६३—६४)

शब्दार्थ—कल्लोलों=चंचल लहरों। बालक मन=बालकों जैसा भोलापन। राग=गीत। दिगंत=दिशाएँ।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे सामने अभी भविष्य के लिए सारा जीवन पड़ा हुआ है अतः मुझमें बादलों जैसी सरलता का स्पर्श चमकती हुई किरणों की चंचल लहरों पर प्रवाहित होता है। कवि का कहना है हे बन्धु;

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे ही अविकसित गीतों से दिशाओं का विकास होगा अतः अभी मेरा अन्त न होगा।

टिप्पणी—ध्वनि कविता में कवि निराला का जीवन के प्रति दृढ़ विश्वास मुखरित हुआ है। इस प्रकार कवि कहता है कि उसे जीवन में बहुत कुछ करना है और अनेक प्राणियों को दुःख से मुक्ति दिलाकर सुख प्रदान करना है अतः अभी उसके जीवन का अन्त असम्भव है। इसी प्रकार अनुप्रास अलंकार का भी इस कविता में स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

१६–विस्मृत भोर (पृष्ठ ६४-६५)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'विस्मृत भोर' कविता में अन्धतम जाल कुटिल गति जीवन में फँसकर परम सत्ता के खोने की स्थिति का चित्रण किया है। विचारक यह भी कहते हैं 'भौतिक जीवन के माया जाल में फँसे निरन्तर दुःख और भव बाधाओं से क्लान्त जीवन की प्रभुशरण की ऐसी कल्पना हिन्दी के भक्ति साहित्य में विरल नहीं है और निराला भक्ति की इसी परम्परा में यहाँ विदित होते हैं, लेकिन भक्ति का आलम्बन सगुण, साकार न होकर निर्गुण निराकार है।'

शब्दार्थ—विस्मृत=भूला हुआ। भोर=प्रभात का समय। कुटिल= वक्र, तिरछी, टेढ़ी। अन्धतम जाल=अँधेरे का भयंकर जाल। रश्मि= किरण। चमत्कृत=चमकता हुआ। स्वर्णालंकृत=सोने से सुसज्जित, यहाँ सुनहलेपन से अभिप्राय है। नवल=नवीन। अलि=भ्रमर, भँवरा। मुकुल =कली। सरित=नदी। सर=तालाब। प्रखर=तेज। प्रपात=झरना। वात=पवन। निरंजन=दोषरहित। बाधा=रुकावट। तम=अन्धकार।

व्याख्या—कवि का कहना है कि जीवन की गति वक्र है और मार्ग में आपत्तियों से युक्त अन्धकार का भयंकर जाल फैला हुआ है तथा मैं उसमें फँसकर तुम्हें नहीं पा सकता हूँ। कवि कहता है कि चमकीली किरणों को फैलाता हुआ सुनहला नवीन प्रभात आ रहा है और हर्षयुक्त हो भ्रमर कली पर मँडरा रहे हैं तथा वृक्षों के पत्ते हिल रहे हैं और हरी ज्योति जल से पूर्ण

नदी, तालाब एवं झरने में व्याप्त है। कवि कह रहा है कि वह अज्ञात शक्ति सर्वत्र व्याप्त है और सुखद पवन रह रहकर केशों को उलझाता व उड़ाता रहता है तथा इस जगमगाते जग में पग-पग पर उसी दोषरहित ब्रह्म का आशीर्वाद छाया हुआ है।

कवि कहता है कि जहाँ कोई भी भवबाधा और वाद-विवाद नहीं है वहीं प्रतिश्वास शब्द गति से मन बढ़ता चला जाता है और जहाँ हाय-हाय तथा केवल श्रम ही है वहाँ कठोर कर्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तथा ऐसे स्थान पर केवल कुछ ही प्राप्त होता है और अधिक आशा रखना अधैर्य एवं अशांति की ही वृद्धि करता है। कवि कह रहा है कि चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ होने के कारण, कठोर श्रम करने पर भी सघन वन को पार करना मुश्किल हो जाता है।

कवि का कहना है कि यह विज्ञान, धर्म एवं दर्शन की प्रबलता स्वप्न ही है और अन्धकार की सुप्ति शान्ति के समान है तथा सुखद प्रभात में ही आशाओं की अन्तहीन अविराम हिलोर विद्यमान है। कवि ब्रह्म से निवेदन कर रहा है कि मेरी चाहें, अपनी रोज की आहों में नित बदल रही हैं और अब हे प्रभु आप ही मुझे इन नेत्रों को भूला हुआ प्रभात प्रदान करो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने उदात्तता का समावेश किया है।

२०—वृत्ति (पृष्ठ ६५-६६)

संदर्भ—महाप्राण निराला ने अपनी कविता 'वृत्ति' में जीवन को अभावों से पूर्ण होना स्वाभाविक माना है।

शब्दार्थ—वृत्ति = जीविका, हाल, स्वभाव। नव-नव = सर्वथा नवीन। निर्दय = निष्ठुर, कठोर।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मैं यह देख चुका हूँ कि जो भी इस संसार में आया वह हमेशा ही विद्यमान नहीं रहा बल्कि उसे एक दिन यह संसार ही छोड़ना पड़ा और चाहे वह अच्छा हो या बुरा पर सभी भले बुरे

व्यक्तियों को यह संसार एक न एक दिन त्यागना ही पड़ा। कहने का अभिप्राय यह है कि मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है और इस संसार में जो पैदा होता है वह एक न एक दिन मृत्यु का ग्रास अवश्य बनता है।

कवि कह रहा है कि हमारा यह जीवन तो क्षणभंगुर ही है और हमारे ये उद्‌गार तथा हमारी सभी अभिलाषाएँ क्षणिक ही हैं। कवि ने उदाहरण देते हुये कहा है कि जिस प्रकार कोमल डालियों में विकसित होने वाले पल्लव पूर्णतया विकसित होने के पूर्व ही कठोर हाथों द्वारा तोड़कर मसल दिये जाते हैं उसी प्रकार इस संसार में बहुत से व्यक्तियों की अभिलाषाएँ पूर्ण होने के पूर्व ही मृत्यु उन्हें इस संसार से अलग कर देती है इस प्रकार व्यक्ति चाहे अच्छा हो या बुरा, सबको एक न एक दिन मरना ही पड़ता है।

कवि का कहना है कि जीवन में चाहे कितनी ही चिन्ताएँ और बाधाएँ आयें सबको सहना ही होगा और उनसे मुक्ति सहज नहीं है। कवि कह रहा है कि मानव का हृदय तो अंधा ही है और वह निष्ठुर बन्धनों में जकड़ा हुआ है अतः स्वाभाविक ही उसमें विचारशीलता की कमी है। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य सरलता से भुलावे में आ जाता है और वह जल्दी ही यह निश्चय नहीं कर पाता कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? अन्त में कवि कहता है कि इस संसार में केवल मैं ही नहीं, सभी छले गये हैं और व्यक्ति चाहे अच्छा हो या बुरा, उसे एक दिन मृत्यु का ग्रास बनना ही पड़ता है।

टिप्पणी—इस कविता में मानवीय भावनाओं की सरस अभिव्यक्ति की गयी है और शब्द सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह कविता उल्लेखनीय कही जा सकती है।

२१—हिन्दी के सुमनों के प्रति (पृष्ठ ६६)

संदर्भ—कवि निराला ने 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' कविता में अपने उपेक्षित एवं अभावग्रस्त जीवन का वर्णन करते हुए हिन्दी के भावी कवियों को हिन्दी संसार की कटुता से परिचित किया है।

मैं जीर्ण साज········महाराज। (पृष्ठ ६६)

शब्दार्थ—जीर्ण साज=छिन्न शोभा। बहु छिद्र=अनेक दोषों से युक्त। सुदल=अच्छी पंखुड़ियों वाले। सुरंग=सुन्दर रंग वाले। सुवास=सुगंध। सुमन=फूल। पद तल आसन=पैरों में पड़ा हुआ, आसन से नीचे गिरा हुआ, महत्वहीन।

व्याख्या—कवि हिन्दी के नवीन कवियों को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि मैं तो अब छिन्न शोभा वाला हो गया हूँ, और मुझमें अनेक दोषों का निवास भी हो गया है परन्तु तुम तो अभी वह फूल हो जिसमें सुन्दर पंखुड़ियाँ हैं, सुन्दर रंग हैं और सुगन्ध भी है। कहने का अभिप्राय यह है कि नवीन कवियों को हाल ही में विकसित होने वाला वह फूल समझना चाहिए जो अपनी नवीनता, सुन्दरता एवं सुगन्ध से सभी को अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेता है और अपने नवीन भावों, विचारों एवं अभिव्यक्तियों से हिन्दी संसार को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कवि का कहना है कि मैं तो अब वह व्यक्ति हूँ जो आसन के नीचे गिरा हुआ है अर्थात् महत्वहीन हो गया है और उसे–कवि को–अपनी काव्य रचना के द्वारा जो स्थान प्राप्त होना चाहिए था उससे वह वंचित रहा है। कवि नये कवियों से कह रहा है कि मैं भले ही उपयुक्त स्थान प्राप्त करने में समर्थ नहीं रहा परन्तु हे महाराज, तुम तो उस सिंहासन पर सरलतापूर्वक सुशोभित हो गये हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाराज शब्द का प्रयोग व्यंग्य प्रधान है और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग भी दर्शनीय है।

ईर्ष्या कुछ········पार्श्वच्छवि। (पृष्ठ ६६)

शब्दार्थ—ईर्ष्या=जलन। अग्रदूत=आगमन की सूचना देने वाला। पार्श्वच्छवि=पीछे की शोभा, उपेक्षित व्यक्ति।

व्याख्या—कवि हिन्दी के नवोदित कवियों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि यद्यपि मैं ही हिन्दी साहित्य संसार में वसत लाने वाला अग्रदूत हूँ और मैं आज पूर्णतः उपेक्षित व्यक्ति हूँ तथा मेरा आज हिन्दी साहित्य में वही स्थान है जो ब्राह्मण समाज में अछूत का रहता है परन्तु मैं तुमसे किसी भी प्रकार की ईर्ष्या नहीं करता। कवि का कहना है कि मैं आज पीछे की

शोभा बना हूँ अर्थात् साहित्य जगत में उपेक्षित हूँ परन्तु मुझे इसका तनिक भी दुःख नहीं है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की करुण आत्माभिव्यक्ति का भावपूर्ण चित्रण हुआ है।

तुम मध्य········रस रंग राग। (पृष्ठ ६६)

शब्दार्थ—महाभाग=शोभाशाली, सौभाग्यशाली। तरु=वृक्ष, पेड़। उर=हृदय। प्रशस्त=विस्तृत, विशाल। न्यस्त=फेंका हुआ। अलि=भ्रमर, भँवरा। नव=नवीन। राग=प्रेम, सांसारिक सुखों को पाने की चाह या अभिलाषा।

व्याख्या—कवि हिन्दी के भावी कवियों से कह रहा है कि हे सौभाग्य शाली; तुम मध्य भाग की शोभा हो और वृक्ष के हृदय के विस्तृत गौरव हो परन्तु मैं उस पत्र के समान हूँ जिसे पढ़कर फेंक दिया गया है। कवि हिन्दी के भावी कवियों से कहता है कि तुम भ्रमर को प्रदान करने वाले नवीन रस, रंग और राग हो परन्तु मैं तो अब सर्वथा महत्वहीन हो गया हूँ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में उपमा अलंकार का सार्थक प्रयोग हुआ है और महाकवि निराला ने यह स्पष्ट करनाँ चाहा है कि हिन्दी के नवोदित कवियों की उक्तियों में नवीन भावनाएं, कल्पनाएँ एवं अभिव्यंजना शैलियाँ होने के कारण वे आज के भ्रमररूपी पाठक को आनन्द प्रदान करने में सफल रही हैं।

देखो·········सम्बल। (पृष्ठ ६७)

शब्दार्थ—अंतर=हृदय। सम्बल=सहारा, आश्रय।

व्याख्या—कवि हिन्दी के नवीन कवियों से कह रहा है कि यह तो भविष्य ही बता सकेगा कि तुम जो भिन्न-भिन्न स्वर युक्त रचनाएँ प्रस्तुत करने का कार्य कर रहे हो, उसका फल भविष्य में तुम्हें क्या प्राप्त होगा। कवि हिन्दी के नवीन कवियों से कहता है कि यह तो भविष्य के गर्भ में ही विद्यमान है कि क्या तुम्हारा हृदय पार करके वह रस निकलेगा जो कि वृक्ष का अर्थात् पूर्ववर्ती कवियों का आश्रय बनेगा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने यह संकेत किया है कि यह तो भविष्य में ही निश्चित हो सकेगा कि हमारे नवोदित कवियों को अपने परिश्रम का क्या पुरस्कार मिलेगा और हिन्दी संसार उनका क्या सम्मान करेगा। साथ ही निराला जी ने पाठकों की मनोवृत्ति पर यह व्यंग्य भी किया है कि भ्रमररूपी पाठक का मन डोलायमान रहता है अतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे नवीन कवियों को हमेशा एक सा सम्मान प्राप्त होगा।

फल सर्वश्रेष्ठ·········एक बीज ! (पृष्ठ ६७)

शब्दार्थ—नायाब=अप्राप्य, जो सरलता से प्राप्त नहीं हो सकता। उर=हृदय। कटु=कड़आपन। एक बीज=जो अभी पल्लावित नहीं हुआ है।

व्याख्या—कवि नवोदित कवियों से कहता है कि सर्वश्रेष्ठ फल सफलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि वह तो अप्राप्य वस्तु है अतः तुम अपने कठोर परिश्रम से वह अप्राप्य फल प्राप्त करोगे या रंगा हुआ धागा बाँधकर ही रह जाओगे। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे भावी कवि स्थायी महत्व की कृतियों का सृजन करेंगे या फिर शृंगार-प्रेम की रचनाएँ करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेंगे। कवि का कहना है कि फल के हृदय में जो कटुता होती है क्या नवोदित कवि उसका परित्याग कर देंगे। कवि कह रहा है कि मेरा आलोचक तो अभी एक बीज के रूप में ही है और उसका विकास होना अभी बाकी है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि वही कृति शाश्वत महत्व की अधिकारिणी है जिसके निर्माण में कठोर परिश्रम किया जाय।

तुलनात्मक दृष्टि—वस्तुतः 'हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र' कविता में महाकवि निराला ने कवि का महत्व ही अंकित किया है और यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो कवि का महत्व पूर्वी और पश्चिमी सभी देशों में समान रूप से स्वीकार किया गया है। इस प्रकार एक ओर महर्षि व्यास ने कवि को

ब्रह्मा के समकक्ष महत्व प्रदान किया है और दूसरी ओर शेक्सपियर कवि को एक नूतन सृष्टि का रचयिता मानता है—

अपारे खलु संसारे कविरेव प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेद परिवर्तते ॥

The forms of thing unknown, the poets pen
Turns them to shapes and given to airy nothing
A Local habitation and a name.

—Shakespere

२२—सच है (पृष्ठ ६७)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'सच है' कविता में स्वानुभूतियों का भावपूर्ण चित्रण किया है ।

शब्दार्थ—हित = भलाई । अभिमान = गर्व । अथच = और, और भी । क्षार = भस्म । अविकच = अविकसित, जो खिला हुआ न हो ।

व्याख्या—कवि निराला कह रहे हैं कि यह सच है कि तुमने जो दान दिया है वह हिन्दी की भलाई के लिए न केवल गौरव है अपितु सच्चा कल्याणकारी भी है । कहने का अभिप्राय यह है कि कवि ने साहित्य जगत में जो कृतियाँ प्रस्तुत की हैं उन्होंने न केवल हिन्दी के गौरव की वृद्धि की है अपितु जनता की भावनाओं का प्रतिबिम्ब होने के कारण उन्होंने जन सामान्य का कल्याण ही किया है ।

कवि कहता है कि मुझे अपने जीवन में हमेशा संघर्ष करना पड़ा है और भले ही मुझे बार-बार पराजय का सामना करना पड़ा हो परन्तु मैं हतोत्साहित नहीं हुआ । कवि कह रहा है कि मैंने भस्म अर्थात् राख से भी नवीन फूलों की माला खोज ली और उक्त राख की जो धूल उड़ी उससे मेरा सारा शरीर भर गया । कवि का कहना है कि सच तो यह है कि वे फूल अब मेरे पास नहीं रहे और मुझे अब अपना अविकसित जीवन ही दिखाई देता है ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सरल सुबोध शब्दावली में अनूठी भावव्यंजना हुई है और कवि की स्वानुभूतियों का मर्मस्पर्शी चित्रण भी हुआ है ।

२३–युक्ति (पृष्ठ ६८)

संदर्भ—कवि निराला ने 'युक्ति' नामक कविता में यौवन की सार्थकता का तर्कसंगत चित्रण किया है।

शब्दार्थ—कालवायु = समय रूपी पवन। स्खलित = गिरा हुआ, निकला। कनक प्रसून = सोने का फूल, सुनहला फूल। यौवन = जवानी, तरुणाई, युवावस्था। गत = जो बीत गया है। तमकण = अँधेरे या अन्धकार का कण।

व्याख्या—कवि ने अपनी कविता के प्रारम्भ में यह शंका प्रस्तुत की है कि क्या यौवन स्थायी है और वह—कवि—यह भी कहता है कि क्या समयरूपी पवन सुनहले फूलों को डाल से अलग नहीं कर देता तथा यौवनरूपी धुआँ क्या इसी प्रकार विचरण करता रहेगा? कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पवन फूल को वृक्ष से अलग कर देता है उसी प्रकार यौवन भी स्थायी नहीं है और एक दिन उसका नष्ट होना अवश्यंभावी है अर्थात् मनुष्य की जवानी हमेशा नहीं रहेगी।

उक्त शंका का समाधान करते हुए कवि कह रहा है कि भले ही बीते हुए दिन आज से अधिक सुन्दर रहे हों और अब हमारा मन भी रिक्त हो गया हो परन्तु विगत जीवन तो आज भी हमारे मन को हर्षयुक्त बनाए हुए है। इसी प्रकार यौवन मनुष्य को सृजन की दिशा में गतिशील करता है और वह विविध दिशाओं में विकासोन्मुख भी रहता है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपनी युवावस्था में अनेक कार्यों को करने के लिए अग्रसर होता है। कवि कह रहा है कि मोह और पतनरूपी दशा में हम अन्धकाररूपी निराशा को गले लगाकर जीवित ही रहते हैं तथा अपने जीवन को एकदम से समाप्त नहीं कर देते अतः यौवनरूपी धुआँ भले ही बाह्य दृष्टि से नष्ट होता जान पड़े लेकिन उसका प्रभाव पूर्णतया मिट नहीं जाता।

टिप्पणी—इस कविता में कवि ने सरल शब्दावली में ही यौवन की सार्थकता स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

२४—परलोक (पृष्ठ ६८-६६)

संदर्भ—महाकवि निराला की 'परलोक' नामक कविता दार्शनिक भाव धारा से युक्त है।

शब्दार्थ—परलोक=स्वर्ग, दूसरा लोक। नयन=नेत्र। शत=सौ। सहस्र=हजार। पुलकित=प्रसन्न। प्लुत=गिरा हुआ। मृदु पद रज=कोमल चरणों की धूलि। विद्युत=बिजली। घन=मेघ, बादल। निर्विरोध=बिना किसी रुकावट या विरोध के। प्रतिहत=गिरा हुआ, निराश, पीछे हटाया हुआ। आलिंगन=भेंट, गले मिलना।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मनुष्य के नेत्र मुँद जायेंगे तब भला ब्रह्म के दर्शन हुए भी तो क्या लाभ है? कहने का अभिप्राय यह है कि मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग प्राप्ति की कल्पना भले ही आकर्षक प्रतीत होती हो पर जब हमारा यह शरीर ही नहीं रहेगा तब यह किसने देखा है कि सुख मिलेगा या नहीं। कवि कहता है सैकड़ो-हजारों जीवन सरलता से उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार एक प्याला गिर कर बिखर जाता है।

कवि कह रहा है कि यह जीवन तो नश्वरता-अनश्वरता के हिंडोले में झूल रहा है और प्रिय के कोमल चरणों की धूल भले ही अमूल्य निधि हो पर वह सर्वदा हमारे साथ नहीं रह सकेगी। कवि कहता है कि जिस प्रकार आकाश में बिजली और बादल गले मिलते हैं उसी प्रकार मानव जीवन भी क्षणिक सुखों का उपभोग कर पाता है।

कवि का विचार है कि आज जो व्यक्ति अपने जीवन में निराश है वह कल सुखी भी हो सकता है और बिना किसी विरोध के हर प्रकार का आनन्द प्राप्त कर सकता है परन्तु इसके साथ-साथ यह भी याद रखना होगा कि आज का अत्यधिक सुखी मानव कल दुःखी भी हो सकता है। इस प्रकार कवि मानव जीवन में सुख दुःख का रहना स्वाभाविक समझता है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में शब्द और अर्थ—कला और भाव—का सुन्दर समन्वय हुआ है तथा कुंतक ने अपनी उक्ति 'व्यसनियता प्रयत्न विरचिते हि प्रस्तुतौचित्यपरिहाणेर्वाच्यवाचकयोः परस्परस्पर्धित्वलक्षण साहित्य विरहः

पर्यवस्यति' के अनुसार शब्द और अर्थ के संतुलन का काव्य में एकांत महत्व माना है।

२५—पतनोन्मुख (पृष्ठ ६६)

संदर्भ—कवि निराला की कविता पतनोन्मुख में अवसादपूर्ण मानसिक दशा का चित्रण हुआ।

शब्दार्थ—दिनमान = दिन का प्रमाण। मास-मास = प्रति माह। गरल = विष, जहर। अनल = आग। हिम हत = बर्फ के प्रहार से घायल। पातों = पत्रों, पत्तों। शुष्क = सूखा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हमारे सुखी दिनों की समाप्ति का समय आ गया है। कवि का कहना है कि तुम प्रतिमाह और प्रति दिन तथा प्रतिक्षण कटुवचन रूपी जहर उगल रहे हो तथा हमारा जीवन भी असफलता के कारण जल रहा है। साथ ही बर्फ के आघातों को सहते-सहते पत्ते भी गिर रहे हैं और जीवन शुष्क एवं झुलसा हुआ ही प्रतीत होता है। कवि कहता है कि पल्लव की सुन्दरता झड़ने पर ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार डाली पर खिलते हुए फूल झड़ जाते हैं उसी प्रकार जो पैदा होता है उसका अन्त भी निश्चय है लेकिन हमें चाहिए कि अपने जीवन में असफलताओं से कभी भी विचलित न हों।

टिप्पणी—केवल नव पंक्तियों की इस कविता में सरल सुबोध शब्दावली में ही उत्कृष्ट भावों की अभ्यिक्ति की गयी है और यह कविता शब्द सौन्दर्य की अपेक्षा अथ वैशिष्टच की दृष्टि से बहुत अधिक उल्लेखनीय है।

२६—प्याला (पृष्ठ ६६-७०)

संदर्भ—महाकवि निराला की 'प्याला' कबिता में मृत्यु को जीवन का अनिवार्य सत्य मानकर मानव मात्र को जीवन-पथ पर सर्वदा अग्रसर रहने की प्रेरणा दी गई है।

शब्दार्थ—नश्वर = नाशवान। अगणित = अनेक, असंख्य। जंग = युद्ध। विपुल = बहुत अधिक। मृदु = कोमल। धरा = धरती, पृथ्वी। काल =

समय। गुण त्रय = सत, रज एवं तम नामक तीन गुण। समर = युद्ध। विधुप्लावित = चन्द्रमा की चाँदनी में डूबी हुई। मधु रात = वसंत ऋतु की रात्रि। पुलकप्लुत = प्रसन्नता या हर्ष से पूर्ण। आलोड़ित = मथा या हिलाया हुआ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन नाशवान है और समझ में नहीं आता कि वह कौन है जो जीवन रूपी प्याले को भर देता है पर यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो मृत्यु में ही निर्माण के बीज विद्यमान हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि मृत्यु तो अनिवार्य है परन्तु जीवन और मृत्यु का चक्कर तो चलता ही रहता है।

कवि का कहना है कि मृत्यु की बाधा तो जीवन में आती ही है परन्तु जो स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति हैं वे मृत्यु से कभी भी भयभीत नहीं होते और वे अनेक प्रकार के संघर्षों को सरलता से झेल लेते हैं। कवि कहता है कि तरंगों में असंख्य रंग भर कर व्यक्ति जीवन रूपी समर में विजय प्राप्त करने में सफल रहता है और वह मर कर भी अमर हो जाता है।

कवि कह रहा है कि उसने अनेक गीत रचे और रोज ही नवीन छंदों का निर्माण किया। इन गीतों में विभिन्न भावों की शृंखला विद्यमान थी और सैकड़ों मंगलमयी कामनाओं का चित्रण भी था। साथ ही उसके गीतों में कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई थी और उनमें–गीतों में—बहुत ही अधिक नवीन रस समाया हुआ था। कवि का कहना है कि यही कारण है कि उसके गीतों को सुनकर हृदय आनन्द से पुलकित हो उठता था।

कवि कहता है कि आकाश मंडल में ग्रह एवं तारा मंडल नृत्य कर रहे हैं अर्थात्- ग्रह और तारे चक्कर काट रहे हैं तथा प्रतिक्षण वे उठते-गिरते रहते हैं। कवि कह रहा है कि चंचल धरती भी घूम रही है और प्रत्येक व्यक्ति के मन में भी प्रतिपल सत, रज एवं तम नामक तीनों गुणों का संघर्ष होता है।

कवि का कहना है वासंती पवन भी काँप रहा है और प्रभात के समय वृक्षों के पुंजों पर फूल भी झूम-झूम कर नाचते हैं। कवि कहता है कि अब

पुनः वसंत की रात में आकाश चंद्रमा की चाँदनी से पूर्ण हो गया है और प्रसन्नता से पूर्ण सागर अपने प्रिय चन्द्रमा से गले मिलने के लिए उमड़ रहा है।

टिप्पणी—कवि निराला की 'प्याला' कविता में एक ओर तो चिन्तन पूर्ण भाव धारा के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर प्रकृति को पीठिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२७—रे कुछ न हुआ तो क्या (पृष्ठ ७०-७१)

संदर्भ—कवि निराला का यह गीत उद्‌बोधनकारी है और इसमें जीवन पथ पर सर्वदा गतिशील रहने की प्रेरणा दी गयी है।

शब्दार्थ—सब छाया से छाया=यहाँ सब कुछ छाँह से छाया हुआ है। नभ=आकाश।

व्याख्या—कवि सांसारिक प्राणियों को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम्हें अपने जीवन में असफलताओं से हताश. नहीं होना चाहिए क्योंकि जब यह संसार ही धोखा और भ्रम है तब तुम्हारा यह रुदन कि मेरा कुछ न हुआ, उचित नहीं जान पड़ता। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वास्तव में यह संसार ही भ्रम है अतः यदि यहाँ मनुष्य को किसी बात में असफलता प्राप्त होती है तो उसे हताश न होना चाहिए।

कवि का कहना है कि यहाँ अर्थात् इस संसार में सब कुछ छाँह से छाया हुआ है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस संसार का अस्तित्व वास्तव में कुछ भी नहीं है और उदाहरण स्वरूप यहाँ यह कहा जा सकता है कि आकाश, जिसका कुछ भी रंग नहीं है, नीला दीख पड़ता है। कवि कहता है कि मनुष्य की उत्थान-पतन तो स्वाभाविक ही है और जीवन-मरण भी क्रमानुसार होता ही रहता है अर्थात् इस सृष्टि में नित्य ही कुछ मनुष्य मरते हैं और कुछ पैदा होते हैं पर इसका अर्थ यह नहीं है कि सृष्टि के इस क्रम से मनुष्य निरुत्साहित हो? कवि कहता है कि उक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर मनुष्य को यह न भूलना चाहिए कि यदि आज उसे असफलता मिल

रही है तो कल सफलता भी प्राप्त होगी और इस प्रकार उसे अपनी असफलताओं से निराश नहीं होना चाहिए।

कवि सांसारिक प्राणियों को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम जीवन पथ में चलते-चलते, मार्ग में थमकर कहीं विश्राम लेने लगते हो और उस समय तुम प्रलाप करने से भी नहीं चूकते अर्थात् तुम इस संसार के प्रति अपनी भावनाएँ व्यक्त करने लगते हो पर तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं है। कवि का कहना है कि यदि संसार में किसी भी प्रकार की दुर्बलता हो तो इसके लिए मनुष्य को प्रलाप करना शोभा नहीं देता क्योंकि एक न एक दिन संसार अपनी उन दुर्बलताओं को स्वयं ही दूर कर लेगा अत: मनुष्य को चाहिए कि अपनी असफलताओं से हताश होने की अपेक्षा धैर्य रखे।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीतों में कवि निराला ने सरल एवं सुबोध शब्दावली की सहायता से यह स्पष्ट करना चाहा है कि संसार वास्तव में कुछ भी नहीं है और मनुष्य को अपनी असफलताओं से हताश नहीं होना चाहिए।

२८—कौन तम के पार (पृ० ७१-७२)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत रहस्यवादी है और इसमें कवि निराला का मूल प्रतिपाद्य विषय यह है कि आकाश ही स्थूलतर होता हुआ अन्य चार तत्त्वों में परिणत होता है अत: परिवर्तन शील होने के कारण तम के पार कुछ भी नहीं है।

शब्दार्थ—तम = अंधकार। स्त्रोत = प्रवाह। जल मग = स्थावर जंगम। गगन = आकाश। कूल = किनारा। कच = बाल। अलि = भ्रमर। स्पर्शशर = स्पर्श का तीर। तम भेद = अंधकार को पारकर। असार = व्यर्थ, बेकार। आतप = गर्मी। कलुष = पाप।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि अंधकार के पार कोई है, यह मुझे कौन बतला सकता है अर्थात् क्या कोई ऐसा है जो यह बतलाये कि अंधकार के उस पार कौन है? कवि पुन: कहता है कि यह स्थावर जंगम सृष्टि ही सम्पूर्ण लोक के पुल के प्रवाह हैं अर्थात् इस अचल-चल धरती में ही हमें सभी लोक विद्यमान समझना चाहिए और यह न भूलना चाहिए कि आकाश ही

घनीभूत होकर मेघ की धार बनता है। वस्तुतः कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि इस अंधकार या अज्ञान के परे कुछ नहीं है और वह इसी को प्रमाणित करने के लिए विरोधी सत्यों का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार कवि कहता है कि अखिल अर्थात् पूर्ण काल, जो कि सबको व्याप्त किए हुए है, अविच्छेद है और उसी के पल के स्त्रोत ये जड़ जंगम हैं तथा पृथक्-पृथक् खंड-खंड व सूक्ष्मतम आकाश भी स्थूल होकर मेघ की धारा बनता है। अतएव जबकि आकाश ही स्थूलतर होता हुआ अन्य चार तत्वों में परिणत होता है तब इस प्रकार उसके परिवर्तन शील होने के कारण वास्तव में तम के पार कुछ भी नहीं है।

कवि का कहना है कि मानव हृदय के सरोवर रूपी तट पर सरोवर के कमलों की सुगन्ध से व्याकुल हो रहे हैं और उस सरोवर की लहरें किसी मनुष्य के बाल के समान हैं तथा उसके मुख कमल पर किरणें पड़ रही हैं। साथ ही आनन्द रूपी भ्रमर स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है अर्थात् तीर के निकालने से भी एक प्रकार का स्पर्श होता है, जो सुखद है। वस्तुतः यहाँ 'स्पर्श शर' का अर्थ रूप का चुभा तीर है और गूँज बारम्बार द्वारा कवि भ्रमर को बार-बार गूँजने के लिए भी कहता है अतः इससे स्पष्ट है कि कवि यहाँ पाँचों तत्वों का उल्लेख कर रहा है और उसका कहना है कि ये पाँचों तत्त्व माया के अंतर्गत ही तो हैं तथा उनमें बँधा हुआ मनुष्य तम के पार कैसे हो सकता है ?

कवि अब उदय, अस्त एवं रात्रि का चित्रण करते हुए कहता है कि यद्यपि यह तीनों पृथक्-पृथक् रूप से सुख का बोध कराते हैं पर यहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि सार हैं या असार, अतः यह भी तम के पार नहीं हैं। कवि का कहना है कि तुम विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकते कि उदय से अन्धकार को भेदकर आने वाली यह सुन्दर आँखें हैं या उदय से अँधेरे को भेदकर आनेवाला सूर्य जिसका उत्तम नयन है ? साथ ही कवि यहाँ यह भी कहता है कि सूर्यास्त के समय अर्थात् रात्रि का आगमन होने पर शनैः शनैः सभी मनुष्यों को नींद

सी आने लगती है पर यह नहीं कहा जा सकता कि रात्रि का प्रिय हृदय पर शयन सार है या असार ?

कवि कहता है कि गरमी के ही कारण जल वाष्प और मेघ बनकर बरसता है तथा पाप के कारण ही या पाप से ही निष्कलुष होता हुआ मनुष्य कोमल बनता है। साथ ही केवल जो पत्थर है, अशिव है वही मंगल और शिव है परन्तु जो गला हुआ जल है, वही बर्फ है अर्थात् पत्थर है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि तम के पार किसी की सत्ता भी है ?

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत कवि निराला के उल्लेखनीय रहस्यवादी गीतों में से एक है और इसमें परस्पर विरोधी सत्य के प्रदर्शन से अद्वैतवाद की पुष्टि की गयी है तथा काव्यकला की दृष्टि से भी यह एक उत्कृष्ट गीत है।

तुलनात्मक दृष्टि—पाश्चात्य कवि वर्डस्वर्थ ने भी बहुत कुछ इसी के अनुरूप विचार एक स्थल पर प्रकट किए हैं—

The river glideth at his own sweet will
Dear God ; The very houses seen a sleep
And all the mighty heart is lying still

२६—अस्ताचल रवि, जल छल छल छवि (पृष्ठ ७२)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में महाकवि निराला ने प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन किया है।

शब्दार्थ—अस्ताचल रवि=छिपता हुआ सूर्य। स्तब्ध=शांत, मौन। उन्मन=अनमना, उदास। सुधि=याद। परिमल=सुगन्धि। पुरातन=प्राचीन, पुरानी। मृदुतर=अधिक से अधिक कोमल। प्रतनु=क्षीण। देह=शरीर। गेह=घर। नूतन=नवीन। सित=श्वेत, सफेद। अमित=अपार। दोलति=डोलायमान, हिलता-डुलता।

व्याख्या—कवि प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करते हुए कहता है कि सूर्य अब छिपने वाला ही है और उसकी छलकती हुई शोभा जल में दिखाई दे रही है तथा विश्व कवि अब मौन हो गया है। कवि कह रहा है कि सृष्टि का

जीवन अनमना हो गया है और मन्द मन्द बहती हुई पवन स्मरण कर, सुगन्धि की पुरानी कथा कह रही है।

कवि सांध्यकालीन प्राकृतिक सुषुमा का वर्णन करते हुए कहता है कि दूर नदी पर एक सुन्दर नौका स्वर के समान अधिक से अधिक कोमल गति से बहती हुई दिखाई दे रही है और वहाँ प्रेम की, क्षीण काया वाली एवं नवीन सूर्य छवि बिना घर के बैठी हुई है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कवि ने स्वर गति के साथ नौका की मृदुतर गति की उपमा दी है और यह उसका अत्यन्त भावपूर्ण प्रयोग है।

कवि कहता है कि धरती पर मेघों का सफेद छाता शोभा दे रहा है और नीचे अपार जल डोल रहा है तथा ध्यान, नयन, मन एवं चिन्तनीय प्राण आदि सब, सूर्य ने अपनी किरणों को समेट कर समाप्त कर दिए हैं।

टिप्पणी—कहा जाता है कि महाकवि निराला ने अधिकांशतः प्रकृति चित्रण हृद्‌गत भावनाओं को व्यक्त करने के लिए ही किया है परन्तु प्रस्तुत गीत के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निरालाजी को आलम्बन रूप में प्रकृति वर्णन करने में भी पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही इस गीत में अनुप्रास एवं उपमा अलंकार का भी सफल प्रयोग हुआ है और कवि की चित्रोपम कल्पना भी निस्संदेह सराहनीय है।

३०—दे, मैं करूँ वरण (पृष्ठ ७३)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में कवि निराला माता सरस्वती से यह प्रार्थना कर रहे हैं कि वे उन्हें यह वरदान प्रदान करें कि अब वे—कवि निराला—कायरता को अपने जीवन से हमेशा के लिए दूर कर अपने दोषारोपण का स्वभाव त्याग दें और मृत्यु का भी धैर्य एवं वीरता के साथ सामना करने को प्रवृत्त हों।

शब्दार्थ—वरण = चुनना, स्वीकार करना। जननि = माता, यहाँ सरस्वती से अभिप्राय है। दुःखहरण = दुःखों को दूर करने वाली। पद राग रंजित = पद अर्थात् चरण जो कि लाली रचा दिये गये हैं। भीरुता = कायरता। पाश = बंधन। छिन्न हों = टूट जायँ। रोध = रुकावट, बाधा। दिवस निशि =

दिन और रात। अनुसरण = पालन। लाँछना = कलंक, दोष। अनल = आग। भक्ति नत नयन = भक्ति अर्थात् पूजा के लिए झुके हुए नेत्र। अविरत = लगातार। पार कर = त्यागकर। जीवन प्रलोभन = जीवन का लालच। समुपकरण = पदार्थ। प्राणसंघात = मृत्यु। सिन्धु = सागर। तीर = किनारा, तट। तरंग = लहर। समीरण = वायु, पवन।

व्याख्या--कवि कहता है कि हे माता ! मुझे यह वरदान दो कि मैं सहर्ष दुःखों को दूर करनेवाले और लालिमा से रचित तुम्हारे चरणों की कृपा प्राप्त कर मृत्यु को भी स्वीकार कर लूँ। वस्तुतः कवि को यह विश्वास है कि वह अपनी आराध्या शक्ति की कृपा से मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है और यही कारण है कि वह यहाँ आराध्या शक्ति से यही प्रार्थना करता है कि वह उसे अपने चरणों में शरण प्रदान करें।

कवि अपनी आराध्या शक्ति को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि हे माता ! मेरे जीवन में कायरता के जितने भी बन्धन हैं वे सभी नष्ट हो जायें और जीवन पथ में जो भी रुकावटें हों वे सब दूर होकर मुझे आगे बढ़ने का विश्वास प्रदान करें तथा मैं दिन रात तुम्हारी आज्ञा का पालन करता रहूँ। कवि ने यहाँ यह स्पष्ट कर दिया है कि वह कायरता को दूर कर सर्वदा अपनी आराध्या शक्ति की आज्ञाओं का ही पालन करना चाहता है।

कवि अपनी आराध्या शक्ति से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे माता ; मेरे हृदय में जो दोषारोपण की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है वह आग के सदृश्य जलकर नष्ट हो जाय। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उसमें किसी पर भी किसी प्रकार का दोष लगाने की आदत न रहे तथा वह शक्ति पूर्वक अपनी आराध्या शक्ति की भक्ति से झुके हुए नेत्रों से अपने पथ पर जीवन के लोभ के सम्पूर्ण पदार्थों को त्यागकर चलता रहे।

गीत के अन्तिम अंश में कवि अपनी आराध्या शक्ति से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे माता ! मैं मृत्यु सागर तट पर बैठा हुआ यह नहीं गिनता रहूँगा कि उसमें कितनी लहरें हैं अर्थात् मैं मृत्यु से भयभीत होकर उसके दिन नहीं गिनूँगा बल्कि धैर्यपूर्वक वायु की भाँति उसे पार कर जाऊँगा। कवि के

कहने का अभिप्राय यह है कि माता सरस्वती की कृपा से यह मृत्यु से भी भयभीत न होगा और साहसपूर्वक मृत्यु का भी सामना करेगा।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत में उपमा एवं अनुप्रास अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है और कवि के आस्थापूर्ण हृदय का भी परिचय मिलता है तथा हम देखते हैं कि वह मृत्यु का सामना करने को भी तत्पर है।

३१–अनगिनित आ गये शरण में जन, जननि (पृष्ठ ७३-७४)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में जननी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए बतलाया गया है कि जो भी व्यक्ति माँ की शरण में आ जाता है वह कीचड़ से कमल बन जाता है और उसके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं तथा वह गुणों का आगार बन जाता है।

शब्दार्थ—अनगिनित = असंख्य, जिनकी गणना न की जा सकती हो। सुरभि = सुगंधि। सुमनावली = फूलों की पंक्ति या कतार। मधु ऋतु = वसंत ऋतु। अवनि = पृथ्वी। पंकउर = कीचड़ युक्त हृदय अर्थात् जिस हृदय में बुरी भावनाएँ हों। पंकज = कमल। ऊर्ध्व दृग = ऊँची दृष्टि, आँखें उठाये हुए। मुक्ति मणि = मुक्ति की मणि, सूर्य। निशि = रात्रि। लख = देखकर। दिशि = दिशा। अखिल = सम्पूर्ण।

व्याख्या—कवि जननी की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि हे माता! असंख्य मनुष्य तेरी शरण में आ गये हैं और तेरी हैं और तेरी कृपा की सुगंधि से पूर्ण फूलों की पंक्तियाँ विकसित हो रही हैं अर्थात् चारों ओर सुगंधिपूर्ण फूल खिल रहे हैं तथा धरती पर वसंत ऋतु छा गयी है।

कवि माता को सम्बोधित कर कहता है कि तुम्हारे प्रेम के कारण कीचड़युक्त हृदय में भी मधुर कमल खिल उठे हैं और वे आँख उठाये हुए आकाश में मुक्ति रूपी माठी अर्थात् सूर्य को देख रहे हैं। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मातृ स्नेह के फलस्वरूप ही कलुषित हृदय में भी पवित्र विचारों की सृष्टि होती है।

कवि कह रहा है कि रात्रि बीत गई है अतः उसके प्रस्थान को जानकर दिशायें हँसने लगी हैं और समस्त मनुष्यों के कंठ से आनन्द की ध्वनि गूँज

रही है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार रात्रि के बाद दिन आता है और चारों ओर अंधकार के स्थान पर शुभ्र आलोक फैलने लगता है उसी प्रकार मातृ-स्नेह से मनुष्य का जीवन सर्वदा सुखी हो जाता है।

टिप्पणी—वस्तुतः कवि ने यहाँ यह स्पष्ट करना चाहा है कि जननी के प्रेम में इतनी शक्ति है कि वह मनुष्य के हृदय की समस्त कालिमा को दूर कर देती है और उन्नत विचारों को ग्रहण कर जीवन मुक्त हो जाता है तथा उसे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दीख पड़ता है।

तुलनात्मक दृष्टि—'माता' का महत्व अनेक कवियों ने स्वीकार किया है और यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो जननी की महत्ता का प्रतिदापन करने वाली कविताओं की संख्या बहुत अधिक है इस प्रकार निराला के सदृश्य एक अन्य आधुनिक कालीन कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी अपनी 'माँ' शीर्षक कविता में माता की महत्ता स्वीकार करते हुए कहा है—

> हे जगजीवन की जननी, तू मेरा जीवन ही है त्याग।
> है अमूल्य वैभव वसुधा का तेरा मूर्तिमान अनुराग।
> धूलि धूसरित रत्न जगत का है तेरी गोदी का लाल।
> है जग बाल जगत का रक्षक माँ तेरी मृदु बाहु मृणाल।
> कितनी घोर तपस्या करते पाती है तू यह वरदान?
> किन्तु विश्व को अनायास ही कर देती है उसे प्रदान।
> है तुझसे लालित पालित यह भोला भाला सा संसार।
> करती है प्लावित वसुधा को तेरी प्रेम सुधा की धार।

३२—पावन करो नयन (पृष्ठ ७४)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में दो चित्रों की अवतारणा हुई है, जिनमें से प्रथम रश्मि से सम्बन्धित है और दूसरा शरदिन्दु से। इस प्रकार कवि ने एक ओर तो रश्मि से यह अनुरोध किया है कि वह उच्च पदार्थों को त्यागकर लघुतर पदार्थों में अपनी ज्योति का प्रकाश कर और दूसरी ओर उसने शरदिन्दु से यह प्रार्थना की है कि वह अपना वैभव त्यागकर दुख रूपी रात्रि को नष्ट करे।

शब्दार्थ—पावन=पवित्र, पुनीत। रश्मि=किरण। सतत=सर्वदा, हमेशा, लगातार। विश्व-छवि=संसार की शोभा या सुषमा। प्रतनु=अत्यंत क्षीण। शरदिन्दु वर=शरद् ऋतु के श्रेष्ठ चन्द्रमा। पद्म जल विन्दु=कमल पर पड़ी हुई जल की बूँदें। दुःख निशि=दुःख रूपी रात्रि।

व्याख्या—कवि किरण से कह रहा है कि तुम नेत्रों को पवित्र करो अर्थात् अपनी पवित्र आभा से चारों ओर पवित्रता का प्रसार करो। कवि किरण को सम्बोधित कर कहता है कि तुम नीले आसमान में रहने वाली होते हुए भी सम्पूर्ण संसार की शोभा में उतरकर अपने हल्के हाथों से संसार की श्रीवृद्धि करो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि नीले आसमान की निवासिनी होते हुए भी किरण को धरती में उतरकर उसकी शोभा बढ़ाना चाहिए।

कवि चन्द्रमा को सम्बोधित कर कहता है कि हे अत्यंत क्षीणकाय शरद्-कालीन श्रेष्ठ चन्द्रमा; तुम कमल जल की बूंद पर, सुन्दर स्वप्न की सुघर जागृति बनकर दुःख रूपी रात्रि को नष्ट करो। वस्तुतः शरद्ऋतु में कमल पर जो ओसकण दीख पड़ते हैं, वे यहाँ कवि को कमल के अश्रु जान पड़ते हैं और कवि यहाँ यह कल्पना करता है कि सूर्य न दिखाई पड़ने से कमल रो रहा है। इस प्रकार कवि शरत्कालीन चन्द्रमा को सम्बोधित कर कहता है कि स्वप्न में प्रकाश के कारण कमल को जागृति का सुख प्राप्त होगा अतः तुम उसकी सुघर जागृति बनकर आओ और दुःख रूपी रात्रि को नष्ट कर दो। (यद्यपि इस गीत की अंतिम पंक्ति का यह अर्थ भी किया जाता है कि कवि शरद्कालीन चन्द्रमा को कमल के दुःख की रात में उसके जलबिन्दु पर अर्थात् अश्रुओं पर शयन करने के लिए कह रहा है लेकिन यह अर्थ युक्ति संगत नहीं जान पड़ता।)

टिप्पणी—वास्तव में यह गीत प्रेरणार्थक ही है और इसमें कवि निराला का अभिप्राय यह है कि 'प्रकृति के सुन्दर उपादानों की सार्थकता जगत की छोटी वस्तुओं को ग्रहण करने में तथा जगत् के दुःख दूर करने में है।'

३३—वर दे, वीणावादिनी वरदे ! (पृष्ठ ७४-७५)

संदर्भ—वस्तुत: 'वर दे, वीणावादिनी वरदे' नामक गीत महाकवि निराला की 'गीतिका' का सर्वप्रथम गीत है और इसमें माता सरस्वती की वंदना की गयी है ।

शब्दार्थ—वीणावादिनि = वीणा बजाने वाली सरस्वती । वर दे = वरदान प्रदान कर । स्वतंत्र रव = स्वतंत्रता अर्थात् स्वाधीनता के स्वर से पूर्ण । अमृतमंत्र = जो मंत्र अमर कर देने की क्षमता रखता है । नव = नया । अंधउर = जिसके हृदय के नेत्र अंधे हैं अर्थात् जो हृदयहीन है । बंधन स्तर = बंधनों का क्रम । जननि = जननी, माता । ज्योतिर्मय = प्रकाश युक्त । निर्झर = झरना । कलुष भेद तम हर = पापपूर्ण भेद भाव वाले अंधकार को दूर कर । जग = संसार, जगत । नवल = नवीन । जलद मंद्र रव = मेघों की गर्जना के समान गंभीर आवाज । नभ = आकाश । विहग वृन्द = पक्षियों का समूह ।

व्याख्या—कवि सरस्वती की वंदना करते हुए कहता है कि हे वीणा बजाने वाली ! तू हमें वरदान प्रदान कर और स्वाधीनता के स्वर से पूर्ण नवीन अमृत मंत्र से इस भारत भूमि को पूर्ण कर दे अर्थात् देश में स्वधीनता की लहर फैला दे । इसका यह अर्थ भी किया जा सकता है कि कवि सरस्वती से यह प्रार्थना कर रहा है कि वह कवि को यह वरदान प्रदान करे कि वह—कवि—स्वतंत्रता रूपी अमृत मंत्र को सम्पूर्ण देश में व्याप्त करने में सफल हो ।

कवि सरस्वती से कह रहा है कि हे वीणा वादिनि ! तू इस धरती के निवासियों के हृदय से अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर कर उनके हृदय में शुभ्र ज्ञानरूपी प्रकाश का झरना प्रवाहित कर । कहने का अभिप्राय यह है कि जिनके हृदय में अज्ञानता का वास है और इस अज्ञानता के फलस्वरूप जो लोग वर्ण, जाति, संप्रदाय आदि रूढ़िग्रस्त बंधनों में जकड़े हुए हैं, उनके हृदय से उस अज्ञानता को दूर कर, सरस्वती उनके बंधनों को छिन्न-भिन्नकर संसार

से पाप पूर्ण भेदभाव वाले अंधकार को नष्ट कर संपूर्ण सृष्टि को ज्ञान के समुज्जवल प्रकाश से आलोकित कर दे।

कवि अपनी प्रार्थना के अन्त में माता सरस्वती से यह अनुरोध करता है कि वे उसे नवीन गति, नवीनलय, नवीन छंद एवं तुक और नया कंठ व नवीन मेघों की गर्जना के सदृश्य गम्भीर आवाज प्रदान करें जिससे कि वह—कवि—नये आकाश को नवीन विहगावली के समान नये स्वरों से पूर्ण कर दे। इस प्रकार कवि का विचार अपनी उक्तियों में नवीनता का समावेश करने का जान पड़ता है और इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि नवीनता का कितना अधिक समर्थक है।

टिप्पणी—सरल, शब्द योजना में अनूठी भावाभिव्यक्ति इस गीत की सर्वप्रधान विशेषता है। साथ ही यह कविता एक ओर तो निराला की राष्ट्रीय मनोवृत्ति का परिचय देते हुए यह स्पष्ट करती है कि कवि अपनी उक्तियों में नवोन्मेष का कितना अधिक समर्थक है और दूसरी ओर इस गीत से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला की सभी उक्तियों पर दुरूहता का आरोप लगाना उचित नहीं है।

तुलनात्मक दृष्टि—यद्यपि आधुनिक युग में नवीनता के मोह में कविगण मंगलाचरण की प्रवृति को त्याग रहे हैं और अब प्राचीन कविता के सदृश्य खड़ी बोली की कविता में सरस्वती वन्दना आदि विषयों को अपनाने की प्रवृत्ति नहीं दीख पड़ती लैकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि खड़ी बोली के कवियों ने सरस्वती वन्दना विषयक छंद लिखे ही नहीं। यहाँ यह स्मरणीय है कि खड़ी बोली के उल्लेखनीय कवि राय देवीप्रसाद पूर्ण ने तो दस छंदों में सरस्वती की वन्दना की है और निराला की ही भाँति छायावाद के एक अन्य प्रमुख स्तम्भ श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने भी सरस्वती से यह प्रार्थना की है—

वाणी वाणी
जीवन की वाणी दो मुझको भास्वर !
मौन गगन को भेद
बोलते जिस वाणी में उड्डचर

जिसमें नीरव गिरि से निःसृत
होते मुखरित निर्झर !

और भी-

जो वाणी चिर जन्म मरण
तम औ, प्रकाश से है पर,
जो वाणी जीवन की जीवन
शाश्वत, सुन्दर, अक्षर !
वाणी वाणी
मुझको दो घट-घट की वाणी के स्वर !

३४—बन्दूँ पर सुन्दर तव (पृष्ठ ७५-७६)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में कवि निराला ने मातृभूमि भारत की सुन्दर वंदना करते हुए उसका—मातृभूमि का—स्वाभाविक चित्रण भी किया है ।

शब्दार्थ—बन्दूँ = वन्दना करता हूँ । तव = तुम्हारे । नवल = नवीन । जनक-जननि जननि = पिता एवं माता आदि जन्मदाताओं की माता । अम्बर = आकाश । स्वरोर्मियों = स्वर की लहरें । मुखर = बोलनेवाली । दिक्-कुमारिका = दिशारूपिणी कुमारियाँ । पिक = कोयल । रव = आवाज, ध्वनि । रंजित कर = रंग कर, प्रसन्न कर । दृग = नेत्र । पंच वाण = कामदेव के पाँच वाण । शर = वाण । भव = संसार । सचराचर = चल और अचल पदार्थ ।

व्याख्या—कवि मातृभूमि की वन्दना करते हुए कहता है कि हे माता ! मैं तेरे सुन्दर चरणों की वन्दना करता हूँ और इस वन्दना से अनेक छंदों एवं नवीन स्वरों का गौरव बढ़ाता हूँ । कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि जन्मभूमि भारत का गुणगान करने से कवि की कवितओं का गौरव ही बढ़ता है क्योंकि सत्कवि के लिए अपनी मातृभूमि की वन्दना करना आवश्यक है ।

कवि पुनः जन्मभूमि को जननी अर्थात् माता और जनक जननी अर्थात् पिता आदि जन्मदाताओं की माता कहकर सम्बोधित करते हुए कहता है कि तुम नवीन आकाश में ज्योति भरकर जाग्रत हो तथा स्वर की सुन्दर लहरें उत्पन्न हों और दिशाओं की कुमारी रूपी कोयल अपनी मधुर रागिनी सुनाने

लगे। कवि ने यहाँ मातृभूमि का महत्व प्रतिपादित करते हुए उसे समस्त देश-वासियों की माता कहा है और उसे सम्पूर्ण सृष्टि में प्रभाव व्याप्त रखनेवाली भी माना है।

कवि मातृभूमि को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे माता ! तुम संसार के प्रत्येक व्यक्ति के नेत्रों को प्रसन्नतापूर्वक अंजन से रंग दो अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को नवीन ज्योति प्रदान करो जिससे कि प्राणों में बसा हुआ कामदेव भी प्रभावहीन हो जाय और प्रत्येक के आँखों में बँधी सुन्दर शोभा संसार के चल एवं अचल सभी पदार्थों को आबद्ध कर ले।

टिप्पणी—सुन्दर, सरल पर भावपूर्ण शब्दावली में लिखे गए प्रस्तुत गीत में, कवि ने जन्मभूमि वन्दना का उदात्तरूप प्रस्तुत किया है। साथ ही सैकड़ों वर्षों के अन्तराल से भी परतंत्रता का यथावत् रहना उस समय कवि की अनुभूति का कारण बनता है और वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जब तक मातृभूमि को स्वतंत्रता नहीं मिलती तब तक जीवन से कोई लाभ नहीं है।

३५–भारति जय विजय करे (पृष्ठ ७६)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में कवि निराला ने भारतवर्ष की सीमासहित उसके गौरव का भावपूर्ण वर्णन किया है।

शब्दार्थ—भारति = सरस्वती, भारत माता। कनक शस्य कमल धरे = सोने के वर्ण के समान पीले कमल को धारण किए हुए। शतदल = कमल। पदतल = चरणों के नीचे। गर्जितोर्मि = सागर की गरजती हुई तरंगें। शुचि = पवित्र। चरण युगल = दोनों पैर। स्तव = प्रार्थना। तरु = वृक्ष। तृण = तिनका। वसन = वस्त्र। खचित = लगे हुए। सुमन = फूल। धवल = श्वेत, सफेद। शुभ्र = सफेद। हिम तुषार = बर्फ। उदार = विशाल हृदय का। शतमुख = सैकड़ों मुख। प्रणव = परमेश्वर।

व्याख्या—कवि भारत माता की सरस्वती के साथ समता प्रदर्शित करते हुए कहता है कि सरस्वतीरूपी भारत माता की जय हो। कवि का कहना है कि भारतमाता सरस्वती के समान सोने के वर्ण के सदृश्य पीले शस्यरूपी कमल को धारण किये हुए हैं और लंका ही उसके चरण कमल हैं, जिन्हें

गरजती हुई तरंगों से युक्त सागर अपने पवित्र जल से धोता रहता है तथा उन लहरों का गर्जन ही मानो अनेक प्रकार के अर्थों से युक्त की गई स्तुति या प्रार्थना है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार सरस्वती हाथ में कमल धारण किए रहती है, उसके चरण कमल फूलों पर टिके रहते हैं, लोग उसके चरणों को श्रद्धापूर्वक जल से पखारते हैं अर्थात् धोते हैं और उसकी स्तुति करते हैं, उसी प्रकार भारतमाता कनक शस्यरूपी कमल धारण किए हुए है, लंकारूपी कमल उसके चरणों की शोभा बढ़ा रहा है तथा गरजता हुआ सागर अपने पवित्र जल से उन चरणों का प्राक्षालन कर उनकी स्तुति करता रहता है।

कवि कह रहा है कि वृक्ष, तिनके और वन की लताएँ ही भारतमाता के ताज हैं तथा फूल ही उसके अंचल में लगे हुए सितारे हैं और वह गंगा के समान चमकते हुए जलकणों की श्वेत धारा का हार गले में धारण किए हुए है। इन पंक्तियों में भी कवि ने भारतमाता की समता सरस्वती से की है और हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार सरस्वती सुन्दर वस्त्र पहने रहती है, उसके वस्त्रों पर सितारे लगे रहते हैं और उसके गले में श्वेत मोतियों का हार रहता है उसी प्रकार भारतमाता को भी कवि निराला ने इन्हीं उपकरणों से सुसज्जित माना है।

कवि भारतमाता की समता सरस्वती से करते हुए कहता है कि जिस प्रकार सरस्वती श्वेत मुकुट धारण किए रहती हैं उसी प्रकार भारतमाता भी बर्फ का मुकुट धारण किए हुए है। साथ ही जिस प्रकार अनेक व्यक्ति सरस्वती के प्रसंग में भगवान की स्तुति करते हैं अर्थात् सरस्वती को भगवान समझकर उसकी वन्दना करते हैं उसी प्रकार विशाल दिशाएं सैकड़ों मुखों से सैकड़ों प्रकार की ध्वनियाँ करती हुई प्राण परमेश्वर ओंकार का जाप करती रहती हैं।

टिप्पणी—वस्तुतः निराला के राष्ट्रीय जनजागरण सम्बन्धी कई गीतों में से यह गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय माना जाता है और इसमें कवि निराला ने भारत माता की समता सरस्वती के साथ करते हुए भारत की सीमासहित

उसकी गौरव महिमा का वर्णन किया है। निराला जी का कहना है कि 'ऐसे भारत की भारती (सरस्वती) विजयिनी हो, जिसके चरण प्रांत पर कमल रूप में लंका विराजमान है, सागर की तरंगें सदैव गरज गरज कर जिसके पदों का प्राक्षालन करती रहती हैं और अनेक अर्थ भरे शब्दों से स्तुति गान करती हैं।' साथ ही 'इस गीत में राष्ट्र की गुरुता के साथ-साथ भारती शुचिता भी सुन्दर हो उठी है। यद्यपि यह गीत प्रार्थना परक है तथापि इसमें राष्ट्रीय जागरण के भाव भी संनिहित हैं। भारतीय संस्कृति के चिह्न कमल की ओर संकेत कर तथा ओंकार की ध्वनि में कवि ने इस गीत को अत्यधिक सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीयतावादी बना दिया है।' शिल्प विधान की दृष्टि से भी यह गीत उत्कृष्ट है और इसमें रूपक, उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास आदि अलंकारों की मनोहर व्यंजना भी हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी एक स्थल पर मातृभूमि का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है—

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्यचन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

३६—जग का एक देखा तार (पृष्ठ ७७)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में कवि निराला ने संसार में सर्वत्र अनूठी साम्यता का होना स्वीकार किया है।

शब्दार्थ—अगणित = असंख्य, अनेक प्रकार के। देह सप्तक = शरीर सातों स्वरों की समष्टि। बहुरंग = बहुत रंग के। गंधशत = सैकड़ों प्रकार की सुगंध से युक्त। अरविन्द नन्दन = कमल के फूलों को आनन्द देने वाला। विश्ववन्दन सार = संसार की वन्दना का सार। अखिल उर रंजन = सबके हृदय को हर्षपूर्ण करनेवाला। निरंजन = ब्रह्म, परमात्मा। अनादि = आदि-

रहित, जो बहुत दिनों से चला आता हो। निर्मल = स्वच्छ। सुख विस्तार = सुख फैलानेवाला। अयुत = अयुक्त, अमिश्रित। सुसिंचित = भली भाँति सींचा गया। तत्व नभ तम = तत्वरूपी आकाश के अन्धकार में। सकल भ्रम शेष = सभी प्रकार के भ्रम दूर कर देनेवाला। श्रम निस्तार = परिश्रम या मेहनत से छुटकारा दिलानेवाला। अलक मण्डल = बालों का घेरा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि इस संसार में एक प्रकार की समानता सी दीख पड़ती है और चाहे कंठ कितने ही प्रकार के क्यों न हों परन्तु सातों स्वरों की समष्टि शरीर से एक ही मधुर झंकार निकलती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि आकृति, जाति, भाषा अथवा इसी प्रकार की बाह्य विभिन्नताओं से मनुष्य जाति को अलग-अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि एक दृष्टि से तो सभी मनुष्य एक समान हैं।

कवि उदाहरण देते हुए कहता है कि जिस प्रकार अनेक सुन्दर-सुन्दर रंग के फूलों से बना एक सुन्दर हार बहुरंगी फूलों का समूह होते हुए भी एक हार ही कहलाता है और एक ही हृदय की शोभा बढ़ाता है उसी प्रकार विविध जातियों को देखकर यह न समझना चाहिए कि मानवता की दृष्टि से भी वे पृथक्-पृथक् हैं क्योंकि उनमें एक ही प्रकार की मनुष्यता है। कवि कह रहा है कि सैकड़ों प्रकार की सुगंध से युक्त, कमल के फूलों को आनन्द देने-वाला, संसार की वन्दना का सार एवं सबके हृदय को हर्षपूर्ण करनेवाला बिना किसी बाह्यरूप का वही एक अनिल उदार परमात्मा ही है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि एक ब्रह्म की सत्ता ही सर्वत्र व्याप्त है।

कवि का कहना है कि वह अनादि ब्रह्म सर्वदा सत्य ही है और वह निर्मल एवं सभी सुखों का विस्तार करने वाला है तथा उसके अमिश्रित अधरों में भलीभाँति अनुराग ही विद्यमान रहता है अर्थात् वह सबसे प्रेम करता है। कवि पुनः कहता है कि इस तत्वरूपी आकाश के अन्धकार में सभी प्रकार के भ्रम दूर करने वाला और परिश्रम से मुक्ति दिलानेवाला वही ब्रह्म है जिसका मुखचन्द्र हमेशा चमकता रहता है।

टिप्पणी—महाकवि निराला ने इन पंक्तियों में एक ब्रह्म की सत्ता ही

सर्वत्र व्याप्त मानी है और साथ ही ब्रह्म के साथ जगत का अनिवार्य सम्बन्ध भी स्वीकार किया है तथा उस ब्रह्म के आधीन ही सर्वत्र सृष्टि को माना है।

३७—टूटें सकल बन्ध (पृष्ठ ७७-७८)

संदर्भ—वस्तुतः महाप्राण निराला साहित्यजगत में क्रान्तिकारी कवि के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं और उन्होंने छंद साधना में भी मुक्त छंद का समर्थन किया है। इसीलिए इस गीत में वह सभी बन्धनों के विच्छिन्न होने का संकेत कर रहे हैं।

शब्दार्थ—सकल = सभी, समाप्त। बन्ध = बन्धन। दिशाज्ञान गत = दिशा के विचार से रहित, एकदेशिकता से हीन, पक्षपात शून्य। रुद्ध = रुकी हुई। शिखर—पर्वत की चोटी। निर्झर = झरना। रन्ध्र = छेद। रश्मि = किरण। ऋजु = सरल, सीधा, जो टेढ़ा न हो। वर्ण जीवन फले = रंगों का जीवन प्रतिफलित हो। तिमिर = अँधेरा, अन्धकार।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि कलि के सभी बन्धन छिन्न-भिन्न हो जायँ और दिशा के विचार से रहित होकर सुगन्ध चारों ओर प्रसारित हो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे समाज में किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं होना चाहिए और जिस प्रकार सुगन्ध किसी भी दिशा विशेष का पक्षपात न कर, पक्षपात शून्य हो, चारों ओर मधुर गन्ध का प्रसार करती है, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि वह सबको सुख पहुँचाये तथा किसी का भी पक्ष न लें।

कवि का कहना है कि जल की जो धार अभी तक प्रवाहित नहीं हो पायी अर्थात् जिस जलधारा का मार्ग अब तक अवरुद्ध था वह अब प्रवाहित होने लगे और पर्वत चोटियों से अनेक निर्झर स्रोत झरने लगे तथा सैकड़ों शून्य छिद्रों में अनेक मधुर भावनायें उत्पन्न हो जायँ। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि सामाजिक प्रगति में किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए और जो शून्य हृदय हैं तथा जिनके हृदय में मधुर भावनाओं का अभाव है, उनके हृदय भी अब सुमधुर भावनाओं से पूर्ण हो उठें।

कवि कहता है कि किरण सैकड़ों रंग के चित्र अंकित करे और उन चित्रों

में किसी भी प्रकार की दुरूहता न हो जिससे कि वह सबके लिए सुबोध हो तथा अन्धकार दूर होकर रंगों का जीवन प्रतिफलित हो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में किसी भी प्रकार की अज्ञानता न रहे और सभी बातें अर्थात् सांसारिक क्रियाकलापों को सफलतापूर्वक समझा जा सके।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत में कवि निराला ने अपना लोक कल्याणकारी दृष्टिकोण ही व्यक्त किया है। साथ ही यह गीत काव्य शिल्प की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है और इसमें गतिशील सौन्दर्य के भी चित्र अंकित किये गए हैं।

३८—बुझे तृष्णाशा-विषानल······(पृष्ठ ७८)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में महाकवि निराला ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से अपना जीवन दर्शन व्यक्त किया है।

शब्दार्थ—तृष्णाशा विषानल=तृष्णा अर्थात् प्यास, आशा और विष की आग। गंध मुख=सुगंधित मुख। गगन=आकाश। अवनि=धरती, पृथ्वी। सानंद=आनंद पूर्वक। कारा=बंदीगृह।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि तृष्णा, आशा और विष की आग बुझ जाय तथा भाषा रूपी अमृत के झरने निर्झरित होने लगें। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य के हृदय में जो कामनारूपी आशा है उसे कवि निराला विषाग्नि मानते हैं क्योंकि इच्छा ही मनुष्य को भ्रम में डाल देती है। इसी लिए कवि उस अग्नि को समाप्त कर अमृत के झरने प्रवाहित होने की इच्छा प्रकट कर रहा है। कवि का कहना है कि प्राणों से अर्थात् हृदय से एक ऐसी ध्वनि निकले जो आकाश से धरती तक गूँजती रहे और ओस से धोये गये अनुपम फूलों के खिलने पर किरणें उन्हें चूमती हुई दीख पड़ें।

कवि कहता है कि फूलों के मुख में एक ओर तो सुगंध है और दूसरी ओर उनके हृदय में मकरंद है तथा उन्हें आनंदपूर्वक चारों ओर चूमने का अवसर भी प्राप्त होता है कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य यदि फूलों का सा आचरण रखेगा अर्थात् उसकी सद्वृत्तियों का अतिरेक होगा तो निस्संदेह उसकी सर्वत्र ही पूजा होती रहेगी। कवि कह रहा है कि जो फूल डालियों में खिलकर शोभाशाली जान पड़ता है तब उसका भयंकर पतन होता

है अतएव मनुष्य के हृदय में ऐसी भावना होनी चाहिए जो उसे आकाश से धरती तक मान दिलाती रहे।

कवि का कहना है कि हमारे हृदय में क्षुद्र भावनाएँ कदापि न होनी चाहिए और हम इस धरती से ऊँचा उठकर आग की ज्वाला बनकर अर्थात् हृदय में पूर्ण उत्साह भरकर आकाश को स्वयं अपनी दृष्टि से देखें। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि हम अपने हृदय की क्षुद्र भावनाएँ त्याग देंगे तो हम निस्संदेह अपने आपको सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचा सकेंगे। कवि कहता है कि हमारे समाज से भेद भावना भी दूर होनी चाहिए और यदि हम साहस एवं उत्साह से काम लेंगे तो हमारी ध्वनि आकाश से लेकर धरती तक गूँजती रहेगी।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत में कवि ने मानवजीवन की सफलता व्यापक दृष्टिकोण रखने पर ही मानी है और वह सद्वृत्तियों एवं सद्विचारों के साथ-साथ उत्साह और साहस का होना भी मानव मात्र में आवश्यक समझता है।

३६–प्रात तव द्वार पर (पृष्ठ ७८-७९)

संदर्भ—प्रस्तुत गीत में महाकवि निराला का अपार मातृप्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

शब्दार्थ—तव = तुम्हारे। नैश = रात्रि। अंध पथ = अंधकार पूर्ण अर्थात् कठिनाइयों से पूर्ण रास्ता। उपल = पत्थर। उत्पल = कमल। ज्ञात = मालूम। कंटक = काँटें। अवदात = मनोहर, सुन्दर। स्मृति = याद। अवसन्न = दुखी। भीरु = कायर, डरपोक। मलिन मन = दुष्ट या बुरा मन वाले। निशाचर = राक्षस। तेजहत = निस्तेज, तेजरहित। वन्य = वन के अर्थात् जंगल के।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे माता; मैं प्रातःकाल ही तुम्हारे द्वार पर रात्रि के अंधकार से पूर्ण मार्ग को पार करके आया। वस्तुतः कवि ने यहाँ माता के प्रति अपार निष्ठा व्यक्त की है और उनके कहने का अभिप्राय यह है कि रात्रि के अंधकारपूर्ण पथ अर्थात् कठिनाइयों से पूर्ण रास्ते को पार कर वह प्रातःकाल ही माता के चरणों में पहुँचने में समर्थ हो सका है।

कवि अब मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए कहता है कि माँ के

पास पहुँचते समय रास्ते के पत्थर मेरे पैरों में अवश्य लगे थे लेकिन वे मुझे कमल के समान कोमल जान पड़े और जो काँटे चुभे वे भी सुन्दर जागरण की भाँति प्रतीत हुए। कवि का कहना है कि मैं तुम्हारी—माता की—याद करते हुए ही रात भर उस मार्ग में चलता रहा और इस प्रकार तुम्हारा वर प्राप्त कर दुःख-सुख दोनों झेलते हुए मैं प्रातःकाल तुम्हारे द्वार पर पहुँच सका।

कवि माता को सम्बोधित कर कहता है कि हे जननी! तुम्हारी महत्ता को भला वे राक्षस क्या समझ सकते हैं जो कायर हैं, दुष्ट मतवाले हैं और वन के निवासी हैं। कवि कह रहा है कि हे माता; हमारे जीवन का वह भाग्य कहाँ जो प्रातःकालीन सुषमा रूपी धन को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ें तथा तुम्हारे अमर चरणों को ग्रहण करें। वस्तुतः कवि ने यहाँ अपनी विनम्रता ही व्यक्त की है और उसके कहने का अभिप्राय यह है कि वह अपने आपको माता के चरणों के योग्य समझ नहीं पाता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत गीत में कवि निराला की अपार निष्ठा व्यक्त हुई है और हम देखते हैं कि उन्होंने मातृ कृपा से स्वयं को अनेक बड़े-बड़े संकटों को पार करने के लिए सक्षम माना है परन्तु उनमें गर्व का लेशमात्र भी नहीं है। इसीलिए माँ के चरणों के समीप पहुँचकर भी उन्होंने स्वयं को माता के चरणों के योग्य नहीं समझा।

४०—सरोज-स्मृति (पृष्ठ ७६-६१)

संदर्भ—'सरोज स्मृति' महाप्राण निराला की सर्वाधिक मर्मस्पर्शी कविता है और इसमें उन्होंने अपने करुणा-विगलित जीवन का हृदय विदारक चित्रण करते हुए समाज की अंधी रक्त पिपासु रूढ़ियों के प्रति प्रचंड आक्रोश प्रकट किया है। वस्तुतः सरोज कवि निराला की पुत्री थी और वह अपनी उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही थी तब उसकी मृत्यु हो गयी। यहाँ यह स्मरणीय है कि अपनी इस पुत्री के जीवन को विमाता की छाया से बचाने के लिए ही जीवन भर दूसरा विवाह न करने का निश्चय किया था पर दैवयोग से कवि निराला के स्नेह की इस कोमल कली को काल के विकराल आघात ने विवाह

के पश्चात् तरुणावस्था में ही कुचल दिया। इस प्रकार 'सरोज स्मृति' कवि निराला के करुण हृदय की अपनी पुत्री के निधन पर लिखित पवित्र कथा है।

उनविंश पर....... शरण तरण ! (पृष्ठ ७९-८०)

शब्दार्थ—उर्पविंश = उन्नीस। जीवन सिंधु तरुण = जीवन रूपी भव सागर से पार होना अर्थात् मृत्यु। तनये = पुत्री। दृक्पात = आँखें बन्द करना, मृत्यु। जनक = पैदा करने वाला अर्थात् पिता। तज = त्यागकर। रूप नाम = सांसारिक रूप और नाम। अमर शाश्वत विराम = संसार से हमेशा के लिए मुक्ति। शुचितर = परम पवित्र। सपर्याय = सफलतापूर्वक। अष्टादशाध्याय = जीवन के अठारह वर्ष। मृत्यु तरणि = मृत्यु रूपी नौका। तूर्ण = शीघ्र गति से।

व्याख्या—कवि निराला अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर अपनी वेदना प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे पुत्री; उन्नीसवें वर्ष पर अपने जीवन का पहला चरण रखते ही तू संसार सागर को पार कर गयी अर्थात् तेरी मृत्यु हो गयी। निराला का कहना है कि हे पुत्री; तूने अपने यौवन में ही पिता से जीवन की अत्यंत कारुणिक और दुःखद विदा लेकर हमेशा के लिए नेत्र मूँद लिए। कवि निराला कह रहे हैं कि हे मेरी गीते; तूने भौतिक नाम, रूप के बंधन छोड़कर अमर, शाश्वत विश्राम अर्थात् मोक्ष को वरण किया और अपने जीवन के अठारह वर्ष तक पवित्रता और सफलतापूर्वक मानवीय जीवन को व्यतीत कर यह कहते हुए मृत्यु रूपी नौका पर सवार हो गयी कि हे पिता; अब मैं पूर्ण प्रकाश का वरण कर, अपनी वास्तविक ज्योति को प्राप्त करती हूँ पर यह मेरी मृत्यु नहीं है बल्कि अपनी सरोज का उस अमर ज्योति की शरण में स्थान पाने का प्रयत्न है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने भारतीय दर्शन के अनुरूप आत्मा की अमरता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। साथ ही निराला जी का यह भी कहना है कि मृत्यु वास्तव में उस अखंड ज्योति में आत्मारूपी

ज्योति का पुनर्मिलन है और यह स्थिति वास्तव में आत्मा का अमर एवं शाश्वत विराम है।

अशब्द अधरों............गई पार। (पृष्ठ ८०)

शब्दार्थ—अशब्द = शब्दरहित, मौन, मूक। अधर = ओष्ठ। भाषा = वाणी। प्रकाश = यहाँ चेतना या साहित्यिक प्रेरणा से अभिप्राय है। अहरह = दिन, रात। ज्योति-स्तरणा = सरस्वती, भारती। शत शर जर्जर = सैकड़ों वाणों से बिंधा हुआ। अक्षम = असमर्थ। सक्षम = समर्थ। दुस्तर = कठिन, कठोर। प्रयाण = प्रस्थान, यहाँ स्वर्गलोक जाने से अभिप्राय है। भावोदय = भाव का उदय। स्तब्धान्धकार = सघन अन्धकार।

व्याख्या—कवि निराला अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु पर अपनी आन्तरिक व्यथा प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं मौन अधरों की वाणी का स्रष्टा कवि हूँ और मैंने दिन रात सरस्वती के चरणों में रहकर कवि चेतना प्राप्त की है पर हे मेरी जीवन कविते; क्या तूने सांसारिक अभावों, बाधाओं, संघर्षों और संकटों के सैकड़ों वाणों से विद्ध, जर्जरित अति असमर्थ पिता को इस धरती पर छोड़कर मन में यही विचार कर स्वर्गलोक को प्रस्थान किया कि जब अति असमर्थ मेरे पिता स्वर्गलोक को प्रस्थान करेंगे तब मैं मार्ग में ही उन्हें इस गहन अन्धकार को पार करने में सहायता करूँगी। निराला जी अपनी मृत पुत्री सरोज को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि तेरा विनीत प्रयाण यही प्रकट करता है और कोई अन्य भाव इसके अतिरिक्त इसका नहीं है तथा तूने यही सोचकर श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को आकाश के सघन अंधकार को चीरकर स्वर्गलोक को प्रस्थान किया।

टिप्पणी—कवि ने यहाँ अपनी पुत्री सरोज को 'जीवित कविते' कहकर उसके जीवन की सम्पूर्ण पवित्रता और सुन्दरता को सूत्रबद्ध कर दिया है। साथ ही अपनी पुत्री की मृत्यु से निराला जी को ऐसा जान पड़ा कि जैसे किसी ने उनके हृदय में स्थित सरस्वती को छीन लिया हो और कवि अब असमर्थ, असहाय एवं दीन हीन होकर चीत्कार कर उठा हो। इस प्रकार यहाँ वेदना की गहरी अनुभूति दर्शनीय है।

धन्ये, मैं पिता..........मुख चित । (पृष्ठ ८०-८१)

शब्दार्थ—निरर्थक=बेकार, धनहीन । अर्थागमोपाय=धनार्जन के उपाय अर्थात् धन एकत्र करने के उपाय । शुचिते=पवित्र । चीनांशुक=रेशमी वस्त्र । विपन्न=दु:खी, आर्थिक कष्टों से पीड़ित ।

व्याख्या—कवि निराला अपनी मृत पुत्री सरोज की मृत्यु से दु:खी करुणोद्गार व्यक्त करते हुए कह रहा है कि हे पुत्री ; मैं अपनी निर्धनता के कारण तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर सका और धन कमाने के उपायों को जानकर भी मैं उन्हें क्रियान्वित करने में संकोच करता रहा । कवि निराला का कहना है कि मैं अनुचित रीति से धन कमाने से हमेशा ही दूर रहा । धनोपार्जन के मार्ग पर अनर्थों को देखकर मैं हमेशा अपने स्वार्थ संग्राम में पराजित होता रहा अर्थात् अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सका । कवि निराला अपनी मृत पुत्री को सम्बोधित कर कहते हैं कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण ही मैं तुझे रेशमी वस्त्र पहनाकर और दही दूध खिला-पिलाकर तेरे मुख को प्रसन्न नहीं कर सका । कवि निराला का कहना है कि मैंने कभी किसी गरीब की रोटी नहीं छीनी है और न ही गरीबों को कभी रोते हुए देख सका हूँ अत: इस उदार और करुण हृदय के कारण ही मैं हमेशा आर्थिक संकटों से पीड़ित रहा तथा अपने अश्रुओं के दर्पण में हमेशा अपने मुख और हृदय का प्रतिबिम्ब देखता रहा ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास और उपमा अलंकार प्रयुक्त हुए हैं तथा कवि ने अपनी आर्थिक विपन्नता के मूल कारणों की ओर भी संकेत किया है । इस प्रकार इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला को अर्थोपार्जन के अनुचित साधन अप्रिय थे और उन्होंने कभी भी अपनी स्वार्थ सिद्धि की ओर ध्यान नहीं दिया । साथ ही महाप्राण निराला हमेशा गरीबी के प्रति उदार और करुणाशील ही रहे हैं ।

सोचा है नत........समाश्यस्त । (पृष्ठ ८१)

शब्दार्थ—नत हो=झुककर, नम्रतापूर्वक । स्नेहोपहार=स्नेहमयी भेंट । भास्वर=प्रकाशपूर्ण, उज्जवल । लोकोत्तर=अलौकिक । समाधान=उपाय ।

पार्श्व=बगल में, एक ओर। कुशल हस्त=निपुण हाथों से। समाभ्यस्त= अच्छी तरह से या भली भाँति अभ्यस्त।

व्याख्या—कवि कहता है कि मैंने कई बार नम्रतापूर्वक यह सोचा है कि यह हिन्दी की स्नेहमयी भेंट मेरी पराजय नहीं है बल्कि अलौकिक उज्जवल रत्नों का हार है, जो इस अवस्था में भी मुझे प्रसन्न कर रहा है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि अभावग्रस्त रहकर भी मैंने जो एकनिष्ठ होकर हिन्दी की सेवा की है और अपनी पुत्री को कष्ट से पीड़ित होकर मृत्यु का ग्रास बनने दिया, उसमें मेरी पराजय नहीं है बल्कि मैं अपनी सेवा को हिन्दी की पवित्र निष्ठा का अलौकिक वरदान समझता हूँ। कवि कह रहा है कि जीवन में अन्य प्रकार के भी साधन थे और अन्य प्रकार से भी हिन्दी की सेवा की जा सकती थी परन्तु जहाँ साहित्य और कला के शुद्ध एवं जागृत भाव संगृहीत हैं वहाँ मैंने भी कुछ योगदान दिया है। कवि का कहना है कि गद्य और पद्य में भली भाँति अभ्यस्त होने से मैं अपनी कुशल कला द्वारा इन माध्यमों से जीवन के आर्थिक अभावों का समाधान प्राप्त कर सकता हूँ लेकिन मैंने साहित्य साधना को कभी भी आजीविका का साधन नहीं समझा। कवि कहता है कि मैं किसी गरीब की दरिद्रता को दूर करने के लिए भी साहित्य सृजन को माध्यम बनाने के लिए दृढ़ संकल्प भी न कर सका और इन सब बातों को एक ओर रख मैं निष्ठापूर्वक साहित्य कला की अभिवृद्धि में दृढ़ संकल्प रहा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला ने साहित्य साधना के प्रति अपनी निष्ठा और धारणा व्यक्त की है।

देखें वे............कूची भर। (पृष्ठ ८१-८२)

शब्दार्थ—प्रवर=अच्छी तरह, भली प्रकार। समर=जीवन संग्राम। घात=आघात। घूर्ण=वत्याचक्र। तूर्ण=शीघ्रता से। अपल=अपलक, टकटकी लगाये हुए। शरक्षेप=तीरों का लगना। चीत्कारोत्कल=कलामय चीत्कार या चीखना, हृदय की कारुणिक आह। विमला=स्वच्छ. पवित्र. सरस्वती। वांछित=इच्छित।

व्याख्या—अपने अभावपूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि कहता

है कि मेरे जीवन संग्राम को वे लोग हँसते हुए देखते रहे जिन्होंने इस प्रकार का जीवनयापन किया है और जब मुझ पर सैकड़ों अभावों के तीर आकर लगते थे तथा शीघ्रता से वे एक के बाद एक मुझ पर टूट पड़ते तब मैं चुपचाप उन्हें खड़ा देखता रहता। कवि का कहना है कि मैं जीवन में सभी बाधाओं से परिचित था अतः मेरे लिए जीवन संग्राम में डिगने या पराजित होने का कोई कारण न था। कवि कह रहा है कि मैंने जीवन के उस भयंकर संघर्ष की कारुणिक अनुभूति को अपनी वेदनामयी सुन्दर वाणी में कलात्मक रूप से व्यक्त कर दिया जिससे क्रोधित, रुद्ध जीवन संग्राम अधिक मुखरित न हो सका अर्थात् मेरा कुछ न बिगाड़ सका और उक्त प्रकार की अनुभूति में स्थिर रह कर मैंने हानि नहीं उठायी बल्कि काव्य सृजन में लगातार गतिशील रहा। कवि का कहना है कि मैंने हमेशा यही सोचा कि दुःखों से जीवन का सौन्दर्य और भी अधिक निखर उठेगा तथा जीवन में प्राणदायक स्फूर्ति के सूर्य का उदय होगा। कवि कहता है कि मैं यह देखना चाहता था कि इन दुःखों के क्षणों में सरस्वती अपने हाथों में कला की सुन्दर तूलिका किस प्रकार का चित्र बनाकर उसके जीवन का कौन सा रंग भरती है और वह मेरी आर्थिक विपन्नता में भी मुझे साहित्य सृजन करने की अभिलाषा को पूर्ण करने में समर्थ करती है या नहीं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास और उपमा अलंकार है तथा कवि ने यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि वह सम्पन्नता के प्रति उपेक्षा भाव देखकर आर्थिक विषमताओं के मध्य एकनिष्ठ भाव से सरस्वती की आराधना करने में दृढ़ संकल्प रहा।

अस्तु मैं उपार्जन·········टेक। (पृष्ठ ८२)

शब्दार्थ—उपार्जन = धन कमाना, धन संचय। अक्षम = असमर्थ। अजिर = आँगन। कलक = उमंग, इच्छा।

व्याख्या—कवि निराला अपनी मृत पुत्री सरोज की मृत्यु पर दुःखी हो अपने कारुणिक उद्‌गार प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं धन कमाने में असमर्थ होने के कारण तेरा (पुत्री सरोज का) ठीक प्रकार से पालन पोषण नहीं कर

सका और जब कुछ दिन तक तू मेरे साथ रही तब मेरा मस्तक अपने ही गौरव से झुक गया तथा मेरे घर के जीर्ण आँगन में रहकर भी, घर छोड़ने से पूर्व तू सुख से न रह सकी। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उसकी पुत्री अपने बचपन में और किशोरावस्था में यथोचित सुख नहीं पा सकी। कवि अपनी पुत्री सरोज को सम्बोधित कर कह रहा है कि तेरी बाल इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं हुईं और तेरी दृष्टि हमेशा आँसुओं से छलछलाती रहीं तथा तू अपने प्राणों की उमंग को प्राणों में ही दबाकर छोटी-छोटी सिसकियों में भर कर व्यक्त कर देती थी। कवि का कहना है कि हे पुत्री; तेरी इस स्वाभाविक इच्छा और करुण आह को जानकर भी तथा सब कुछ समझता हुआ भी मैं कठोरता से देखता रहा तथा धनार्जन के पथ पर मेरी दृष्टि बार-बार जाकर भी वहाँ से हट जाती थी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला के पितृ हृदय का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है और उन्होंने यहाँ अपने व्यक्तिगत जीवन की करुण झाँकी अंकित करते हुए, यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अपनी पुत्री सरोज की बाल अभिलाषाओं को पूर्ण करने में असमर्थ रहकर भी उन्होंने धन के प्रति कभी भी मोह नहीं किया।

तू सवा साल..........उर्मि धवल। (पृष्ठ ८२-८३)

शब्दार्थ—चपल = चंचल, प्रवीण, होशियार। कौतुक = क्रीड़ा, खेल। निशि वासर = रात-दिन। उत्पल दल दृग = कमल की पंखुड़ियों के समान सुन्दर नेत्र। सैकत = रेत, बालू। हासोच्छल = हँसी से पूर्ण, उज्जवल। लखती = देखती। उर्मि धवल = श्वेत या सफेद लहर।

व्याख्या—अपनी पुत्री सरोज के शैशव की मधुर स्मृतियों का चित्रण करते हुए कवि कह रहा है कि जब तू सवा साल की सुन्दर एवं कोमल अबोध बालिका थी तभी से यह लक्षण प्रकट होने लगे थे कि तू ज्ञान में बड़ी चपल अर्थात् प्रवीण सिद्ध होगी और तू अपनी माँ के द्वारा प्रतिक्षण चुम्बनों के लाड़ में पलती हुई अपनी माँ के जीवन में नवजीवन का संचार करती थी। कवि का कहना है कि हे पुत्री, जब तुम्हारी माँ इस धरती से अपनी जीवन लीला

पूर्ण कर सदा के लिए विदा हो गयी तब तू अपनी नानी के घर जाकर वहीं उसकी गोद में पलने लगी और वहीं अपनी नानी के पास रहकर तू अनेक प्रकार से खेल और विनोद के कार्य कर बचपन को दिन-रात आनन्द और प्रसन्नता से पूर्ण करती रही।

कवि अपनी मृत पुत्री सरोज को सम्बोधित कर कहता है कि बचपन में जब तुम अपने भाई की मार खाकर विकल हो रोईं तब तुम्हारे नेत्रों से अश्रु की धारा उसी प्रकार छलछलाती हुई बाहर निकली जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियों पर जल की बूंदे मोती के समान दीखती हैं और नीचे ढुलक जाती हैं। कवि का कहना है कि हे पुत्री; तुम्हें दु:खी देखकर तुम्हारा भाई तुम्हें पुचकारता और जब तुम्हें गंगा के किनारे रेत पर घुमाने के लिए अपने साथ ले जाता, तब तुम उसके साथ चंचल गति से चल पड़तीं और तुम्हारे आँसुओं से धुले तथा हँसी से समुज्जवल मुख को देखकर, गंगा की स्वच्छ तरंगे तुझमें ही अपना प्रसार देखती थीं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास और रूपक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं तथा कवि निराला ने अपने जीवन की तीन घटनाओं का उल्लेख किया है—पत्नी की असामयिक मृत्यु, शैशवावस्था में ही मातृहीन हो जाने वाली पुत्री सरोज के सुकोमल जीवन का विकास और कवि के पुत्र का अपनी बहन के प्रति व्यवहार। साथ ही इन पंक्तियों में अर्थ की गरिमा भी है।

तब भी मैं·········पूजा उन पर। (पृष्ठ ८३)

शब्दार्थ—समस्त = सम्पूर्ण, पूर्ण रूप से। अबाध गति = मुक्ति रूप से या स्वच्छंद गति से। निशानंद = उदासीन, अप्रसन्न। सत्वर = शीघ्र, तुरन्त। दिशाकाश = किसी दिशा के आकाश की ओर। प्रांतर = आँगन, क्षेत्र।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि उस समय भी मैं इसी प्रकार पूर्ण रूप से कवि जीवन में बेकार ही व्यस्त रहकर, निरंतर स्वच्छंद गति से मुक्त छंद में रचनाएँ करता रहा परन्तु सम्पादक गण मेरी उन रचनाओं के प्रति उदासीनता का भाव दिखाकर, उन्हें शीघ्रता से पढ़कर अर्थात् उन रचनाओं की गहराई में प्रवेश किये बिना ही, केवल एक दो पंक्ति में उन रचनाओं के

प्रकाशन की असमर्थता प्रकट कर, उन्हें वापस कर देते थे। कवि का कहना है कि मैं अपनी वापिस लौटी हुई रचनाओं को लेकर, उदास मन से आकाश की ओर देखता हुआ बहुत देर तक आँगन में बैठा सम्पादक के गुणों को गुनगुनाता रहता था और जैसा कि मुझे अभ्यास पड़ गया था, अपने पास की उगी हुई घास को नोच-नोचकर अज्ञात दिशा में इधर-उधर फेंकता रहता था और अपने भावों का आरोप उन घास के तिनकों पर करता था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला ने अपने जीवन के साहित्यिक संघर्षों और काव्य-जगत में अपने प्रति किये गये विरोध की ओर संकेत किया है। साथ ही उन्होंने यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सम्पादकों की अल्पज्ञता के कारण ही उनकी कविताएँ प्रारंभ में उपेक्षित रहीं और सम्पादकों द्वारा वापिस लौटायी जाती रहीं लेकिन निराला जी निराश नहीं हुए और अपनी अनन्य निष्ठा में तल्लीन रहे। इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि निराला ने कभी भी अन्याय से समझौता नहीं किया और उनके व्यक्तित्व में हमेशा दृढ़ता एवं निर्भीकता विद्यमान रही है। इसी प्रकार इन पंक्तियों में अनुप्रास और उपमा अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

याद है दिवस·········प्रति अशंक। (पृष्ठ ८३-८४)

शब्दार्थ—दिवस=दिन। सुरूप=सुन्दर। चपल=चंचल। दूर स्थित=दूर के स्थान से। प्रवास=यात्रा। उत्सुक=इच्छुक। दीर्घ गाथ=लम्बी कहानी। भाग्य अंक=भाग्य में जो लिखा हुआ था। अशंक=संदेह रहित।

व्याख्या—कवि अपनी पुत्री सरोज की स्मृति में अपने स्नेहोद्गार व्यक्त करते हुए कहता है कि मुझे वह दिन याद आ रहा है जब दिवस की पहली धूप तुझ पर पड़ी थी और तू खेलती हुई चंचल परी के समान सुन्दर जान पड़ती थी तथा मैं दो वर्ष बाद दूर देश से चलकर तुझे देखने की उत्सुकता से तेरी नानी के घर पहुँचा था। कवि का कहना है कि माँ उस समय बाहर आँगन में फाटक के भीतर मोढ़े पर बैठे हुए अपनी जन्म कुंडली की लम्बी कहानी को हाथ में लिये हुए था और उस कुंडली में लिखे हुए अपने दो

विवाहों के उल्लेख को देखकर मुझे हँसी आ रही थी। कवि कहता है कि मेरे मन में भाग्य के उन अंकों को खंडित कर देने की इच्छा जाग्रत हुई और मैंने शंकारहित दृष्टि से अपने भविष्य की ओर देखा। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मेरी उस कुंडली में जो दो विवाह होने की बात लिखी थी मैंने उस भाग्य के अंक को खंडित और असत्य प्रमाणित कहने का दृढ़ निश्चय करते हुए दूसरा विवाह न करने का निश्चय किया।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला का व्यक्तिगत जीवन प्रतिबिंबित हुआ है और हमें यहाँ उनके सामाजिक क्रांतिकारी स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। साथ ही इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि निराला आजीवन परम्परा को तोड़ने में प्रयत्नशील रहे हैं।

इससे पहले ········ मुड़े सुनकर। (पृष्ठ ८४)

शब्दार्थ—आत्मीय स्वजन = अपने अधिक हितैषी व्यक्ति। सस्नेह = स्नेहपूर्वक। परिणय = विवाह। निडर = निर्भयतापूर्वक, बेधड़क, बिना डर के। मंगली = ज्योतिष की दृष्टि से वह व्यक्ति, जिसके ग्रह पत्नी के लिए अत्यधिक अशुभ हों और पत्नी की मृत्यु का भी डर हो। इसी प्रकार कन्या भी मंगली होती है तथा उसके ग्रह पति के लिए अशुभ होते हैं।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि इस घटना से पूर्व कई बार मेरे आत्मीय सगे सम्बन्धी मुझसे यह कह चुके थे कि तुम्हें किसी ऐसी लड़की से विवाह कर लेना चाहिए, जो सुन्दर एवं सुशिक्षित हो और तुम्हारा जीवन अधिक सुखी हो सकेगा। कवि का कहना है कि ऐसे कई विवाह सम्बन्ध आये पर मैंने विनयपूर्वक सबको लौटा दिया लेकिन कुछ अपने नेत्रों में प्रार्थना भाव लेकर अड़े रहे और बार-बार हठ करने लगे कि मैं उन्हें स्वीकृति दूँ। कवि कह रहा है कि ऐसे व्यक्तियों से मैं निर्भयतापूर्वक यह कह देता कि मैं मंगली हूँ और मेरा यह उत्तर सुनकर वे लौट जाते।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला के दृढ़ निश्चयी स्वरूप का भावपूर्ण चित्रण हुआ है।

इस बार एक आया ············ विवाह बन्धन। (पृष्ठ ८४—८५)

शब्दार्थ—हतोत्साह=निराश, उत्साहहीन। आकर्षक=मोह, खिचाव। एंट्रेस=मैट्रिक, हाईस्कूल के समकक्ष एक परीक्षा। विद्वज्जन=विद्वान। शिथिल=सुस्त, अस्पष्ट।

व्याख्या—कवि कहता है कि एक विवाह सम्बन्ध लेकर ऐसे लोग आये, जो किसी भी प्रकार समझाने के पश्चात् नहीं माननेवाले थे और न निराश होकर लौट रहे थे अतः इस बार अधिक कठिनाई का अनुभव हुआ और मेरे मन में भी बधू के नेत्रों का आकर्षण बढ़ने लगा। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि अब स्वयं उनका मन दूसरे विवाह की ओर आकर्षित होने लगा था। कवि कह रहा है कि मेरी सास जी ने कहा कि भैया, वे लोग बहुत भले सज्जन हैं और वह लड़की भी एंट्रेस पास है अर्थात् कम पढ़ी लिखी नहीं है। साथ ही उन्होंने (कवि की सास ने) यह भी कहा कि बधू पक्ष वाले कह रहे थे कि वर की आयु अभी छब्बीस वर्ष की है और यह ठीक है तथा लड़की भी अट्ठारह वर्ष की है। कवि की सास ने कवि से यह भी बतलाया कि वधू पक्षवाक्षों ने हाथ जोड़कर यह भी कहा कि वे (निरालाजी से अभिप्राय है) विवाह नहीं कर रहे क्योंकि बड़े सुघरे हुए सज्जन, अच्छे कवि और अच्छे विद्वान हैं तथा उनका नाम भी बहुत है। इसी प्रकार वधू पक्षवालों ने यह भी कहा कि लड़की भी शिक्षित और सुन्दर है तथा उचित तो यही होगा कि उन्हें अर्थात् निरालाजी को विवाह करने के लिए हर प्रकार से तैयार किया जाय जिससे वे (निरालाजी) सुखी रहें। कवि कह रहा है कि सासजी ने मुझसे कहा कि वधू पक्षवाले इतना कहने के पश्चात् यह कह कर चले गये कि वे सम्बन्ध तय करने के लिए कल पुनः आयेंगे और सासजी की बातें सुनकर मेरी दृष्टि कुछ शिथिल पड़ गयी लेकिन तू (पुत्री सरोज से अभिप्राय है) उसी समय मेरे नेत्रों की पुतली की तरह मुस्कराती हुई मुझे दिखाई दी और मैं विवाह बन्धन आदि को सोचते हुए पुनः चेतन हो गया अर्थात् विवाह के आकर्षण में फँसने से सँभल गया।

टिप्पणी—इस अवतरण से सिद्ध हो जाता है कि दूसरे विवाह की समस्या को लेकर महाकवि निराला को किस प्रकार के मानसिक संघर्ष का सामना

करना पड़ा था लेकिन पुत्री सरोज की ममता ने उन्हें किस प्रकार सजग कर दिया।

कुंडली दिखा...........टुकड़ों पर। (पृष्ठ ८५)

शब्दार्थ—स्नान शेष = स्नान कर। उन्मुक्त केश = खुले बाल। रहस्य स्मित = गम्भीर हँसी। सुवेश = सुन्दर वेश। अजीत = अटल। अखिन्न = हर्ष से। छिन्न भिन्न = नष्ट। विस्मय = आश्चर्य।

व्याख्या—कवि अपनी मृत पुत्री सरोज की शैशवकालीन स्मृतियों का वर्णन करते हुए कह रहा है कि जब तू अर्थात् पुत्री सरोज वहाँ आई तब मैंने तुझे अपनी कुंडली दिखा कर कहा कि इसे लो और खेलो तथा उसी समय वहाँ स्नान करके बालों को खोले हुए गम्भीर हँसी हँसते हुए सासजी सौम्य वेश में विवाह से सम्बन्धित वर्तालाप करने आई। कवि का कहना है कि विवाह की वह बात अटल थी और वह किसी भी हालत में टलनेवाली नहीं थी पर मैंने प्रसन्न होकर सासजी को उस ओर देखने के लिए संकेत किया जहाँ कुंडली टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ी थी और उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि तू अर्थात् पुत्री सरोज कुंडली के उन फटे टुकड़ों पर बैठी खेल रही थी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि नें अपनी, अपने सास की और अपनी पुत्री सरोज की मानसिक अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है तथा यह मानसिक अभिव्यक्ति महाप्राण निराला की कलागत सक्षमता को स्पष्ट करती है। साथ ही इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला ने अपनी पुत्री को कुंडली खेलने के लिए देकर एक ओर तो ज्योतिष की धारणाओं को गलत सिद्ध करने का निश्चय किया और दूसरी ओर अपना दूसरा विवाह न करने के लिए अटल प्रण को भी दोहराया।

धीरे धीरे फिर...........मौन प्रान्तर। (पृष्ठ ८५-८७)

शब्दार्थ—बाल्य की केलियों = बाल जीवन की क्रीड़ाओं। प्रांगण = आँगन। कुंज तारुण्य सुघर = यौवन के सुन्दर कुंज में। लावण्य भार = सौन्दर्य का भार। सस्वर = स्वर सहित। मालकोश = एक प्रकार का मधुर राग। नैश = रात्रि। आलोक भार = प्रकाश। दिक् = दिशा। भोगावती = धरती,

पृथ्वी। सलील = लीलापूर्वक, क्रीड़ाशील। ऊर्ध्व = ऊपर। मधुरिमा = मधुरता। व्यंजना = संकेत। दृप्त धार = गौरव की धारा। उत्कलित = छलकती हुई। तन्वि = कोमलांग, पतले शरीर वाली। वह्नि = अग्नि, आग। सुघर = सुन्दर। प्रखर = तीव्र, तेज। पिक बालिका = कोयल की बालिका, बाल कोकिल। नीड़ = घोंसला। सक्षम = समर्थ। प्रांतर = प्रदेश।

व्याख्या—कवि अपनी पुत्री सरोज की स्मृतियों के चित्र प्रस्तुत करते हुए कहता है कि धीरे-धीरे तेरे चरणों ने बाल्यकाल की क्रीड़ाओं के आँगन को पार कर यौवन के सुन्दर कुंज में प्रवेश किया और यौवनावस्था आते ही तेरे सुन्दर और कोमल शरीर पर सौन्दर्य का भार पड़ने पर तेरा शरीर उसी प्रकार काँपने लगा, जिस प्रकार नवीन वीणा के तारों पर अपने कोमल स्वरों के साथ मालकोश राग झंकृत हो उठता है। कवि का कहना है कि हे पुत्री, तू रात्रि के सुकुमार स्वप्न की तरह धीरे-धीरे प्रातःकालीन उषा के जागरण छंद की तरह गुंजित हो उठी और यौवन की आभा से भरकर तेरे चरण थिरकने लगे तथा वन प्रांतर और दिशायें तेरे अमन्द सौन्दर्य की सिहरन का स्पर्श कर प्रकंपित हो उठे। कवि अपनी पुत्री को सम्बोधित कर कहता है कि तेरा परिचय आकाश, धरती, पेड़, फूल और पत्तों पर बिखरने लगा तथा तेरी चितवन देखकर यही जान पड़ता था कि मानो धरती के अतल गर्भ से स्नेह अजस्त्र धारा फूट रही हो और जैसे नील जल टलमल करता हुआ नीचे से ऊपर की ओर उमड़ रहा हो वैसे ही तेरे शरीर के बाँध में बँधकर आँखों से स्नेह छलक कर प्रकट हो रहा था।

कवि का कहना है कि हे पुत्री, तुम्हारे कंठ की मधुर आवाज से वह प्रिय और आनन्ददायक स्वर प्रस्फुटित हुआ जो तुम्हारी माँ के सुमधुर स्वर का संकेत करता था और तुम्हारी उस मधुर कंठ ध्वनि से यही जान पड़ता था कि मानो प्रत्येक पिता के कंठ से वात्सल्य की गौरवमयी धारा ही बहकर तेरे कंठ में स्थिर हो गई हो या रागिनी की समस्त मल्हारें छलककर तेरे कंठ की मधुर ध्वनि में सिमट गयी हों। कवि कह रहा है कि हे पुत्री, तुझमें मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मानो मेरे संघर्ष, स्वाभिमानी और निर्मोही स्वर की अग्नि

जन्मसिद्ध गायिका बनकर सुन्दर साकार रूप में प्रकट हुई हो तथा मुझे पता नहीं था कि तुझमें ऐसा कौन सा प्रबल और प्रखर संस्कार था जिसके फल-स्वरूप संगीत की शिक्षा दीक्षा लिये बिना इस प्रकार का सधा हुआ मधुर स्वर तुम्हें मिल सका।

कवि कहता है कि इस धरती पर इस प्रकार का स्वर मिलने की बात मैंने कभी नहीं सुनी थी और न तो मुझे इसकी जानकारी ही है पर इतना मैंने अवश्य सुना या जाना था कि जब कोयल का बच्चा अन्य पक्षी के घोंसले में पल कर उड़ने में समर्थ होता है तब वह अपनी सुमधुर ध्वनि से निस्तब्ध वन प्रांतर को भर देता है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि सौन्दर्य और चितवन की विशेषता से उसकी पुत्री की वह अवस्था यह ज्ञान करा रही थी कि वह अब इस घोंसले से अन्यत्र जाने योग्य हो गयी है।

टिप्पणी—इस अवतरण में सौन्दर्य चित्रण की परम्परा में कवि निराला ने युगान्तरकारी परिवर्तन किया है और हम देखते हैं कि हिन्दी साहित्य में पहली बार महाकवि निराला ने अपनी पुत्री सरोज के सौन्दर्य का चित्रण कारुणिक मनःस्थिति में रहकर किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार का शृंगारिक चित्रण मौलिक ही है और कवि ने सरोज के मधुर स्वर के चित्रण में नूतन चित्रण पद्धति का सूत्र-पात किया है तथा अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी की है। साथ ही इन पंक्तियों में इस लोक प्रचलित कथा को सहज एवं स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है कि कोयल अपने बच्चे को कुछ दिन के लिए किसी दूसरे पक्षी के घोंसले में रख देती है और कंठ फूटने के पूर्व वह पक्षी उसे अपना ही बालक समझकर उसका पालन-पोषण करता है लेकिन कंठ फूटने पर और बड़ा होने पर वह बच्चा अपनी माँ को ढूँढकर उससे मिल जाता है।

तू खिंची········तेरा जीवन। (पृष्ठ ८७)

शब्दार्थ—उन्मनन = उच्च मन, स्थिति का चिंतन। वात = हवा, पवन। गात = शरीर।

व्याख्या—कवि अपनी पुत्री सरोज की स्मृतियों के चित्र प्रस्तुत करते

हुए कह रहा है कि तू मेरा सौन्दर्य बनकर मेरी दृष्टि में उतर आई और मेरे हृदय में तेरा ही कवि है अर्थात् कवि रूप साकार हुआ है कवि का कहना है कि मेरे हृदय का कुंज भावनाओं की गुंजार से लहलहाने लगा और जब पेड़, पत्तों तथा फूलों के समूह-समूह में एक अज्ञात प्रेरणामयी वायु तेरे केशों को चूमती हुई तेरी नव देह को निष्पलक नेत्रों से निहारती हुई प्रवाहित हो चली तब मैं तेरे जीवन की गरिमा को समझ गया।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने अनुप्रास एवं उपमा अलंकार का सहायता से अपनी पुत्री सरोज की यौवनावस्था और मानसिक एवं हृदयगत भावनाओं का भावपूर्ण चित्रण किया है।

सासु ने कहा........हम सहोत्साह। (पृष्ठ ८७)

शब्दार्थ—लख = देखकर। धन्य धाम = किसी अच्छे घर में। शुचि वरं = योग्य और पवित्र चरित्र वाला वर अर्थात् दूल्हा। कुलीन = अच्छे कुल या खानदान का। धर्मोत्तर = उत्तम, धार्मिक। सहाय = सहायक, सहयोगी। सहोत्साह = उत्साह सहित।

व्याख्या—कवि कहता है कि सासुजी ने एक दिन मुझे अर्थात् सरोज को देखकर मुझसे कहा कि भैय्या अब सरोज का लालन-पालन करने का काम हमारी सामर्थ्य के अंतर्गत नहीं रहा क्योंकि सरोज युवावस्था को पहुँच रही है और अब कोई अच्छा सा कुल देखकर, किसी योग्य और पवित्र आचरण वाले वर से सरोज का विवाह कर देना चाहिए तथा यह तुम्हारा उत्तम धार्मिक कार्य है। कवि कह रहा है कि सासु जी ने मुझसे कहा कि अब तुम कुछ दिन सरोज को अपने साथ लेकर अपने घर रहो और योग्य वर ढूँढकर उसके साथ सरोज का विवाह कर दो तथा हम भी उत्साहपूर्वक इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेंगे।

सुनकर, गुनकर........नहीं सुजल। (पृष्ठ ८७-८८)

शब्दार्थ—गुनकर = विचार कर। कनक = स्वर्ण, सोना। भिक्षुक = भिखारी। स्वर्ण झनक = सोने का कीमती पदार्थ, स्वर्ण झनकार। कुलांगर =

कुल में आग लगाने वाले। विषय बेंलि = विषयरूपी लता। दग्ध = जला हुआ। सुजल = पवित्र पानी।

व्याख्या—कवि का कहना है कि सासुजी की बातें सुनकर और उन पर विचार कर मैं मौन ही रहा तथा मैंने कुछ भी नहीं कहा और तुझ (पुत्री सरोज से अभिप्राय है) स्वर्णमयी को साथ लेकर उसी प्रकार चल दिया जिस प्रकार कोई भिक्षुक सोने के समान कीमती पदार्थ को पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर लौटता है। कवि कह रहा है कि मैं अपने जीवन की स्वर्ण झनकार और पवित्र एवं उज्जवल प्रकाश अर्थात् पुत्री सरोज को लेकर वह अपने घर की छाया अर्थात् अंधकार के नीचे पहुँचा तथा मेरा रिक्त जीवन और सूना घर सरोज की आभा से प्रकाशित हो उठा।

कवि निराला का कहना है कि मैंने पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में बार-बार विचार कर दुखी हो मन ही मन सोचा कि ये कान्यकुब्ज कुल के ब्राह्मण अपने कुलों के लिए आग के समान हैं, जो एक न एक दिन अपने कुल को नष्ट कर देंगे। कवि कान्य कुब्ज ब्राह्मणों की आलोचना करते हुए कहता है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करना जानते हैं, और इनके हाथों में कन्या को सौंपना जीवन में दु:ख का विषय ही है तथा हमें यही याद रखना चाहिए कि विष की लता में विष का ही फल लगता है। कवि कह रहा है कि कान्यकुब्ज कुल जलता हुआ मरुस्थल है और इसमें सुख शांति रूपी जल कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता।

टिप्पणी—इन पंक्तियों के प्रारंभिक अंश में कवि निराला ने वात्सल्य प्रेम की निर्झरिणी प्रवाहित की है और अंत में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के दकियानूसी दृष्टिकोण का स्वाभाविक चित्रण किया है।

फिर सोचा·········निराधार। (पृष्ठ ८८)

शब्दार्थ—शोभन = शोभनीय। भीति = भय, डर। गत विचार = प्राचीन विचार। अक्षम = असमर्थ। सौहार्द्र बंधु = भाई बंधुओं के प्रेम का बंधन। निराधार = निरर्थक, व्यर्थ, बेकार।

व्याख्या—कवि कहता है कि मैंने फिर सोचा कि मुझे उसी मार्ग से

चलना चाहिए और मेरे लिए वही शोभनीय है, जिस मार्ग से पूर्वज गये हैं तथा मैं इस लोक रीति को पूर्ण ही क्यों न होने दूँ। कवि का कहना है कि यद्यपि पुराने परम्परागत विचारों को तोड़ने में मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है लेकिन मैं पूर्ण रूप से प्राचीन परम्परा का भार ढोने में असमर्थ अवश्य हूँ और मुझमें निश्चय ही उतनी विनम्रता नहीं आयेगी। जो परिवार बंधु-बाँधवों के स्नेह की सीमा को अकारण ही पार कर सके।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला के मानसिक द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण हुआ है और उन्होंने यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मुझमें इतनी विनय नहीं कि मैं निराधार प्राचीन परंपरा पर चलकर अपने भाई वंधुओं के स्नेह का अधिकारी रह सकूँ।

वे जो यमुना·········नहीं चाह। (पृष्ठ ८८)

शब्दार्थ—कछार=किनारे, तट पर। चमरौधे=चमड़े के। सकेल= कष्ट दायक। घ्राण प्राण=गंध प्राण। गिरिजा=पार्वती।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि वे मुख जो यमुना के कछार के समान हैं और जिनके पैर बिवाई के कारण फट गये हैं तथा जिनके मुख उधार लेकर खानेवालों के समान कांतिहीन हैं और तेल पिये हुए नये-नये चमड़े के जूतों से निकलने वाली गंध जिनके मुँह से आती है, मैं उनके चरणों की एक अंधे व्यक्ति के समान पूजा नहीं कर सकता। कवि का कहना है कि मुझमें वह शक्ति भी नहीं है कि सर्वथा जड़ एवं गंध प्राण से हीन होकर ऐसे कान्यकुब्जों को पूजूँ तथा यह मेरे स्वाभिमान के भी विरुद्ध है। कवि निराला कह रहे हैं कि मुझे ऐसे महोदय के साथ पार्वती के समान अपनी पुत्री सरोज का विवाह करने की तनिक भी इच्छा नहीं है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के रहन सहन का सुन्दर व्यंग्यात्मक चित्रण किया है।

फिर आई याद·········कुल धन्या का। (पृष्ठ ८९)

शब्दार्थ—नैमित्तिक=भाग्य से, दैवी कारण से। इंगित=इशारा, संकेत। अदृश्य=जो दिखाई न दे। स्पृश्य=छूने योग्य पर यहाँ प्राप्त करने

योग्य से अभिप्राय है। अभिनन्दनीय = स्वागत करने योग्य। स्नेह स्त्राव = स्नेह का प्रवाह। तत्क्षण = उसी समय, तुरंत। प्रफुल्ल चेतन = प्रसन्न चित्त, आनंदमय। रिक्त हस्त = खाली हाथ, यहाँ धनाभाव से पीड़ित होने का अभिप्राय है। सुघर = श्रेष्ठ, अच्छा। मिथ्या व्यय = फिजूल खर्ची। सुसमय = उपयुक्त समय। कुल धन्या = कुल को पवित्र और धन्य करने वाली।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि फिर मुझे याद आया कि कुछ दिनों पूर्व मुझे एक सज्जन मिले थे जो विद्वान हैं और नवयुवक हैं तथा यह कोई दैवी प्रेरणा ही है कि वह युवक कान्यकुब्ज कुल का ही है और साहित्यिक व्यक्ति भी है। कवि का कहना है कि मेरा यह विचार दृढ़ हो गया कि यही व्यक्ति स्वागत योग्य है और इसी में मेरी भलाई भी है तथा मेरे हृदय का स्नेह उस युवक के प्रति उमड़ पड़ा और मैंने पत्र लिखकर उस युवक को बुला भेजा तथा वह प्रसन्नता के साथ मुझसे आकर मिला। कवि कह रहा है कि मैंने उस युवक से कहा कि मैं इस समय सर्वथा खाली हाथ हूँ और आपको देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है तथा जो कुछ भी मेरा अपना धन है और पूर्वजों से मुझे प्राप्त हुआ है वह मैं आपको दे सकता हूँ। कवि ने उस युवक से कहा कि मैं अपनी पुत्री का विवाह किसी धनवान व्यक्ति से भी कर सकता हूँ लेकिन मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि दहेज देकर मैं मूर्ख बनूँ और मैं बरात बुलाकर फिजूल खर्ची करने के पक्ष में भी नहीं हूँ अतः मेरी यही अभिलाषा है कि तुम मेरी पुत्री सरोज से विवाह करो। कवि का कहना है कि मैंने उस युवक से कहा कि मैं सामाजिक परम्परा के बंधनों को भी तोड़ना चाहता हूँ और यदि पंडित जी भी विवाह में नहीं आए तो फिर मैं स्वयं मंत्र पढ़ूँगा तथा तुम यह भी निश्चित समझो कि जो कुछ भी मेरा है वह सब मेरी कन्या कुल धन्या सरोज का ही है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला का सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विद्रोही रूप आकर्षक एवं अत्यंत प्रभावशाली ढंग में अभिव्यक्ति हुआ है। साथ ही यहाँ अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

आये पंडित जी··············**थर थर थर।** (पृष्ठ ९०)

शब्दार्थ—ससर्ग=कुटुम्ब सहित, सकुटुम्ब। आमूल नवल=पूर्णतया नवीन। स्पंद=हिलना, काँपना, फड़कना। उर=हृदय। स्तब्ध=अचल, निश्चेष्ट, स्थिर।

व्याख्या—कवि अपनी मृत पुत्री सरोज के स्मृति चित्रों को अंकित करते हुए कहता है कि तेरे विवाह में पंडितजी और आमंत्रित साहित्यिक व्यक्ति तथा अन्य परिचित व्यक्ति सकुटुम्ब आये और उन्होंने इस सर्वथा नवीन पद्धति के विवाह को देखा जिसमें तुझ पर पवित्र कलश का शुभदायक जल पड़ा। कवि का कहना है कि मुझे देखकर तुम (पुत्री सरोज से अभिप्राय है) मंद-मंद मुस्कराईं और उस मुस्कराहट को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो तुम्हारे अधरों में बिजली का स्पन्दन डोल गया हो तथा तेरे हृदय में सुन्दर छवि झूलने लगी और तुझमें अपने प्रिय पति का मौन श्रृंगार मुखरित हो उठा। कवि कहता है कि तू (अर्थात् पुत्री सरोज) एक उच्छवास के समान विकसित होने लगी और तेरे एक एक अंग में विश्वास नाचकर स्थिर हो गया तथा तेरे विनम्र नेत्रों से प्रकाश उतर कर तेरे अधरों पर स्थिर होकर थर थर काँपने लगा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं तथा कवि निराला ने विवाह के समय वधू के हृदय, मन, नेत्र एवं अधरों से प्रकट होने वाले प्रेम और विश्वास के भावों का स्वाभाविक चित्रण किया है।

देखा मैंने···············**यह अन्य कला।** (पृष्ठ ९०-९१)

शब्दार्थ—मूर्त्ति धीर्त्ति=धैर्य की प्रतिमा। निराकार=आकृति या आकार रहित, गुण रहित। राग रंग=प्रेम और विनोद। रति=कामदेव की पत्नी का नाम, यहाँ बहुत सुन्दर से अभिप्राय है।

व्याख्या—कवि अपनी पुत्री सरोज को सम्बोधित कर कह रहा है कि तेरे विवाह के समय मुझे जो तेरी धैर्य प्रतिमा दिखाई दी उसमें मैंने अपने जीवन के वसंत का पहला संगीत देखा और उसमें मैंने अपना वही श्रृंगार देखा, जो

मेरी कविता में छिपकर रस की धारा छलकाता है तथा जिसे मैंने अपनी स्वर्गीया प्रिया के साथ मिलकर गाया था और जो आज भी मेरे प्राणों में प्रेम एवं आनंद भरता है तथा प्रेम का रूप धारण कर सृष्टि में सर्वत्र विचरण कर रहा है और आकाश से धरती पर उतर कर तुझमें साकार हो गया है। कवि का कहना है कि हे पुत्री; तेरे विवाह का कार्य सम्पन्न हो गया पर उसमें कोई भी सगे सम्बन्धी नहीं आये और न ही उन्हें निमंत्रण पत्र भेजे गये। साथ ही विवाह का राग भी वहाँ उस घर में दिन-रात गुंजित नहीं हुआ पर एक मौन संगीत जीवन के स्वरों से होता हुआ धरती पर अवश्य अवतरित हुआ। कवि कह रहा है कि उस समय मैंने तुझे अर्थात् पुत्री सरोज को माँ के रूप में कुल की शिक्षा दी और अपने हाथों से तेरे लिए फूलों की शय्या का निर्माण किया तथा मन में सोचा कि तुम कण्व ऋषि की वह शकुन्तला हो लेकिन तुम्हें उस शकुन्तला से अलग पाठ प्राप्त हुआ है और तुम्हारी कलायें भी उस शकुन्तला से भिन्न हैं।

टिप्पणी—इस अवतरण से हमें महाकवि निराला के जीवन की इस अद्भुत एवं नवीन घटना की जानकारी मिलती है कि उन्होंने स्वयं ही अपनी पुत्री सरोज का विवाह रचाया था और उस मातृहीन कन्या को माँ का अभाव न खटकने दिया। साथ ही इन पंक्तियों में उपमा, अनुप्रास और उत्प्रेक्षा आदि अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

कुछ दिन रह··············महामरण। (पृष्ठ ९१)

शब्दार्थ—गृह = निवास स्थान, घर। समोद = आन्नद पूर्वक। जलद = मेघ, बादल। न्यस्त = रक्षक, साथी। दृग = नेत्र, आँख। महामरण = महान और श्रेष्ठ मृत्यु।

व्याख्या—कवि अपनी मृत पुत्री सरोज की कारुणिक स्मृतियों को अंकित करते हुए कहता है कि तू कुछ दिनों तक अपने घर में आनन्दपूर्वक रहकर अपनी नानी की स्नेहमयी गोद में बैठ गई और तुझे मामा-मामी का अपार प्रेम उसी प्रकार प्राप्त हुआ, जिस प्रकार बादलों का जल धरती को मिलता है। कवि का कहना है कि हे पुत्री; तेरी नानी और तेरे मामा मामी ही तेरे दुःख-

सुख में साथी रहे और तेरे लालन-पालन में हमेशा लगे रहे तथा वह लता अर्थात् तेरी माँ भी वहीं की थीं, जहाँ तू कली के रूप में नित प्रति विकसित हो रही थी। कवि कहता है कि अंत में तुमने उस स्नेह से प्रकंपित लता अर्थात् अपनी माँ की गोद में ही अंतिम शरण ली और महा-मृत्यु को स्वीकार कर अपने नेत्र हमेशा के लिए मूंद लिए। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि शैशवावस्था में ही मातृहीन हो जाने वाली सरोज ने अपनी माँ की गोद को ही युवावस्था में स्वीकार किया और वह भी अपनी माँ के सदृश्य, असमय ही यह धरती छोड़कर स्वर्ग को प्रयाण कर गयी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनूठी काव्यात्मकता है और अनुप्रास, उपमा एवं उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सफल प्रयोग भी हुआ है।

मुझ भाग्यहीन··············तेरा तर्पण। (पष्ठ ९१)

शब्दार्थ—सम्बल=सहारा, आधार। विकल=व्याकुल। वज्रपात=बिजली गिरना। शतदल=कमल।

व्याख्या—कवि अपनी युवा पुत्री सरोज के असमय निधन पर अपने कारुणिक उद्गार प्रकट करते हुए कह रहा है कि हे पुत्री; तू मुझ भाग्यहीन की एकमात्र सहारा थी और आज दो वर्षों बाद तेरी स्मृति में व्याकुल होकर मैं वह बात प्रकट कर रहा हूँ, जो मैंने अब तक कभी नहीं कही। कवि का कहना है कि मेरा सम्पूर्ण जीवन दुःख की कहानी ही रहा है और मेरा यदि धर्म बना रहे तो बेशक मेरे सम्पूर्ण कर्मों पर वज्राघात हो अर्थात् इस धनाभाव का दैन्य-युक्त जीवन ही मुझे हमेशा बिताना पड़े तो मेरे इस कर्म पर वज्रपात हो जिससे कि मैं दीन जीवन में जीवित रहकर पहले के से कर्म न कर सकूँ। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वह अपनी पुत्री सरोज के इस निधन के लिए अपनी निर्धनता को ही बहुत कुछ उत्तरदायी मानता है। कवि कहता है कि ऐसे जीवन पथ पर हुए मेरे सभी कार्य उसी प्रकार नष्ट हो जायँ जिस प्रकार शरद्ऋतु के तुषारपात से कमल की पंखुड़िया नष्ट हो जाती हैं। कवि कह रहा है कि हे पुत्री; मैं आज अपने गत जीवन के सभी कर्मों को अर्पित कर तेरा

अर्पण करता हूँ और अपने इन्हीं कर्मों रूपी पवित्र जल से तुझे श्रद्धांजलि भी अर्पित करता हूँ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला के पितृ हृदय की वेदना अजस्त्र धाराओं में प्रवाहित होती जान पड़ती है और महाप्राण निराला के दुःखी जीवन की कारुणिक अभिव्यक्ति भी हुई है।

४१—राम की शक्तिपूजा (पृष्ठ ९०-१०४)

सन्दर्भ—वस्तुतः कवि निराल के काव्य संकलन 'अनामिका' के द्वितीय संस्करण (सन् १९३८) में 'राम की शक्तिपूजा' नामक एक विस्तृत कविता संकलित है और इसे काव्यकला की दृष्टि से एक प्रौढ़ कृति कहा जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने विराट, उदात्त एवं महान भावों की अभिव्यक्ति की है और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगति की सीमा मानी जाती है। सामान्यतया 'राम की शक्तिपूजा' कविता में राम और रावण के युद्ध का वर्णन ही नवीनतम पद्धति में किया गया है। कहा जाता है कि रावण को महाशक्ति संरक्षण प्रदान करती है जिसके कारण राम के सभी प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं और वे जितने भी तेज बाण रावण पर छोड़ते हैं इन सबको महाशक्ति अपने विशाल शरीर पर लेकर व्यर्थ कर देती है। राम अपने बाणों की इस निष्फलता पर दुखी हो जाते हैं और अचानक रावण का अट्टहास सुनकर उनके नेत्र भर आते हैं। उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि रावण का वध अब सम्भव नहीं है और उन्हें अपनी विजय भी अब असम्भव जान पड़ती है। राम को निराश देखकर विभीषण उन्हें उत्साहित करना चाहते हैं पर राम कहते हैं कि रावण को महाशक्ति का वर होने के कारण ही सभी बाण निष्फल जा रहे हैं। अब जाम्बवान् राम को समझाते हैं कि यदि तप के द्वारा दुष्ट रावण महाशक्ति को अपने अधिकार में कर लेता है तो आपको तप के द्वारा महाशक्ति को अपने वशीभूत कर लेना चाहिए।

जाम्बवान् की यह सलाह राम को उचित प्रतीत होती है और वह शक्ति की पूजा में प्रवृत्त हो जाते हैं तथा तप प्रारम्भ कर देते हैं। राम जब तप की

सिद्धि के अन्तिम सोपान पर पहुँचते हैं तब देवी आकर उनका अन्तिम कमल चुरा ले जाती हैं और एक कमल घट जाने से राम को पूजा भंग की आशंका होती है तथा वह चिन्तित हो जाते हैं। यदि राम आसन छोड़कर दूसरा कमल लेने के लिए उठते हैं उनका तप भंग हो जाता है और यदि नहीं उठते तो तप पूर्ण नहीं होता। इसी बीच राम को स्मरण होता है कि माँ उन्हें 'राजीव लोचन' कहा करती थीं और वह एक कमल-पुष्प कम होने पर अपना एक नेत्र ही कमल के स्थान पर चढ़ाने का निश्चय करते हैं लेकिन जैसे ही उनका एक हाथ नेत्र की ओर जाता है देवी प्रकट होकर राम का हाथ पकड़ लेती हैं और उन्हें सिद्धि का वरदान प्रदान कर उनके मुख तेज में समा जाती हैं।

'राम की शक्तिपूजा' की यही कथावस्तु है और पौराणिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी मौलिक उद्भावनाओं एवं मनोवैज्ञानिक पीठिका के कारण युग के सर्वथा अनुकूल जान पड़ती है। विचारक उसके सम्बन्ध में उचित ही कहते हैं 'मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यंजना के साथ भावोदात्तता और कथाकाव्य की उत्कृष्टता भी वर्तमान है। अपने समग्र रूप में यह महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त है। यह वीर गीत की समीपी वस्तु है। इसका अन्तः कलेवर शौर्यपूर्ण, ओजस्वी तथा वीर प्रगीतात्मक है। भाषा का नादात्मक और द्वित्व शब्दों का प्रयोग युद्ध के दृश्यों को मूर्त्तिमान कर देता है।'

रवि हुआ ············ रावण सम्बर। (पृष्ठ ९२)

शब्दार्थ—ज्योति के पत्र पर = दिन के हृदय पर। अपराजेय = अनिर्णीत, जो जीता नहीं जा सका। तीक्ष्ण शर विधृत क्षिप्र कर = तेज हाथों से धनुष पर चढ़ाये गये तीक्ष्ण बाण। शत शैल सम्वरणशील = सैकड़ों भालों को रोकने में समर्थ। नील नभ गर्जित स्वर = नीले आकाश में गरजता हुआ स्वर। व्यूह = सेना की रचना। भेद कौशल समूह = शत्रु के प्रत्येक प्रकार के कौशल का नाश करके। राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह = राक्षसों की व्यूह रचना को तोड़कर। क्रुद्ध कपि विषम हूह = वानर क्रोधित होकर भयानक स्वर में चीत्कार कर रहे हैं। विच्छुरित वह्नि = आग की लपटें निकालता हुआ या छोड़ता हुआ। राजीव नयन हत लक्ष्य बाण = कमल नयन राम अपने बाणों को लक्ष्य से

हटता हुआ देखकर। लोहित लोचन = लाल आँखें। रावण मद मोचन = रावण के गर्व या अहंकार का नाश करनेवाला। महीयान = आगे बढ़कर। राघव लाघव = राम का कुशलता से बाण संचालन करना। रावण वारण = रावण का सफलतापूर्वक आक्रमण को विफल करना। गतयुग्म प्रहार = दो प्रहर का समय बीत गया। उद्धत = दुस्साहसी। लंकापति = रावण। मर्द्दित कपि दलबल विस्तर = बानर सेना की विशाल शक्ति को कुचलना। अनिमेष राम = राम एकटक देख रहे हैं। विश्वजिद् दिव्य शर भंग भाव = संसार को विजय कर लेनेवाले दिव्य बाणों का भंग भाव। विद्धांग = विंधे हुए अंग। बद्ध कोदण्ड मुष्टि = धनुष पर कसी हुई मुट्ठी। खर रुधिर भाव = तेजी से बहता हुआ रक्त या खून। दुर्वार = कठिन, कठोर। सुग्रीवानन्द = सुग्रीव और अंगद। गवाच्छ गयनल = बानर सेना के योद्धाओं के नाम। वारित = रोकते हैं। सौमित्र = लक्ष्मण। भल्लपति = जाम्बवान्। अगणित मल्ल शेष = अनेक योद्धा आक्रमण को रोक रहे हैं। प्रलयाब्धि = प्रलय समुद्र। क्षुब्ध = विचलित, क्रुद्ध। प्रबोध = चेतना। उद्गीरित = निकलती हुई। भीम = भयंकर, भयानक। जानकी भीरु उर आशा भर = सीता के भययुक्त हृदय में आशा का संचार कर। रावण सम्बर = रावण का दमन।

व्याख्या—कवि दिन भर के राम-रावण-युद्ध के पश्चात् का प्रसंग अंकित करते हुए कह रहा है कि सूर्य अस्त हो गया और दिन के दृश्य पर आज का राम-रावण का युद्ध अनिर्णीत ही लिखा रह गया अर्थात् आज राम और रावण की सेना में ऐसा घमासान युद्ध हुआ जो हमेशा अविस्मरणीय रहेगा पर इस युद्ध में किसी भी पक्ष की पराजय नहीं हुई। कवि कहता है कि दोनों पक्षों के वीर योद्धा अपने तेज हाथों से धनुष पर बाण चढ़ाकर चलाते थे और वे बाण तीव्र गति से शत्रु की सेना पर प्रहार कर रहे थे। कवि का कहना है कि वे तीव्र गति से चलाये जाने वाले बाण सैकड़ों भालों को रोकने में समर्थ थे और उनकी आवाज से नीला आकाश सनसनाहट के शब्द से गूँज रहा था। साथ ही क्षण-प्रतिक्षण नये-नये व्यूहों की रचना हो रही थी और वीर शस्त्रों के अनेक प्रकार के कौशल को नष्ट कर रहे थे। कवि के कहने का अभिप्राय यह

है कि दोनों पक्ष कुछ इतनी अधिक कुशलता से युद्ध कर रहे थे कि शत्रु को बार-बार अपनी व्यूह रचना में परिवर्तन करना पड़ता था और दोनों ओर के योद्धा एक-दूसरे की रणकुशलता को विफल कर रहे थे।

कवि कहता है कि राम की बानर सेना राक्षसी सेना की प्रत्येक चाल को असफल कर रही थी और कुछ बानर भयानक शब्द करते हुए राक्षस सेना पर आक्रमण कर रहे थे लेकिन राम जब अपने बाणों को लक्ष्य-भ्रष्ट देखते तब उसके कमलरूपी नेत्रों से क्रोधाग्नि की लपटें निकलने लगती थीं और वह लाल-लाल आँखों से रावण का झूठा अहंकार नष्ट करने के लिए अग्रसर होते थे। कवि कह रहा है कि राम अत्यन्त कुशलता के साथ रावण पर आक्रमण करते थे लेकिन उनके सभी आक्रमणों को रावण विफल कर देता था और इस प्रकार दो प्रहर बीत गये। कवि कहता है कि दुस्साहसी रावण शक्तिशाली बानर सेना का विनाश करने में जुटा हुआ था और संसार को विजय करने की सामर्थ्य रखने वाले राम अपने दिव्य बाणों की लक्ष्यभ्रष्टता देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे। कहने का अभिप्राय यह है कि राम को अपने लक्ष्य वेध पर पूर्ण विश्वास था लेकिन आज उन्हें अपने बाणों को लक्ष्यभ्रष्ट होते देख आश्चर्य हो रहा था।

कवि कह रहा है कि रावण के बाण से राम का शरीर बिंधा हुआ था और शरीर से रक्त की धारा तेजी से बह रही थी पर राम क्रोध के कारण अपनी मुट्ठी में धनुष पकड़े हुए थे अर्थात् राम अपने शत्रु रावण के तीव्र प्रहारों से विचलित नहीं हो रहे थे बल्कि शत्रु का सामना करने के लिए तैयार थे। कवि का कहना है कि रावण इतनी कुशलता से युद्ध कर रहा था कि उसके भयंकर प्रहारों को रोकना अत्यन्त कठिन कार्य था अतः शक्तिशाली बानर सेना भी इन प्रहारों से व्याकुल हो उठी। इस प्रकार बानर सेना के वीर सुग्रीव, अंगद, भीषण, गवाक्ष, गय, नल आदि मूर्च्छित हो गये। पर वीर लक्ष्मण और भल्लपति जाम्बवान अनेक राक्षस योद्धाओं को रोकने का प्रयत्न कर रहे थे।

कवि कहता है कि युद्धभूमि में ऐसा कोलाहल मच रहा था मानो प्रलय

कालीन सागर उद्वेलित होकर भयंकर गर्जना कर रहा हो और इस कोलाहल के मध्य केवल हनुमान जी ही ऐसे थे जो अपने होश में रहकर युद्ध कर रहे थे तथा उन्होंने जो भयंकर रूप धारण कर लिया था उसे देखकर यह प्रतीत होता था कि मानों किसी ज्वालामुखी पर्वत से आग की लपटें निकल रही हों। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि बानर सेना में हनुमान जी ही एक ऐसे वीर थे जो रावण के भयंकर प्रहारों से विचलित नहीं हुए और इन प्रहारों का सामना कर युद्ध कर रहे थे। कवि का कहना है कि इस प्रकार हनुमान लगातार चार प्रहर तक रावण से युद्ध कर रहे थे और वह सीता के भययुक्त हृदय में इस आशा का संचार कर रहे थे कि हनुमान के रहते हुए राम की पराजय न होगी। कवि कहता है कि हनुमान लगातार रावण का प्रतिरोध करते हुए उसका दमन करते रहें।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने समास शैली के द्वारा युद्ध का अत्यधिक सजीव और यथार्थ चित्र अंकित किया है तथा सर्वत्र ही ओजपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक शैली के दर्शन होते हैं। साथ ही खड़ी बोली का प्रौढ़ स्वरूप ही हमें इन पंक्तियों में दीख पड़ता है और कवि की अद्भुत काव्य शक्ति, शब्द चयन, भाषा की संक्षिप्तता, क्षिप्रता, प्रवाह एवं शब्द मैत्री का सुन्दर सुगठित रूप भी दर्शनीय है। इसी प्रकार यहाँ वीर एवं रौद्र रस की अभिव्यक्ति भी हुई है और अनुप्रास, रूपक एवं श्लेष अलंकार की छटा भी द्रष्टव्य है। साथ ही 'हनुमत केवल प्रबोध' से कवि निराला की हनुमान जी के प्रति भक्ति भावना भी प्रकट होती है।

लौहे युग दल ········ कहीं पार। (पृष्ठ ९२-९३)

शब्दार्थ—युग = दोनों। राक्षस पद तल = राक्षसों के चरणों तले। टलमल = आकुल-व्याकुल, कम्पित। महोल्लास = महान हर्ष। बानर वाहिनी = बानर सेना। खिन्न = उदास। लख = देखकर। निज पति = चरण चिन्ह = अपने स्वामी राम के चरण चिन्ह। स्थविर दल = बौद्ध भिक्षुओं का दल। प्रशमित = शान्त। नवनीत चरण = मक्खन के समान कोमल चरण। सकल = सभी। श्लथ = शिथिल, ढीला। रघुनायक = रामचन्द्र। कटिबद्ध =

कमर बन्द। धनुगुण=धनुष की डोरी। स्त्रस्त=ढीला। तूणीरधरण= तरकस धारण करने वाला। विपर्यस्त=अस्त-व्यस्त, छिन्न-भिन्न। पृष्ठ पर= पीठ पर। विपुल=बहुत। नैशान्धकार=रात्रि का अँधेरा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि दोनों दल अर्थात् राम और रावण की सेना अपने अपने शिविरों को लौटीं और रावण की सेना विजयोन्माद के गर्व से अपने भारी पैरों से धरती को कंपित कर रही थी तथा उसके महान हर्ष के भीषण कोलाहल से आकाश गूँज रहा था। दूसरी ओर राम की वानर सेना पराजय के कारण दुखी और निराश थी तथा वह अपने स्वामी श्रीराम के चरण चिन्हों का अनुगमन करती हुई अपने शिविर की ओर उसी प्रकार लौट रही थी जैसे कोई बौद्ध भिक्षुओं का दल अलग-अलग दिशाओं से अपने शिविर को लौट रहा हो।

कवि का कहना है कि सम्पूर्ण वातावरण शान्त और गम्भीर था और सायंकालीन कमल के सदृश्य अपना मुख नीचे किये हुए लक्ष्मण चिन्ता में निमग्न चले जा रहे थे तथा उनके पीछे समस्त वीर वानर चल रहे थे। कवि कहता है कि इन सबके साथ राम अपने मक्खन के समान कोमल चरणों को धरती पर रखते हुए चल रहे थे और उनके धनुष की डोरी ढीली पड़ी हुई थी तथा उनका कमर बन्द जो तूणीर को धारण किए हुए था, ढीला हो गया था। साथ ही उनकी दृढ़ता से बँधी हुई जटाएँ और मुकुट भी अस्त-व्यस्त थे तथा उनकी जटाएं खुलकर पीठ, भुजाओं और वक्षस्थल पर फैली हुई इस प्रकार दिखलाई देती थीं कि मानो किसी दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अंधकार उतर आया हो। कवि कह रहा है कि इस वेश में राम की दोनों आँखें इस प्रकार चमक रही थीं जैसे रात्रि के अंधकार में कहीं दूर से चमकने वाली दो तारिकाएँ हों।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की भावानुकूल एवं सार्थक शब्द योजना के दर्शन होते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि आकाश को शिव का निवास स्थान माना जाता है और न केवल स्वयं रावण शिव का भक्त था बल्कि शिव की अर्द्धांगिनी शक्ति इस युद्ध में सहायता कर रही थी अतः

रावण की सेना के हर्षोल्लास से आकाश का गूँज उठना यहाँ स्वाभाविक ही जान पड़ता है। साथ ही कवि ने राम के शिथिल योद्धावेश का अत्यन्त सजीव और मार्मिक वर्णन भी यहाँ किया है तथा इन पंक्तियों की ध्वन्यात्मकता और शब्द योजना भी दर्शनीय है। इसी प्रकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकारों की छटा भी द्रष्टव्य है।

आये सब शिविर········आश्रय स्थल। (पृष्ठ ९३)

शब्दार्थ—सानु = चोटी। मन्थर = धीमे, मन्द गति से। समाधान = विचार विमर्श। वार्तालाप = बातचीत। फेर = पहुँचाकर या लौटाकर। आश्रय स्थल = ठहरने का स्थान, यहाँ सेना के शिविर से अभिप्राय है।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राम की सेना के सभी लोग युद्धभूमि से लौटकर धीमी गति से चलते हुए पर्वत की चोटी पर पहुँचे। कवि कहता है कि सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदि बानर और दल विशेष के सेनापति तथा अंगद, हनुमान, नल, नील और गवाक्ष आदि अपनी-अपनी बानर सेना को उनके शिविर में पहुँचाकर प्रातः काल हुए युद्ध के सम्बन्ध में अपने विचार विमर्श करने के लिए राम के शिविर में एकत्र हुए।

बैठे रघुकुल मणि········श्याम देश। (पृष्ठ ९३)

शब्दार्थ—रघुकुल मणि = रामचन्द्र। श्वेत शिला = सफेद चट्टान, स्फटिक शिला। कर पद क्षालनार्थ = हाथ-पैर धोने के लिए। पटु = चतुर, निपुण। सर = तालाब। तीर = किनारे। संध्या विधान = सायंकालीन कार्य। सत्वर = शीघ्र, जल्दी। भल्ल = जाम्बवान। प्रान्त पर = समीप स्थान पर। पाद पद्म = चरण कमल। महावीर = हनुमान। यूथपति = सेनापति। निर्निमेष = अपलक, एकटक। जित सरोज मुख = कमल को जीत लेने वाला मुख। श्याम = काला।

व्याख्या—कवि का कहना है कि रघुकुल मणि राम पत्थर की चट्टान पर बैठ गये और चतुर हनुमानजी उनके हाथ-पैर धोने के लिए निर्मल जल ले आये। अन्य सभी वीर संध्याकालीन कार्य निबटाने तथा ईश्वरोपासना के लिए तालाब के किनारे पहुँचे तथा वहाँ से जल्दी ही लौट आये। कवि कह

रहा है कि वे सब राम को घेरकर बैठ गये और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। कवि का कहना है कि राम के पीछे लक्ष्मण बैठे थे और सामने विभीषण, धीर-वीर जाम्बवान एवं सुग्रीव तथा चरण कमलों के पास हनुमानजी और अन्य सेनापति अपने अपने स्थानों पर बैठकर एकटक राम के कमल को जीतने वाले उस मुख को देख रहे थे जो आज अपनी पराजय की खिन्नता से काला पड़ गया था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का चित्रण किया गया है। साथ ही 'देखत राम का जित सरोज मुख' में व्यतिरेक अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

है अमा निशा··············हार-हार। (पृष्ठ ९४)

शब्दार्थ—अमानिशा = अमावस्या की रात्रि। गगन = आकाश। घन = सघन, घना, गहरा। स्तब्ध = शान्त, मौन। पवन. चार = वायु का संचरण, हवा का चलना। अप्रतिहत = निर्बाध वेग से, जिसे रोका न जा सके। अम्बुधि = सागर, समुद्र। विशाल = बड़ा। भूधर = पर्वत, पहाड़। ध्यान-मग्न = ध्यान में लगा हुआ। स्थिर = शान्त। राघवेन्द्र = राम। जगजीवन = लौकिक जीवन। रिपुदम्य = शत्रु द्वारा दबाये जाने योग्य। श्रान्त = थका हुआ। अयुत = दस हजारों। लक्ष्य = लाख। दुराक्रांत = अविचलित।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि अमावश्या की रात्रि है और आकाश गहरा अन्धकार उगल रहा है तथा अन्धेरे के कारण दिशाओं का ज्ञान भी लुप्त हो चला है अर्थात् इतना अधिक अंधेरा छा गया है कि यह पता ही नहीं चल रहा कि कौन-सी दिशा किस ओर है। कवि का कहना है कि वातावरण पूर्णतः निस्तब्ध होने के कारण हवा का संचरण भी शान्त है और जिस पर्वत शिखर पर राम का शिविर है उसके पीछे विशाल सागर निर्बाध वेग से गरज रहा है। कवि कहता है कि पर्वत किसी ध्यानमग्न तपस्वी की भाँति शान्त है और जहाँ राम विराजमान हैं वहाँ केवल एक मशाल जल रही है।

कवि का कहना है कि शान्त राम को बार-बार संशय झकझोर रहा है और उन्हें अब यह भय होने लगा है कि इस लौकिक जीवन में रावण पर

विजय प्राप्त करना असम्भव है। कवि कह रहा है कि राम का जो हृदय आज तक कभी भी शत्रुओं द्वारा पराजित नहीं किया जा सका और जो अकेले भी हजारों और लाखों शत्रुओं से युद्ध करते समय अविचलित रहा है वही आज के इस युद्ध के परिणामों को देख शंकित सा हो रहा था। कवि कहता है कि यद्यपि राम का हृदय कल प्रातःकाल होने वाले युद्ध के लिए बार-बार व्याकुल हो रहा था पर उनका मन युद्ध के लिए तैयार होकर भी बार-बार अपने को असमर्थ मानकर अपनी पराजय स्वीकार कर रहा था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने प्रारम्भ में वातावरण की भयानकता का सजीव चित्रण किया है और तदुपरान्त राम के मन की निराशा का अत्यंत मर्मस्पर्शी अंकन भी हुआ है। साथ ही इन पंक्तियों में प्रतीकात्मकता और उपयुक्त एवं भावानुकूल शब्द योजना के भी दर्शन होते हैं। अतएव 'है अशा निशा उगलता गगन घन अंधकार' का प्रतीकार्थ यह है कि राम के हृदय में रावण का बढ़ता हुआ आतंक प्रलय के समान है और 'मशाल' शब्द का प्रयोग कर कवि ने यह संकेत भी करना चाहा है कि निराशा के इन क्षणों में भी राम के हृदय में सीता का प्रेम जागृत है जो उनकी व्याकुलता में और भी अधिक वृद्धि कर रहा है। इस प्रकार राम की मनोदशा के अनुरूप वातावरण की योजना में कवि को पूर्ण सफलता मिली है और 'उगलता गगन घन अंधकार' तथा 'भूधर ज्यों ध्यानमग्न' में एकदेशीय रूपक है क्योंकि गगन में दैत्य का और भूधर में योगी का आरोप है। साथ ही इन पंक्तियों में उपमा, अनुप्रास, वीप्सा एवं उत्प्रेक्षा नामक अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

ऐसे क्षण अंधकार..............कम्पन तुरीय। (पृष्ठ ९४)

शब्दार्थ—विद्युत=बिजली। पृथ्वी तनया कुमारिका छवि=धरती की पुत्री अर्थात् सीता का कौमार्य सूचक सौन्दर्य। अच्युत=धैर्यशाली राम। निष्पलक=एकटक, बिना दृष्टि हटाए। उपवन=बगीचा, उद्यान। विदेह=राजा जनक। लतान्तराल=लताओं के बीच में। गोपन=गुप्त। पराग समुदाय=पराग की राशि। खग=पक्षी। तरु मलय वलय=मलय अर्थात् चन्दन के वृक्ष वृत्ताकार खड़े थे। ज्योति=सूर्य का प्रकाश। स्वर्गीय=अलौ-

किक, दिव्य। ज्ञात छवि प्रथम स्वर्गीय = राम और सीता को अपने सौन्दर्य के आकर्षण का पहली बार ज्ञान हुआ। जानकी नयन कमनीय = सीता के सुन्दर नेत्र। तुरीय = समाधि की एक अवस्था का नाम।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि निराशा और अवसाद के इन क्षणों में राम के मन में कुमारी सीता की छवि उसी प्रकार चमक उठी जैसे अंधकार से घिरे हुए बादल में बिजली चमक उठती हो। कवि का कहना है कि राम को राजा-जनक का वह बगीचा याद आया जिसमें उनका और सीता के नेत्रों का लताओं के मध्य स्नेहपूर्ण मिलन हुआ था। साथ ही राम को वह घटना भी याद आयी जब उनका और सीता का कोई प्रत्यक्ष, वार्तालाप नहीं हुआ था बल्कि दोनों के नेत्रों ने ही परस्पर एक दूसरे से संभाषण किया था। इस प्रकार राम और सीता के नेत्रों की पलकें नवीन भाव लेकर उठती थीं और दूसरे क्षण गिर जाती थीं पर पुन: उनमें नूतन भाव का आगमन होने से वे ऊपर उठकर भाव प्रकट कर पुन: गिर जाती थीं।

कवि कहता है कि राम को उपवन के वृक्षों के काँपते हुए किसलय भी याद आये और उन्हें उन फूलों की भी स्मृति हुई जिनसे पराग की राशि झड़ रही थी। साथ ही उस उपवन में पक्षी हर्षपूर्वक नवजीवन का परिचय देने वाला राग अलाप रहे थे और मलय अर्थात् चन्दन के वृक्ष वृत्ताकार खड़े हुए थे तथा प्रात:कालीन सूर्य की ज्योति ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी कि मानों स्वर्ग से कोई झरना झर रहा हो। कवि कह रहा है कि इसी रम्य वातावरण में उस दिन राम और सीता को अपनी-अपनी सुन्दरता का पहली बार ज्ञान हुआ था और सीता के सुन्दर नेत्रों में इस प्रथम मिलन के फलस्वरूप वह गतिमय कम्पन उत्पन्न हुआ जिसकी अनुभूति तुरीयावस्था में प्राप्त आनन्द के समान थी।

टिप्पणी—वस्तुत: इन पंक्तियों में स्मृत्यावलोकन प्रणाली (फ्लैश बेक पद्धति) का आधार लेकर कवि निराला ने राम और सीता की प्रथम भेंट का प्रसंग अंकित किया है। साथ ही यहाँ प्राकृतिक बिम्ब विधान भी दर्शनीय है और कवि की रचना पद्धति में भाव प्रवणता एवं संकेतात्मकता नामक

विशेषताएँ भी हैं। इस प्रकार राम की दृष्टि प्रकृति के उन्हीं उपादानों पर जाती है जो शृंगार भावना को उद्दीप्त करने में सहायक हैं और यहाँ किसलय राम के अवचेतन मन में सीता के प्रणय का तथा खगों के गीत प्रणयानुभूति की आनन्द लहरियों और 'ज्योति प्रपात' स्वर्गीय सीता की अनुपम सुन्दरता के प्रतीक हैं। साथ ही इन पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला को जीवन से विरोधी पक्षों के चित्रण में समान रूप से सफलता प्राप्त हुई है और एक ही कविता में एक साथ विराट् एवं कोमल प्रसंगों की ऐसी योजना अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार कवि जहाँ एक ओर अम निशा के सघन अन्धकार का चित्रण करते हुए वातावरण की भयंकरता का संकेत करता है वहाँ दूसरी ओर नेत्र मिलन और प्रिय सम्भाषण का वर्णन कर अपने चित्रण में कोमलता की भी योजना करता है। इन पंक्तियों में अनुप्रास, वीप्सा और उत्प्रेक्षा नामक अलंकारों की भी स्वाभाविक योजना हुई है।

सिहरा तन............मुक्तादल। (पृष्ठ ९४-९५)

शब्दार्थ—सिहरा = कंपित होना, रोमांचित होना। हर = शिव, शंकर-जी। धनुर्भंग को = धनुष तोड़ने वाले के लिए। पुनर्वार = दोबारा। हस्त = हाथ। स्मिति = मुस्करान, हँसी। अधर = ओंठ। दिव्य = अलौकिक। मंत्रपूत = मंत्रों द्वारा सिद्ध किए हुए। पर = पंख। शलभ = पतंग। रजनीचर = रात्रि में चलने वाले अर्थात् राक्षस। शिरस्त्रय = त्रिसिरा राक्षस। भीमामूर्ति = विशाल या भयानक मूर्ति। आच्छादित = ढका हुआ। समग्र = समस्त, सभी। ज्योतिर्मय = प्रकाश युक्त, अग्नि से युक्त। महानिलय = अत्यन्त विशाल। शेषशयन = शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु के अवतार राम। राममय नयन = राम की छवि को धारण किये हुए नेत्र। भावित = स्मृति में डूबे हुए अथवा स्मृति में लीन। मुक्तादल = मोती के समान उज्जवल आँसू।

व्याख्या—कवि का कहना है कि राम को सीता के पहले मिलन की याद आयी तो हर्ष के कारण उनका शरीर रोमांचित हो उठा और मन क्षण भर के लिए सब कुछ भूलकर अतीत की स्मृतियों में खो गया। साथ ही उनका सम्पूर्ण शरीर लहराने लगा और उनका हाथ अनायास ही उसी प्रकार दृढ़ता के साथ

ऊपर की ओर उठ गया जैसे कि वह एक बार पुनः शिव के धनुर्भंग के लिए ऊपर उठा हो। कहने का अभिप्राय यह है कि राम को उस समय रावण के साथ हो रहे युद्ध का किंचित मात्र भी ध्यान नहीं रहा और वह अपनी सम्पूर्ण चिन्ता, व्यथा एवं निराशा आदि को भूलकर सीता से हुई प्रथम भेंट का स्मरण कर अमित उत्साह से भर उठे।

कवि कह रहा है कि सीता की सुखद स्मृति में लीन राम के मधुर अधरों पर अचानक ही आशा और विश्वास की मुस्कान खिल उठी तथा उनके हृदय में न केवल रावण अपितु सम्पूर्ण संसार को विजय करने की भावना उत्पन्न हुई। साथ ही उन्हें अपने वे दिव्य और मंत्रों से सिद्ध किए हुए असंख्य बाण भी याद आये जो शत्रु का दमन करने के लिए देवदूतों के समान अपने पंखों को फैलाकर आकाश में उड़ रहे थे। कवि का कहना है कि राम ने कल्पना में निमग्न हो देखा कि उनके उन बाणों की आग में ताड़का, सुबाहु, विराध, त्रिशिरा, दूषण एवं खर आदि सभी राक्षस पतंगों की भाँति जल रहे हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि इन सभी राक्षसों का राम ने पहले बध किया था अतः राम को उस समय इन सभी राक्षसों की स्मृति हो रही थी।

कवि कहता है कि राम ने कुछ समय पश्चात् अपने मानस-नेत्रों के समक्ष आकाश पर महाशक्ति का वह भयानक रूप देखा जिसे आज उन्होंने युद्धभूमि में देखा था और उन्हें महाशक्ति का वह भयंकर रूप सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त दिखाई पड़ रहा था। कवि का कहना है कि राम ने रावण का वध करने के लियें जो दिव्यशक्ति युक्त अग्नि बाणों का प्रहार किया था वे सभी बाण उस महाशक्ति के शरीर में लग-लगकर क्षीण. होकर व्यर्थ होते जा रहे थे। इस प्रकार शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले विष्णु के अवतार राम ने जब अपने बाणों की असफलता को देखा तब वे आश्चर्य और अवसाद में डूबने उतराने लगे तथा उनके नेत्रों में सीता के उन नेत्रों का चित्र खिच गया जिनमें हमेशा राम की ही प्रतिमा निवास करती थी। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण से युद्ध करते समय अपनी आज की पराजय के कारण राम को यह

शंका हो रही थी कि वह अब सीता की रक्षा करने में सफल हो सकेंगे या नहीं।

कवि कह रहा है कि जब राम आशा-निराशा के द्वन्द्व में निमग्न थे तब उन्होंने सामने ही रावण को जोर-जोर से हँसते हुए और अट्टहास करते देखा तथा रावण के इस अट्टहास ने राम के विषाद के घावों पर तिलमिलाहट रूपी नमक छिड़कने का कार्य किया। कवि कहता है कि रावण की अट्टहास युक्त इस उन्मुक्त हँसी को राम सहन न कर सके और उनके नेत्रों से मोती के समान आँसू की दो बूँदें ढुलक कर नीचे गिर पड़ीं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने राम की विभिन्न मानसिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है और हम देखते हैं कि सर्वप्रथम राम अपनी निराशावस्था में सीता की कौमार्य छवि का स्मरण कर उसी प्रकार उत्साहित हो उठते हैं जिस प्रकार वह सीता को प्राप्त करने के लिए शिव का धनुष तोड़ने को उत्साहित हुए थे। इसी प्रकार अपनी दूसरी मनोदशा में राम महाशक्ति द्वारा रावण को सहयोग देते हुए देखकर दुःखी भी जान पड़ते हैं और कवि की चित्रण कला में हमें स्वाभाविकता, सशक्तता एवं प्रभावोत्पादकता की त्रिवेणी सी लहराती हुई जान पड़ती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि निराला ने राम का चरित्र-चित्रण करते समय उन्हें न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम ही माना है और उनके चरित्रों में परम्परायुक्त भक्ति के प्रतिमानों का आश्रय भी लिया है बल्कि के राम के चरित्र को सबल और स्वाभाविक बनाने के लिए उनकी मानवीय दुर्बलताओं का भी चित्रण किया है। साथ ही इन पंक्तियों में वीर, रौद्र, भयानक, शृंगार और करुण रस की स्वाभाविक योजना हुई है तथा कवि ने बिंबात्मक शैली का भी प्रयोग किया है और यथार्थ रेखाचित्र की दृष्टि से भी यह अंश उल्लेखनीय है। इसी प्रकार इन पंक्तियों में स्मरण, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, दृष्टांत और विशेषोक्ति नामक अलंकारों की योजना भी हुई है।

बैठें मारुति..........**मुख निश्चेतन।** (पृष्ठ ९५)

शब्दार्थ—मारुति = हनुमान। चरणारविन्द = कमल के समान सुन्दर और

कोमल चरण। अस्ति नास्ति = है और नहीं है अर्थात् सृजन और संहार, वास्ताव में इन पद्धति का प्रयोग उपनिषदों में ब्रह्म की सत्ता सिद्ध करने के लिए किया गया है। गुणगुण = गुणों का समूह या भंडार। अनिन्द्य = निर्दोष। साधना = आराधना या संघर्ष। साम्य = समानता अथवा एकतानता। बाम कर = बायाँ हाथ। दक्षिण पद = दाहिना पैर। कपिवर = हनुमान। पा सत्य = प्रत्यक्ष रूप में पाकर। सच्चिदानन्द रूप = सत्, चित् और आनन्द के स्वरूप। विश्राम धाम = मुक्ति लोक। सभक्ति = भक्तिपूर्वक। अजपा = मौन जप, सहज भक्ति। विभक्त हो = द्वैत भाव से। अश्रुयुगल = दोनों आँसू। चिर प्रफुल्ल = महाशक्ति, देवी दुर्गा। हरिकयुग = दो हीरे। कौस्तुभ = एक मणि का नाम। विकल = विचलित। चिर प्रफुल्ल = सदा प्रसन्न रहने वाला। निश्चेतन = चेतनारहित, उदास।

व्याख्या—कवि का कहना है कि राम के चरणों के समीप बैठे हुए हनुमान उनके चरण कमलों का दर्शन करते हुए सोच रहे हैं कि राम के ये चरण 'सृजन और संहार' या, ब्रह्म हैं और नहीं है' की दार्शनिक मान्यता के ही एक रूप हैं और वे निर्दोष गुणों के समूह हैं तथा साधना करते समय उपासक इन्हीं चरणों का ध्यान करते हैं। कवि कहता है कि राम का बायाँ हाथ दाहिने पैर पर और दाहिने हाथ की हथेली पर बायाँ पैर रखा हुआ था और उनके इस स्वरूप में हनुमान राम के सच्चिदानन्द रूप का दर्शन कर गद्गद् हो गये। कवि का कहना है कि राम का वह रूप मुक्ति लोक के समान था जहाँ जीवन अनन्त विश्राम प्राप्त करता है और राम की इस भावमयी एवं गम्भीर मुद्रा को देखकर हनुमान स्वाभाविक भक्तिभाव के साथ द्वैत-भावना से मुक्त हो (अर्थात् राम ब्रह्म है और ब्रह्म से भिन्न भी हैं) राम नाम का जाप कर रहे थे।

कवि कहता है कि इसी समय राम के कोमल चरणों पर उनके नेत्रों से अश्रुओं की दो बूंदें गिर पड़ी और ये दोनों बूंदें ऐसी जान पड़ती थीं मानों मौन नीले आकाश में तारों का समूह चमक उठा हो अर्थात् ये अश्रु गिरते समय तीव्र कांति से दीप्त थे। कवि कह रहा है। कि इस दृश्य को देखकर

हनुमान को यह आभास हुआ कि उनके समक्ष राम के नहीं बल्कि महाशक्ति के युगल चरण हैं जिनके मध्य में अश्रुओं के वे दोनों बिन्दु दो हीरों या कौस्तुभ मणि के रूप में शोभित हो रहे थे। कवि का कहना है कि क्षण भर में ही हनुमान की यह एकतानता भंग हो गई और उनका स्थिर मन विकल हो उठा तथा उनके हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न हुईं लेकिन अगले ही क्षण उन्होंने देखा कि वहाँ उनके आराध्यदेव राम के ही युग चरण शोभायमान थे। कवि कहता है कि उस समय कमल नयन राम के नेत्रों में अश्रु उमड़े हुए थे और उनका हमेशा प्रसन्न रहने वाला मन कुछ-कुछ व्याकुल और उदास जान पड़ता था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने एक ओर तो राम के रूप की वेदान्तपरक व्याख्या करते हुए उन्हें द्वैताद्वैत कहा है और दूसरी ओर भक्ति-परक दृष्टि से राम को भक्तों के लिए सहज गम्य भी माना है। इस प्रकार कवि ने यहाँ धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का आरोपण करते हुए राम और हनुमान के चरित्र की पावनहृा का संकेत भी दिया है। साथ ही कवि राम की मनःस्थिति और हनुमान की परम्परागत दास्यभक्ति का वर्णन भी स्वाभाविक रूप में करता है तथा उसने सुन्दर समास पद्धति में मुद्राओं का भी चित्रण किया है। इसी प्रकार इन पंक्तियों में उपमा, रूपक, अनुप्रास और अपह्नुति नामक अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

ये अश्रु राम········कर अट्टहास। (पृष्ठ ९५-९६)

शब्दार्थ—उद्वेल = उत्तेजित। शक्ति खेल सागर = शक्ति के साथ खेलने वाला और सागर के समान अथाह बलशाली हनुमान। श्वसित = उच्छ्वास पूर्ण। पिता पक्ष = पूर्वजों की ओर से। तुमुल = भयानक, भीषण। पवन उनचास = पवन के उनचास प्रकार कहे गये हैं और जब ये सभी रूप एक साथ मिलकर चलते हैं तब प्रलय हो जाती है। वक्ष = हृदय। वाष्प = भाप, यहाँ चिन्ता से अभिप्राय है। शत घूर्णावर्त = सैकड़ों भयंकर चक्कर लगाते हुए भँवर। तरंग भंग = लहरों का आना जाना। जल राशि = पानी का ढेर। बन्ध = बंधन। प्रतिसन्ध = मर्यादा, सीमा। स्फीत = विशाल। वक्ष =

हृदय। देश भाव = स्थान का ज्ञान। महाराव = भयंकर जयघोष। अनिल = पवन। वज्रांग = वज्र के समान कठोर अंगों वाला शरीर। एकादश रुद्र = ग्यारवें रुद्र हनुमान। क्षुब्ध = क्रुद्ध होकर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राम के अश्रुपूर्ण नेत्रों को देखकर हनुमान समझ गये कि उनके आराध्य देव राम अत्यंत दुःखी और विकल हैं अतः अपार शक्ति के साथ खेलने वाले तथा सागर के समान अथाह बलशाली हनुमान उत्तेजित हो उठे। हनुमान की इस उत्तेजना से प्रेरित हो उनके पिता पवन की ओर से भयंकर शोर करते हुए उनचासों पवन एक साथ मिलकर चलने लगे और हनुमान के हृदय में एकत्र चिन्तारूप अतुल भाप उड़ गयी। कहने का अभिप्राय यह है कि हनुमान को यह विश्वास हो गया कि इस प्रलय से रावण की संरक्षिका महाशक्ति न बच सकेगी और उनकी चिन्ता इस बात से दूर हो गयी। (यहाँ यह स्मरणीय है कि कुछ व्याख्याकार यह अर्थ भी करते हैं कि 'पवन के झोकों के साथ ही सागर की सतह पर जमी हुई भाप राशि भी खंड-खंड होकर इधर-उधर बिखर गई लेकिन यह अर्थ समीचीन नहीं जान पड़ता।)

कवि का कहना है कि सैकड़ों भयंकर भँवर चक्कर लगाते हुए चलने लगे और लहरों की भयंकर गति से पर्वत उठ-उठकर सागर में बहने लगे और जल ज्वार-भाटे के रूप में कभी तो ऊपर उठता तथा कभी नीचे गिरता था अर्थात् वह पछाड़ खा-खाकर गिर रहा था। साथ ही जल का वह अथाह प्रवाह अपने सम्पूर्ण वेग से तटवर्ती भूमि को तोड़ते हुए आगे बढ़ने लगा और सागर का विशाल वक्षस्थल और भी अधिक विशाल होने लगा अर्थात् चारों ओर सागर ही सागर दिखाई देने लगा। कवि कह रहा है कि सागर ने अपनी मर्यादाओं को तोड़कर दिग्विजय की कामना पूर्ण करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और वह प्रतिपल आगे ही बढ़ने लगा।

कवि कहता है कि सागर सैकड़ों वायु के वेग बल से प्रवाहित होने लगा और सभी दिशाओं में जलराशि फैल जाने के कारण दिशा और स्थान का भली-भाँति ज्ञान नहीं हो पा रहा था। कवि कहता है कि विपुल जलराशि को

मथता हुआ पवन भयंकर शब्द कर रहा था और इस प्रकार का भयंकर दृश्य उपस्थित करते हुए वज्र के सदृश्य दृढ़ शरीर वाले, एकादश रुद्र के अवतार हनुमान क्षुब्ध होकर भयंकर अट्टहास करते हुए महाकाश में पहुंच गये।

टिप्पणी—वस्तुतः निरालाजी हनुमान के उपासक रहे हैं और अपनी इन पंक्तियों में उन्होंने राम के प्रति हनुमान की अपार निष्ठा का चित्रण करते हुए हनुमान को धीरोद्धत नायक के रूप में अंकित किया है। इस प्रकार यहाँ हमें हनुमान के पौरुष पराक्रम और औदात्य की सुन्दर झाँकी दीख पड़ती है तथा वीर, रौद्र और भयानक रसों का सम्मिलन भी सराहनीय है। साथ ही इन पंक्तियों में सुदीर्घ समासान्त शब्दावली और नाद सौन्दर्य के सभी दर्शन होते हैं तथा रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष और मानवीकरण आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि—प्रसाद की 'कामायनी' के चिन्ता सर्ग में भी प्रलय का अत्यधिक प्रभावशाली चित्रण किया गया है और उसका कुछ अंश तुलनात्मक अध्ययन के लिए यहाँ उद्घृत किया जा रहा है—

हाहाकार हुआ क्रन्दनमय कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगन्त वधिर भीषण रव बार-बार होता था क्रूर।
दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज तट के।
सघन गगन में भीम प्रकंपन झंझा के चलते झटके।
बार-बार उस भीषण रव से कँपती धरती देख विशेष;
मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष।
उधर गरजतीं सिन्धु लहरियाँ कुटिल काल के जालों सी;
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाये व्यालों सी।
सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिन्धु के विचलित सी;
व्यस्त महा कच्छप सी धरणी ऊभ-चूभ थी विकसित सी।

रावण महिमा·········दूर रोध। (पृष्ठ ९६)

शब्दार्थ—श्यामा = महाशक्ति। विभावरी = रात्रि। रुद्र = क्रुद्ध, शिव। प्रताप = ऐश्वर्य, अग्नि। दशस्कन्ध = रावण। रुद्र वन्दन = शिव की उपासना।

रघुनंदन कूजित = राम द्वारा उच्चारण की गयी । व्योम = आकाश । पदतल भारधारण = चरणों के भार को धारण करने वाले । हर = शिव, शंकर । मन्द्र = मन्द । सम्वरो = संभलो, तैयार हो जाओ । शृंगार युग्म गत = शृंगार भावना से नारी के साथ आबद्ध । अर्चना = पूजा, आराधना । अक्षय = अमर, अनश्वर । चिर ब्रह्मचर्य रत = हमेशा ब्रह्मचारी रहने वाला । सर्वोत्तम = सर्वश्रेष्ठ । अनन्य = अखंड । लीला सहचर = लीला के साथी । दिव्य भावधर = दिव्य अर्थात् भक्ति कीउज्ज्वल भावना के मूर्तिमान रूप । विषय = भयानक, भयंकर । प्रबोध = सांत्वना, ज्ञान । रोध = विरोध ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि जब हनुमान महाकाश में पहुँचे तब वहाँ एक ओर तो रावण के महत्त्व को बनाये रखने वाली रात्रि के अंधकार के समान श्यामवर्ण वाली महाशक्ति थी और दूसरी ओर शिव भक्त राम की पूजा के प्रताप द्वारा तेज का प्रसार करने वाले हनुमान थे । इस प्रकार उस ओर यदि रावण के पक्ष में शक्ति थी तो इस ओर राम के द्वारा उच्चारण की हुई शिव की बंदना थी जिसके बल पर अटल होकर हनुमान सम्पूर्ण आकाश को निगलने का साहस कर रहे थे । कहने का अभिप्राय यह है कि रावण और राम दोनों के ही पक्ष समान रूप से शक्तिशाली थे ।

कवि कहता है कि अचल शिव भी भावी महानाश की आशंका से क्षण भर के लिए चंचल हो उठे और शक्ति के पदतल का भार धारण करने वाले शिव मंद स्वर में शक्ति से कहने लगे कि हे देवि; अपना तेज सम्भालो क्योंकि यह कोई सामान्य बानर नहीं है । शिव शक्ति से कह रहे हैं कि यह महावीर है और यह कभी काम वासना से पीड़ित होकर नारी के साथ आबद्ध नहीं हुआ बल्कि यह राम की पूजा का अमर मूर्तिमान रूप है । शिव का कहना है कि यह पराक्रमी बानर वास्तव में एकादश रुद्र है और यह प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला सर्वथा धन्य है तथा यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सर्वश्रेष्ठ और अनन्य भक्त भी है तथा उनकी लीलाओं का साथी और दिव्य भावों को धारण करनेवाला है । कहने का अभिप्राय यह है कि हनुमान

नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और राम की मानव लीला में हमेशा सम्मिलित रहते हैं तथा दिव्य दास्य भाव के मूर्तिमान रूप भी हैं।

कवि कह रहा है कि शिव ने महाशक्ति को सम्बोधित कर कहा कि हे देवि; यदि आपने हनुमान पर प्रहार किया तो आपकी भयानक हार होगी अतः उचित तो यही है कि आप इस बानर से विरोध की भावना का परित्याग करें। शिव महाशक्ति से कह रहे हैं कि आप विद्या का सहारा लेकर इस बानर के मन को समझावें और आपके ऐसा करने से यह बानर निश्चय ही नमित हो जाएगा तथा आनेवाला संकट भी दूर हो जाएगा।

टिप्पणी—वस्तुतः 'देवी भागवत' में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों ही शक्ति के उपासक कहे गये हैं और इन पंक्तियों में शंकर को शक्ति का पद भार स्वीकार करने वाला मानना शाक्त मत के अनुकूल ही जान पड़ता है। साथ ही इन पंक्तियों में हनुमान के उदात्त चरित्र का चित्रण उदात्त शैली में किया गया है और सांग रूपक, श्लेष, तुल्योगिता, सम, विरोधाभास तथा उल्लेख आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी हुआ है।

कह हुए मौन..................हुए दीन। (पृष्ठ ९७)

शब्दार्थ—पवन तनय=पवन के पुत्र हनुमान। अंजना=हनुमान की माता। बोध=ज्ञान। ग्रसने=निगलने। चल=चंचल। अनर्थ—अनुचित कार्य। असम्भाव्य=जो असंभव हो। धार्य=धारण करना, स्वीकार्य। गह=ग्रहण कर।

व्याख्या—कवि का कहना है कि शिव महाशक्ति से इतना कहकर चुप हो गये और शक्ति ने हनुमान की माता अंजना का रूप धारण कर लिया तथा हनुमान के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न करती हुई अचानक उन्हें उनकी माता अंजना दिखाई दी। वह हनुमान से कहने लगी कि जब तुमने सूर्य को निगल लिया था तब तुम बालक थे और तुम्हें ज्ञान नहीं था पर यह भाव तुम्हें रह-रह कर व्याकुल करता रहता है अर्थात् तुम बार-बार बचपन के समान ही कार्य करने के लिए व्याकुल रहते हो लेकिन यह तुम्हारे लिए लज्जा की बात है कि मैं तुम्हारी यह आदत देखकर बार-बार मौन रह जाती हूँ।

अंजना का रूप धारण कर महाशक्ति ने हनुमान से कहा कि यह महाकाश है जहाँ उस शिव का निर्मल निवास स्थान है जिनकी पूजा तुम्हारे श्रीराम भी करते हैं और तुम उसी महाकाश को निगलने के लिए आतुर हो पर तुम्हारा यह कार्य अनुचित है। महाशक्ति हनुमान की माता अंजना का रूप धारण कर हनुमान से कहती हैं कि तुम अपने मन में स्वयं विचार करो कि क्या राम ने तुम्हें यह कार्य करने की अनुमति दी है और तुम्हें यह भी न भूलना चाहिए कि तुम तो केवल सेवक हो पर तुम सेवक का धर्म छोड़कर यह अनुचित कार्य कर रहे हो लेकिन क्या तुम्हारे स्वामी राम तुम्हारे इस अनुचित कार्य को स्वीकार कर लेंगे ?

कवि का कहना है कि यह सुनकर हनुमान का क्रोध शांत हो गया और वह नम्र हो गये तथा अंजना का रूप धारण करने वाली महाशक्ति भी क्षण भर में अंतर्ध्यान हो गयी। कवि कहता है कि हनुमान धीरे-धीरे धरती पर उतर आये और उन्होंने राम के चरणों को पुनः दीन भाव से ग्रहण कर लिया।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में प्रसाद गुण युक्त भाषा शैली का प्रयोग किया गया है और कवि ने वीर हनुमान के आदर्श रूप की झाँकी भी अंकित की है। साथ ही स्मरण, स्वाभाविक, पुनरुक्ति और विषम आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी हुआ है।

राम का विषण्णानन···············**धिक्-धिक्।** (पृष्ठ ९७-९८)

शब्दार्थ—विषण्णानन = उदास मुख। वदन = मुख। भल्लूक = रीछ। वगतश्रम = स्वस्थ, परिश्रम की क्लान्ति से मुक्त। निर्जर = जरा रहित अर्थात् बुढ़ापे के प्रभाव से मुक्त। तूण = तूणीट, तरकस। सुमित्रानन्दन = सुमित्रा के पुत्र, लक्ष्मण। मेघनादजित = मेघनाद पर विजय प्राप्त करने वाले। रण = युद्ध। भल्लपति = जाम्बवान्। प्रमन = प्रसन्न, आनन्द। तारा कुमार = तारा के पुत्र अंगद। अप्रतिभट = असाधारण वीर। अर्बुद = दस करोड़। दक्ष = चतुर, निपुण। भाव प्रहर = निराशा के भाव का उदय। कल्मष = पापी। गताचार = आचारहीन, अत्याचारी। परिषद दल = सभासदों का समूह। कल

कूजित पिक=मधुर वाणी में बोलती हुई कोयल। लंकापति=लंका का राजा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राम शोकाकुल हैं और उदास मुख बैठे हैं तथा उनके इस उदास मुख को विभीषण कुछ देर तक देखते रहे। इसके पश्चात् विभीषण ने राम से कहा कि हे मित्र; आज आपका यह मुख प्रसन्न नहीं है, जिसे देखकर सम्पूर्ण बानर, रीछ और अन्य वीर आदि युद्ध का श्रम भूलकर फिर से अपना जीवन शांति सम्पन्न बना लेते थे तथा उनमें यौवन की वह उद्याम शक्ति आ जाती थी जो उन्हें वृद्धावस्था की शिथिलता से दूर रखती थी। विभीषण राम से कह रहे हैं कि हे रघुवीर; तुम्हारे तरकस में आज भी वे सभी दिव्य बाण सुरक्षित हैं जिनसे तुमने रावण कुल का संहार किया है और तुम्हारा वक्षस्थल भी पहले के समान दृढ़ है तथा तुम्हारे हाथ आज भी वैसा ही रण कौशल दिखाने वाले हैं और तुम्हारे पास तुम्हारा अमित बल अभी भी सुरक्षित है। विभीषण के कहने का अभिप्राय यह है कि रामचन्द्र जी में अभी भी पहले के समान अपराजेय बल विद्यमान है और वह विरोधी पक्ष को पराजित करने में आज भी पूर्ण समर्थ है।

राम को सम्बोधित कर विभीषण ने कहा कि युद्ध भूमि में मेघनाद के समान बलशाली वीर को पराजित करने वाले लक्ष्मण भी वही हैं और रीछों के राजा जाम्बवान् तथा बानर नरेश सुग्रीव भी वही हैं और गौर वर्ण वाला धैर्यवान महाबाली अंगद भी वही हैं तथा वही कुशल सेनानायक हैं और वही रणक्षेत्र है। कहने का अभिप्राय यह है कि राम के पास अभी भी वे सभी साधन हैं जिनके द्वारा उन्होंने रावण के कुल का संहार किया था और शत्रु पक्ष पर अब तक विजय प्राप्त की थी लेकिन न जाने क्यों इस समय राम के मन में निराशापूर्ण भावों का उदय हो रहा है? विभीषण कह रहे हैं कि हे रघुकुल गौरव राम; तुम इस समय छोटे क्यों हुए जा रहे हो और अपने आपको इतना तुच्छ तथा महत्त्वहीन क्यों मान बैठे हो तथा जब युद्ध में तुम्हारी विजय हो रही है तब ऐसी अवस्था में तुम्हारा युद्ध से विमुख होना उचित नहीं है।

विभीषण श्रीरामचन्द्र से कह रहे हैं कि तुम्हारी इस निराश भावना से

कितना ही श्रम व्यर्थ हो जाएगा ययोंकि जब तुम्हारा सीता से मिलन का और सीता को रावण के कारागार से छुड़ाने का समय आ रहा है तब तुम निष्ठुर होकर सीता की मुक्ति से अपना हाथ खींच रहे हो। विभीषण का कहना है कि रावण लम्पट, खल, पापी और अनाचारी है तथा उसने तो भलाई की बात कहने वाले को लात मारी थी। विभीषण के कहने का अभिप्राय यह है कि जब मैंने रावण से कहा था कि वह सीता को सम्मानपूर्वक राम को वापिस लौटा दे तब उसे मेरी यह उचित बात अनुचित प्रतीत हुई और उसने मुझे लात मारी। विभीषण कह रहे हैं कि हे राम; यदि तुम युद्ध से विमुख हो गये तो फिर रावण अशोक वाटिका में बैठ कर सीता को अनेक प्रकार के दुःख देगा और अपने सभासदों को अपने विजय की कथा सुनायेगा तथा वसंत ऋतु में कोयल की मीठी वाणी से गुंजित उपवन में आनन्द से दिन व्यतीत करेगा। अन्त में विभीषण ने राम से यह भी कहा कि आपने मुझे लंका का राजा बनाने की प्रतिज्ञा की थी पर अब वह प्रतिज्ञा अपूर्ण रह जाएगी और यह मेरे लिए भी बड़ी धिक्कार की बात है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने विभीषण को राम के एक सच्चे हितैषी और सुहृदय के रूप में अंकित कर मित्र-सम्मत-उपदेश का स्वाभाविक कथन किया है। साथ ही शैली में सहजता और रोचकता भी है तथा मुहावरों का सार्थक उपयोग भी हुआ है और अन्त में व्यंग्य का समावेश भी है। इसी प्रकार विरोधाभास, श्लेष, सार, अनुप्रास, वीप्सा, उल्लेख और लोकोक्ति आदि अलंकारों का स्वाभविक प्रयोग भी हुआ है।

सब सभा ....नहीं शक्ति। (पृष्ठ ९८)

शब्दार्थ—निस्तब्ध = शान्त। स्तिमित = अधखुले। विमन = उदास, अनमने। चाव = उत्साह। दुराव = छिपाव। समनुरक्ति = समान आकर्षण, समान प्रेम का भाव। गहन = गम्भीर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि विभीषण की बातों को सुनकर सारी सभा शांत बैठी रही और राम के अधखुले नेत्र शीतल प्रकाश छोड़ते हुए उदास से देखते रहे तथा ऐसा जान पड़ता था कि मानो विभीषण के इन

ओजस्वी वचनों के प्रति राम को न कोई उत्साह ही था और न दुराव। कहने का अभिप्राय यह है कि राम अपनी मनोदशा को छिपाये रखना चाहते थे। कवि का कहना है कि राम के लिये विभीषण के उद्‌गार केवल शब्द मात्र थे और वे वैसे ही थे जैसे एक मित्र अपने मित्र के प्रति आकर्षण का अनुभव कर उसे दुखी देख उसकी सांत्वना के लिये कहता हो लेकिन मित्र में उन गम्भीर भावों को ग्रहण करने की शक्ति न हो। कहने का अभिप्राय यह है कि विभीषण के ओजस्वी शब्दों को सुनकर भी राम शांत बैठे रहे और उन पर विभीषण के कथन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने राम की विषादग्रस्त मनोदशा का स्वाभाविक चित्रण किया है और हम देखते हैं कि मनोभावों के चित्रण तथा उनकी प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म अंकन में भी कवि पूर्ण सफल रहा है। साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा और विरोधाभास आदि अलंकारों की योजना भी हुई है।

कुछ क्षण तक.........वातारण विषम। (पृष्ठ ९७-९९)

शब्दार्थ—सहज = स्वाभाविक। रघुमणि = रामचन्द्र। समर = युद्ध। दृगजल = आँसू। तेज प्रचंड = तीव्र उत्साह। गह-युग-पद = दोनों पैर पकड़ कर। मसक दंड = पुष्ट भुजाएँ। स्पंदित = आन्दोलित। विषम = भयंकर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि विभीषण की बातें सुनकर राम कुछ क्षणों तक मौन रहने के पश्चात् अपने स्वाभाविक कोमल स्वर में कहने लगे कि हे मित्रवर, अव युद्ध में हमारी विजय नहीं होगी क्योंकि अब यह युद्ध मनुष्य और बानर का राक्षसों के साथ नहीं हो रहा है बल्कि रावण का निमंत्रण पाकर स्वयं महाशक्ति उसकी सहायता कर रही है। राम का कहना है कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिधर अन्याय है उधर ही महाशक्ति सहयोग देकर युद्ध कर रही है अर्थात् रावण अन्यायी है और महाशक्ति उस अन्यायी की इस युद्ध में सहायता कर रही है अतः विजय की आशा करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता।

कवि का कहना है कि इतना कहते-कहते राम के नेत्र छलछला आये

और नेत्रों से कुछ बूंदें ढुलक कर नीचे गिर पड़ीं तथा उनका कंठ अवरुद्ध हो गया और वे आगे कुछ भी न कह सके। कवि का कहना है कि राम की यह दशा देखकर लक्ष्मण का प्रचंड तेज चमक उठा और हनुमान राम के दोनों चरणों को ग्रहण कर लज्जा के मारे धरती में धंस गये तथा पुष्ट भुजाओं वाले जाम्बवान् स्थिर रह गये। साथ ही राम के इन शब्दों को सुन कर विभीषण के हृदय को गहरा आघात् लगा और वह मन ही मन अपने भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करने लगे तथा सम्पूर्ण वातावरण में एक विशेष प्रकार के मौन और घुटन का साम्राज्य व्याप्त हो गया। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी का मन विभिन्न भावों से अन्दोलित था और सभी मौन थे पर युद्ध के लिए आतुर भी थे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने नाटकीय दृश्य विधान का प्रयोग कर विभिन्न पात्रों के मानसिक द्वन्द्वों का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है और रूपक, विरोधाभास एवं स्वभावोक्ति नामक अलंकारों की योजना भी हुई है।

निज सहज रूप·········हुआ त्रस्त।(पृष्ठ ९९)

शब्दार्थ—संयत=गंभीर, स्थिर। जानकी प्राण=सीताजी के पति अर्थात् रामचन्द्र जी। दैव विधान=ईश्वरीय नियम। अधर्मरत=अधर्म के कार्यों में लगा हुआ। अपर=पराया, अन्य, दूसरा। योजित=योजना बनाना। शर निकर=बाणों का समूह। निशित=तीक्ष्ण, शान पर चढ़ाया हुआ। संसृति=संसार, सृष्टि। विजित=जिस पर विजय प्राप्त की गयी हो, पराजित। तेज पुंज=तेज का समूह। निहित=विद्यमान। पतन घातक=पतन और विनाश करने वाली। शत शुद्धि बोध=पूर्ण रूप से शुद्ध ज्ञान। क्षात्रधर्म=क्षत्रिय धर्म अर्थात् क्षत्रियों का युद्ध से पीछे न हटने का प्रण। धृत=धारण किये हुए। पूर्णाभिषेक=पूर्ण अभिषेक, राज तिलक। प्रजापतियों=राजाओं, ब्रह्मा। श्रीहत=शोभा विहीन। अंक=गोद। शशांक=चन्द्रमा। अशंक=शंका रहित, निःशंक। मंत्रपूत=मंत्रों द्वारा सिद्ध। सम्वृत=सँभालना, रोकना। क्षिप्र=शीघ्रता, तीव्रता। वार पर वार=प्रत्येक आक्रमण। वह्नि=अग्नि। वामा=नारी, शक्ति। त्रस्त=भयभीत।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि कुछ समय पश्चात् राम अपने स्वाभाविक रूप से संयत होकर कहने लगे कि मेरी समझ में यह दैवी विधान नहीं आया कि रावण अधर्म में लगा हुआ भी महाशक्ति की सहायता पा रहा है और मैं धर्म में लगा हुआ भी महाशक्ति के लिए पराया हूँ। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण ने अब तक निरीह जनता पर अत्याचार ही किये हैं और वह सीता को अन्यायपूर्वक चुरा लाया है तथा राम सत्य की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं और राम का पक्ष रावण के सदृश्य अधर्म का न होकर धर्म का पक्ष है लेकिन यह ईश्वर का विचित्र नियम है कि महाशक्ति धर्म का साथ न देकर अधर्म का साथ दे रही है और राम को सहयोग न देकर रावण की सहायतार्थ युद्धभूमि में अवतरित हुई है।

राम पुनः कहते हैं कि यह आज का युद्ध तो महाशक्ति का ही खेल रहा और मैं बार-बार अपने तीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढ़ाकर शत्रु के विनाश के लिए छोड़ता था लेकिन महाशक्ति उन्हें बीच में ही काटकर बेकार बना देती थी। राम का कहना है कि मेरे ये बाण सम्पूर्ण संसार को जीतने की सामर्थ्य रखते हैं और तेजी के समूह हैं तथा इन बाणों में सम्पूर्ण सृष्टि की सुरक्षा का दायित्व विद्यमान है। राम कह रहे है कि मेरे इन बाणों में पापों का विनाश करने वाली संस्कृति की अपार भावना भरी हुई है और ये बाण सैकड़ों क्रियाओं द्वारा पूर्ण रूप से शुद्ध किये जाने के कारण पूर्ण ज्ञानी के समतुल्य हैं तथा इन बाणों में क्षात्र धर्म पूर्ण अभिषेक धारण किए हुए है जो कि प्रजापतियों का संयम है। राम का कहना है कि मेरे ये बाण आज युद्ध-भूमि में शोभाहीन हो गये और अपना तेज खोकर खंडित हो गये। राम के कहने का अभिप्राय यह है कि अपूर्व गुणों एवं शक्ति के भंडार उनके बाण आज युद्धभूमि में प्रभावहीन सिद्ध हुए हैं।

कवि कह रहा है कि राम ने अपने साथियों को सम्बोधित कर कहा कि मैंने आज युद्धभूमि में देखा कि महाशक्ति रावण को अपनी गोद में इस प्रकार लिए हुए थी जैसे आकाश में चंद्रमा निःशंक होकर कलंक को अपने हृदय पर धारण किये रहता है और वह महाशक्ति मेरे मंत्रों से पवित्र किये हुए बाणों

को बार-बार रोक-रोककर तोड़ रही थी। राम का कहना है कि मैं बार-बार शीघ्रता से अपने लक्ष्य रावण पर प्रहार करता था लेकिन मेरे बाण लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाने के कारण रावण तक नहीं पहुँच पाते थे। राम कहते हैं कि मैं युद्ध में बानर समूह को विचलित देखकर क्रुद्ध होकर ज्यों-ज्यों युद्ध करता था ज्यों-ज्यों उस महाशक्ति के नेत्रों से आग की चिनगारियाँ निकलती थीं और इसके पश्चात् महाशक्ति टकटकी बाँधकर मेरी ओर देखने लगीं तथा उनकी दृष्टि से मेरे हाँथ बँध गये। राम का कहना है कि इस प्रकार मुझसे फिर धनुष भी न खींचा गया और मुक्त होते हुए भी मैं बँध गया तथा अपनी इस अद्‌भुत दशा को देखकर मैं भयभीत हो गया।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में राम के बाणों का महत्व स्पष्ट करते हुए कवि राम की मनोदशा का अंकन भी करता है। साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास, विरोधाभास, पुनरुक्ति और दृष्टांत नामक अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

कह हुए·········बार-बार। (पृष्ठ ९९-१००)

शब्दार्थ—भानुकुल भूषण=सूर्यवंश में श्रेष्ठ, श्री रामचन्द्र। विश्वस्त=विश्वासपूर्ण, दृढ़। आराधन=आराधना, उपासना। वरो=प्राप्त करो, वरण करो। ध्वस्त=नष्ट। महावाहिनी=विशाल सेना। भल्ल सैन्य=भालुओं की सेना। बाम पार्श्व=बाईं ओर, बांया भाग। यूथपति=सेनापति। भल्लनाथ=भालुओं के स्वामी, जाम्बवान्। लीन=मग्न। पुलकित=रोमांचित।

व्याख्या—कवि कहता है कि राम अपने साथियों के समक्ष युद्ध का वृतान्त बतलाकर क्षण भर में मौन हो गये और उन्हें मौन देखकर जाम्बवान् ने विश्वास पूर्ण स्वरों में उनसे कहा कि हे रघुवर; मैं आपको इस प्रकार विचलित होने का कोई कारण नहीं देखता। जाम्बवान् श्री राम से कह रहे हैं कि हे पुरुषों में सिंह राम, आप भी इस महाशक्ति को धारण कीजिए और उसकी दृढ़तापूर्वक उपासना कर उसे अपने वशीभूत कर लीजिए। जाम्बवान् के कहने का अभिप्राय यह है कि राम को भी रावण के सदृश्य महाशक्ति का

सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये और जिस प्रकार रावण ने महाशक्ति की उपासना कर उसे अपने अनुकूल बना लिया है उसी प्रकार राम को भी अब महाशक्ति की आराधना कर उसे अपने पक्ष में कर लेना चाहिये तथा उपासना का उत्तर अपनी दृढ़ उपासना से देते हुए अपनी दृढ़ शक्ति से पुनः रावण से युद्ध करना चाहिये।

जाम्बवान् ने राम से कहा कि यदि रावण अशुद्ध आचरण वाला होकर भी महाशक्ति की सहायता से आपको भयभीत कर सका है तो यह भी निश्चय है कि महाशक्ति की उपासना कर आप रावण को नष्ट कर देंगे अतः आपको अब महाशक्ति की मौलिक कल्पना कर उसका पूजन करना चाहिए। कहने का अभिप्राय यह है कि रावण अत्याचारी, पापी और दूषित चरित्र का व्यक्ति होकर भी यदि महाशक्ति की पूजा कर उसका सहयोग प्राप्त कर सका तो फिर राम तो उसके समान अनाचारी या अलाचारी न होकर सात्विक एवं सद् आचरण वाले हैं अतः उनके लिए महाशक्ति की उपासना कर महाशक्ति के सहयोग से विजय श्री प्राप्त करना सरल होगा। साथ ही जाम्बवान् का यह भी कहना है कि राम को चाहिए कि वे महाशक्ति के मौलिक स्वरूप का मौलिक ढंग से पूजन करें।

जाम्बवान् श्रीराम से कह रहे हैं कि हे रघुनन्दन ; जब तक आपको अपनी उक्त आराधना से सिद्धि न प्राप्त हो जाय तब तक आप युद्ध-क्षेत्र में जाना बन्द रखें और आपकी अनुपस्थिति में लक्ष्मण इस विशाल सेना के सेनापति होंगे जो कि सेना के मध्य भाग में रहेंगे तथा श्वेत शरीर वाले अंगद सेना के दक्षिण भाग में सहायक के रूप में होंगे। जाम्बवान् का कहना है कि मैं भालुओं की सेना का संचालन करूंगा और सेना के बायें भाग में हनुमान होंगे तथा नील, नल और अन्य छोटे-छोटे बानरगण उनके प्रधान सैनिक होंगे। जाम्बवान् कहते हैं कि यदि कहीं भय की बात होगी तो सुग्रीव, विभीषण और अन्य सेनानायक यथा समय सेना की रक्षा के लिए पहुँच जायेंगे।

कवि कह रहा है कि जाम्बवान् का यह प्रस्ताव सुनकर सारी सभा हर्ष

से फूल उठी और राम ने वृद्ध जाम्बवान् के समक्ष अपना मस्तक झुकाकर कहा कि हे भल्लनाथ ; आपका यह निश्चय उत्तम है। कवि का कहना है कि इतना कहकर राम पुनः अपनी विचारधारा में मग्न हो गये और सब लोगों की दृष्टि उस समय राम की ओर ही लगी हुई थी तथा भविष्य की उज्जवल आशा से सभी बार-बार रोमांचित हो रहे थे। कहने का अभिप्राय यह है कि सबको अब यह विश्वास हो गया था कि इस युद्ध में उन्हें निस्संदेह सफलता प्राप्त होगी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने जाम्बवान् को एक व्यवहार कुशल परामर्शदाता के रूप में अंकित किया है और राम ने इस उज्जवल रूप की झाँकी भी अंकित की है कि वह अपने से बड़ों का पूर्ण सम्मान करते थे। साथ ही विचारक महाशक्ति की उपासना के सम्बन्ध में कवि निराला के दृष्टिकोण को बंगीय संस्कृति का प्रभाव मानते हैं और 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर' में 'विषस्य विषमौषधम्' की उक्ति की चरितार्थता सिद्ध करते हुए कहते हैं कि 'अंग्रेजी की Diamond cuts a Diamond' उक्ति भी इसी भावना की परिचायक है। इसी प्रकार इन पंक्तियों में प्रसंगानुकूल सरल एवं व्यास शैली का प्रयोग हुआ है और यहाँ वीर एवं शांतरस का सुन्दर सम्मिलन भी है तथा अनुप्रास, रूपक, सम एवं तुल्योगिता अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

कुछ समय अनन्तर............स्मित आनन। (पृष्ठ १००-१०१)

शब्दार्थ—इन्दीवर निन्दित = कमल को लज्जित करने वाले। लोचन = नेत्र। निष्पलक = अपलक, टकटकी लगाकर, निर्निमेष। मज्जित = मग्न, डूबा हुआ। आवेग रहित = गम्भीर, शांत। विश्वास स्थित = पूर्ण विश्वास से भर कर। मातः = माता, शक्ति, दुर्गा। आश्रित = शरण में। विद्ध = बिंधा हुआ। महिषासुर राक्षस = एक राक्षस का नाम। खल = दुष्ट। मर्दित = विनष्ट, मारा गया। जनरजन = जन-जन अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को आनन्द प्रदान करने वाले। तल = नीचे। गर्जित = गर्जता हुआ। इंगित = संकेत, इशारा। अभिनन्दित = अभिनन्दन करूँगा, पूजित। स्तब्ध = शान्त, मौन। छवि में =

महाशक्ति के स्वरूप की कल्पना में। निमग्न=डूबे हुए। ज्योतिर्दल=प्रकाश की पंखुरियाँ। ध्यान मग्न=विचारों में लीन, ध्यान में मग्न। वीरासन=एक प्रकार का विशेष आसन। स्मित आनन=मुस्कराता हुआ मुख, प्रसन्न मुख।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि कुछ समय पश्चात् कमल को लज्जित करने वाले राम के नेत्र खुल गये पर उनका हृदय अभी भी विचारों की गहनता में अपलक रूप से लीन था। कुछ क्षण पश्चात् राम ने आवेग रहित और विश्वास से पूर्ण स्वरों में कहा कि हे माता ; तुम दस भुजाओं को धारण करनेवाली हो और तुम्हीं सम्पूर्ण विश्व की ज्योति हो अर्थात् तुम्हीं से सम्पूर्ण संसार को प्रकाश प्राप्त होता है तथा मैं तुम्हारी शरण में हूँ। श्री रामचन्द्र महाशक्ति को सम्बोधित कर कह रहे हैं कि तुम्हारी शक्ति से महिषासुर राक्षस भी नष्ट हो गया और मनुष्य मात्र को आनन्दित करनेवाले तुम्हारे चरण रूपी कमलों के नीचे भयंकर गर्जना करनेवाला सिंह धन्य है।

राम का कहना है कि हे माता ; मैं तुम्हारा संकेत समझ गया और यह सिंह मेरा प्रतीक है अर्थात् जिस भाव से तुम्हारा वाहन यह सिंह तुम्हारी आराधना करता है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी आराधना करूँगा तथा ऐसा करने से ही मैं महिषासुर के सदृश्य दुष्ट रावण का दमन करने में सफल हो सकूँगा। कवि कह रहा है कि इतना कहने के श्चात् राम कुछ समय तक महाशक्ति की कल्पित मूर्ति के ध्यान में मग्न रहे और फिर उन्होंने प्रकाश से पूर्ण कमल की पंखुरियों के समान ध्यान-मग्न अपनी पलकें खोलीं। कवि का कहना है कि राम के मंत्री व सेनापति वीरासन से बैठे व्याकुल हृदय से राम के मुस्कराते हुए मुखमण्डल को निहार रहे थे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने 'इन्दीवर निन्दित लोचन' कहकर राम के अनिद्य सौन्दर्य की ओर संकेत किया है और राम यहाँ महाशक्ति की उपासना भी रावण के समान श्यामा के रूप में न कर महिषासुर मर्दिनी एवं सिंहवाहिनी दुर्गा के रूप में करने का निश्चय करते हैं। वास्तव में यह उनकी मौलिक कल्पना ही है जिसकी इच्छा जाम्बवान् ने पहले ही प्रकट की थी।

साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास, रूपक, प्रतीप और स्वाभाविक नामक अलंकारों की योजना भी हुई है।

बोले भावस्थ…………हो रहा खर्व। (पृष्ठ १०१)

शब्दार्थ—भावस्थ = भाव में लीन। चन्द्रमुख निन्दित = अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा को लज्जित करनेवाले अर्थात् चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर। पावन = पवित्र, सात्विक। स्वर मेघ मन्द्र = मेग या बादल की भाँति धीर गम्भीर वाणी में। भूधर = पर्वत। शोभित शत हरित गुल्म तृण से = सैकड़ों हरी लताओं और विविध प्रकार की घासों से शोभायमान। श्यामला = नीला गाढ़ा, गहरा। चरण प्रान्त पर = पदप्रदेश पर, चरणों के नीचे। दशादिक = दश दिशाएँ। अम्बर = आकाश। अर्चित = पूजित। शशि शेखर = भगवान शंकर। महाभाव मंगल = मंगल का विधायक महान दृश्य। लख = देखकर। असुर = राक्षस। खर्व = तुच्छ, लघु।

व्याख्या—कवि कहता है कि चन्द्रमुख को अपनी मुख सुषमा से लज्जित करनेवाले राम भाव में मग्न अपने प्राणों में सात्विक भाव का रोमांच अनुभव करते हुए मेघ के समान धीर गम्भीर वाणी में बोले कि हे बन्धुवर देखो, समक्ष ही वह पर्वत स्थित है, जो सैकड़ों हरे-भरे कुंजों से शोभित, श्यामल एवं सुन्दर है और वह पार्वती का ही काल्पनिक रूप है तथा मकरन्द बिन्दु के सदृश्य मधुर एवं शीतलता प्रदायक तथा प्राणवान है। साथ हा उस पर्वतरूपी पार्वती के चरणों के नीचे जो गर्जन करता रहता है, वह सागर न होकर सिंह है। जो महाशक्ति के चरणों के नीचे खड़ा महिषासुर राक्षस को देख गर्जन कर रहा है।

महाशक्ति के रूप की कल्पना करते हुए राम कह रहे हैं कि सम्पूर्ण दशों दिशाएं इस पार्वती के दस हाथ हैं और उनके ऊपर देखो तो आकाश में दिगंबर वेशधारी, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले शंकर शोभायमान हैं। राम कहते हैं कि उनके मंगलकारी भाव को देखकर गर्व उनके चरणों के नीचे दबा जा रहा है और मनुष्य के मन की राक्षसी वृत्तियों का विनाश हो रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि शिवपार्वती के दर्शन मात्र से मानव हृदय की समस्त

कुप्रवृत्तियाँ और कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं तथा आत्मा सात्विकता के पवित्र प्रकाश में निमग्न हो जाती है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में शिव-पार्वती के चित्रण में कवि निराला की कल्पना का विराट एवं उदात्त स्वरूप दीख पड़ता है और भक्तिभाव एवं राष्ट्र प्रेम का अनूठा समन्वय भी दृष्टिगोचर होता है। साथ ही कवि की अलंकृत बिम्ब योजना भी सराहनीय है और रूपक, उपमा, यमक, श्लेष, स्वाभावोक्ति, मीलित, प्रतीप, व्यतिरेक एवं मानवीकरण आदि अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—निरालाजी के सदृश्य कई हिन्दी कवियों ने महाशक्ति-दुर्गा का चित्रण किया है और यहाँ हम तुलनात्मक अध्ययन के लिए विद्यापति का एक पद उद्धृत कर रहे हैं—

> **जय जय भैरवि असुर भयाउनि पशुपति भामिनि माया।**
> **सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।**
> **वासर रैनि सवासन सोभित चरन चन्द्रमनि चूड़ा।**
> **कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल कतओक उगलि कैल कूड़ा।**
> **सामर बरन, नयन अनुरंजित जलद जोग फुल कोका।**
> **कट कट विकट ओठ पुर पाउरि लिधुर फेन उठ फोका।**
> **घन घन घनए घुघरू कत बाजए हन हन कर तुअ काता।**
> **विद्यापति कवि तुअ पद सेवक पुत्र बिसरू जनि माता।**

फिर मधुर दृष्टि………………**सोचते हुए विजय।** (पृष्ठ १०१)

शब्दार्थ—प्रिय कपि = हनुमानजी से अभिप्राय है। प्रियतर = स्नेहपूर्ण। अंतर = हृदय। इन्दीवर = कमल का फूल। देवीदह = एक तालाब जिसमें कमल के फूल अधिक होते हैं। उष:काल = प्रभात का समय। सत्त्वर = शीघ्र, तुरन्त। अवगत = ज्ञात, मालूम, परिचित। दूरत्त्व = दूर। पद रज = पैरों की धूल, चरण धूलि। सदय = सहृदयतापूर्वक।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि इसके उपरान्त राम ने अपनी मधुर दृष्टि से हनुमान को अपनी ओर आकृष्ट करते हुए अत्यंत स्नेहपूर्ण स्वर से हनुमान

का हृदय सींचते हुए कहा कि हे हनुमान; हमें एक सौ आठ कमल के फूल चाहिये। राम ने हनुमान से कहा कि कम से कम एक सौ आठ कमल के फूल तो होने ही चाहिये और यदि तुम इनसे अधिक ला सको तो और भी अच्छा है अतः तुम प्रभात होते ही देवीदह सरोवर की ओर तुरन्त प्रस्थान करो तथा वहाँ से कमल के फूल तोड़कर लौटने के पश्चात् युद्ध करो।

कवि का कहना है कि राम की इच्छा जानकर हनुमान ने जाम्बवान् से देवीदह का मार्ग पूछा और उस स्थान की दूरी जानकर उन्होंने राम के चरणों की पवित्र धूलि माथे से लगाकर प्रसन्न मन से देवीदह की ओर प्रस्थान किया। कवि कह रहा है कि विश्राम करनें का समय जानकर राम ने सबको विदा किया और सभी लोग सहृदयतापूर्वक मन ही मन राम की विजय की कामना करते हुए चले गये।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में राम की हनुमान के प्रति पूर्ण आस्था तथा हनुमान की स्वामिभक्ति का सुन्दर चित्रण किया है। साथ ही इन पंक्तियों में स्वभावोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है और कवि ने अंतिम पंक्ति में नाटकीय शैली द्वारा फल प्राप्ति का पूर्वाभास भी दे दिया है तथा अब सभी को यह विश्वास भी हो जाता है कि राम की विजय निश्चित है।

निशि हुई विगत..............समाराधन। (पृष्ठ १०१-१०२)

शब्दार्थ—निशि = रात्रि । विगत = बीत गयी, समाप्त हुई । नभ = आकाश । शरासन = धनुष । तूणीर = तरकश । स्कन्ध = कंधा । निविड़ जटा दृढ़ = घनी जटाओं की दृढ़ता से साथ बाँधा गया। सुधी = ज्ञानी । गुण ग्राम = गुणों का समूह । इष्ट = अभिलषित, इच्छित । गहन = गम्भीर । समाधान = आराधना, पूजा, उपासना ।

व्याख्या—कवि कहता है कि अमावस्या की वह अंधकारपूर्ण रात्रि बीत गयी अर्थात् राम के मन की सम्पूर्ण निराशा और क्लांति समाप्त हुई तथा आकाश के विशाल मस्तक पर सूर्य की पहली सुनहली किरण दमकने लगी जो ऐसी जान पड़ती थी मानो राम के नेत्रों में से उनकी महिमा रूपी किरण

निकलकर चारों ओर फैल रही हो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि यह सूर्य की पहली किरण न होकर राम की महिमा की सुनहली किरण थी। कवि कह रहा है कि आज राम के हाथ में धनुष और कंधे पर तरकश नहीं हैं और न आज उनके सिर पर सघन जटाओं का मुकुट ही बँधा हुआ है अर्थात् राम ने आज योद्धा का वीर वेश धारण नहीं किया।

कवि का कहना है कि रावण की सेना के साथ राम की सेना का भयंकर युद्ध होने के कारण महाशक्ति की आराधना में लीन राम के चारों ओर युद्ध का अपार कोलाहल सुनाई पड़ रहा था लेकिन उस भयंकर कोलाहल को सुनकर भी राम का मन विचलित नहीं होता था। कवि कह रहा है कि ज्ञानी राम महाशक्ति का ध्यान करते हुए निश्चल रूप में विराजमान हैं और पूजा के उपरान्त दस भुजाओं वाली दुर्गा के नाम का जप करते हैं तथा मन ही मन उनके असंख्य गुणों का मनन करते हैं। कवि का कहना है कि इस प्रकार दुर्गा के चिंतन-मनन में पूजा का वह दिन बीत गया और राम का मन अपनी इष्ट देवी महाशक्ति के चरणों में एकाग्र ही रहा तथा उनकी यह साधना समय के साथ गहन होती चली गयी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में [illegible] सापेक्ष प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है और बिम्ब एवं चित्रमयी-शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। साथ ही यमक, मानवीकरण, स्वभावोक्ति और उल्लेख नामक अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

तुलनात्मक टिप्पणी—श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' के आशा सर्ग के प्रारम्भ में इसी प्रकार के प्रसंग को अंकित करते हुए कहा है—

उषा सुनहले तीर बरसती जय लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई॥

क्रम-क्रम से हुए·················**का प्रिय इन्दीवर।** (पृष्ठ १०२)

शब्दार्थ—क्रम-क्रम से = एक-एक कर, यथाक्रम, उत्तरोत्तर। चक्र से चक्र = एक से दूसरे चक्र तक। ऊर्ध्व = ऊपर की ओर। निरलस = आलस्य-

हीन। पुरश्चरण = मंत्र का जप या स्तोत्र पाठ, किसी अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया जाने वाला जप पाठ। आज्ञा = एक चक्र का नाम, योग-साधना का एक सोपान। समाहित = प्रतिष्ठित। महाकर्षण = महान आकर्षण। संचित = एकत्रित। त्रिकुटी = दोनों भौंहों और नासिका के ऊपर का स्थान। द्विदल = दो दल। निष्पन्द = निश्चल, अकंपित। अतिक्रम = पार। समारब्ध = प्रारब्ध कर्म, संस्कार। सहस्त्रार = सहस्त्र अर्थात् हजार पंखुड़ियों वाला कमल। द्विप्रहर = दो पहर। साकार = प्रत्यक्ष, सशरीर।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि इस प्रकार महाशक्ति की आराधना करते हुए राम को एक-एक कर पाँच दिन बीत गये। कवि का कहना है कि राम पूरी एक माला फेरकर कमल का एक फूल चढ़ाते थे और इस प्रकार कष्ट-साध्य उपासना के शिखर पर प्रत्येक सोपान से चढ़ते हुए वह चक्र से चक्र पार करते हुए अपना पुरश्चरण पूर्ण कर रहे थे तथा उनकी यह पूजा आलस्य रहित भाव से लगातार चल रही थी। कवि कहता है कि राम ऊर्ध्व से उर्ध्वस्त तक अपनी कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे थे और जब पुरश्चरण का छठवाँ दिन आया तब वह आज्ञाचक्र तक पहुंच चुके थे अर्थात् प्रथम चक्र 'मूलाधार' से अंतिम चक्र 'आज्ञा' तक उनकी कुंडलिनी चढ़ चुकी थी।

कवि का कहना है कि राम का मन पूर्णतः महाशक्ति की आराधना में ही तल्लीन रहा और प्रत्येक जाप के प्रभाव से उनकी साधना में महान आकर्षण उत्पन्न होता चला गया तथा वह अपनी त्रिकुटी का सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित कर महाशक्ति के कमल की दो पँखुड़ियों के सदृश्य सुन्दर चरणों की उपासना में मग्न रहे। साथ ही उनके मुख से निकले जप के स्वर को सुन-सुनकर आकाश थर-थर काँपने लगा और राम दो दिन तक एक ही आसन पर निश्चल बैठे हुए महाशक्ति के नाम का जप करते तथा कमल पुष्प चढ़ाते रहे। इस प्रकार राम की तप साधना का जब आठवाँ दिन आया तब उनका ध्यानावस्थित मन उत्तरोत्तर ऊपर ब्रह्माण्ड तक जा पहुँचा और वह ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के लोकों को भी पार करने में सफल रहा तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड उनके आधीन हो

गया। कवि का कहना है कि राम की इस कठोर तपस्या को देखकर सभी देवता आश्चर्यचकित रह गये और इस कठोर तपस्या द्वारा राम के संस्कार जल कर नष्ट हो गये। कहने का अभिप्राय यह है कि राम की इस कठोर तपस्या के प्रभाव से उनके मन पर पड़े हुए सभी संस्कार विनष्ट हो गये और उनका मन सम्पूर्ण रूप से अनासक्त एवं निर्मल हो गया।

कवि कह रहा है कि अब तक राम एक सौ सात कमल महाशक्ति के चरणों पर चढ़ा चुके थे तथा केवल एक कमल शेष रह गया था और राम का मन साधना के अंतिम सोपान अर्थात् सहस्त्रार कमल चक्र रूपी दुर्ग को पार करने के लिए आगे की ओर देख रहा था। कहने का अभिप्राय यह है कि राम साधना के अंतिम सोपान पर पहुँच गये थे और इसे पार करने वाले ही थे। कवि का कहना है कि यह रात्रि का दूसरा पहर था और रात्रि के उस अंधकार में महाशक्ति छिपकर वहाँ प्रकट हुई तथा मन ही मन हँसकर चुपचाप राम की पूजा का वह अंतिम प्रिय कमल का फूल चुरा कर ले गयी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में वैष्णव भक्ति और हठयोग का समन्वित वर्णन किया गया है तथा निरालाजी ने राम की शक्ति उपासना को हठयोगियों की समाधि का रूप दिया है। विचारक कहते भी हैं 'इस रचना में उन्होंने पूजा की आनुष्ठानिक विधियों का समुचित रूप में प्रयोग किया है। दुर्गा पूजा प्रतिपदा से लेकर अष्टमी तक चलती है। दुर्गाष्टमी को इस पूजा का समाहार होता है। साधक किसी विशेष उद्देश्य के लिए इस दुर्गानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। माला का फेरना निरंतर चलता रहता है। ऊँ ह्रीं क्लीं······शू फट्' आदि तांत्रिक मंत्रों का उच्चारण किया जाता है। जब एक माला पूरी हो जाती है तब एक फूल देवी के चरणों में चढ़ाया जाता है। इस प्रकार एक सौ आठ पुष्पों को चढ़ाते हैं। साथ ही इन पंक्तियों में कवि ने राम की शक्ति उपासना को हठयोगियों की समाधि का रूप दिया है और 'हठयोगियों के अनुसार अधोमुखी कुंडलिनी उर्ध्वमुखी होकर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। वह मानव शरीर के विभिन्न स्थानों में स्थित चक्रों को पार करती हुई क्रमशः ऊपर बढ़ती जाती है और अन्त में सहस्त्रार कमल नामक चक्र में पहुँच जाती

है। वहीं चक्रों की साधना इसका मूलाधार है। अंतिम चक्र में पहुँचने पर योगी की तपस्या पूर्ण हो जाती है, और वह ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। कुंडलिनी के इस मार्ग में विभिन्न 'लोकों की कल्पना की गई है—' इसी प्रकार इन पंक्तियों में महाशक्ति का छिपकर हँसते हुए अंतिम कमल के फूल का उठा लेना भी नाटकीय है और पुनरुक्ति, श्लेष, उल्लेख एवं व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग भी दर्शनीय है।

यह अन्तिम जप··············हो न सका। (पृष्ठ १०२-१०३)

शब्दार्थ—चरणयुगल=दोनों चरण। लगा न हाथ=न पा सके। सहसा =अचानक, एकाएक। भूमि=स्तर, अवस्था। विमल=निर्मल, स्वच्छ। रिक्त=खाली। असिद्धि=साधना भंग होना। द्वय=दोनों। साधन=उपाय। शोध=खोज। उद्धार=मुक्ति, छुटकारा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राम ने यह सोचते हुए कहा कि अब यह अंतिम जाप है और महाशक्ति के दोनों चरणों पर अपना ध्यान लगाया तथा नील कमल लेने के लिए अपना हाथ बढ़ाया परन्तु उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा तथा राम का स्थिर मन अचानक विचलित हो उठा। कवि का कहना है कि राम का ध्यान भंग हुआ और उन्होंने अपनी पवित्र पलकें खोलीं तथा देखा कि जहाँ पर फूल रखा था, वह स्थान खाली है। कवि कहता है कि यह सोचकर कि यह जप पूर्ण होने का समय है और ऐसी दशा में आसन छोड़ने से जप भंग हो जाएगा, राम के दोनों नेत्रों में अश्रु भर आये।

कवि का कहना है कि राम अब मन ही मन कहने लगे कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जो हमेशा विरोधों का सामना करता आया है और उन समस्त साधकों को भी धिक्कार है जिनकी मैं हमेशा खोज करता रहा हूँ। राम के कथन का अभिप्राय यह है कि जीवन साधकों की खोज में ही बीत रहा है और सिद्धि अब तक प्राप्त नहीं हुई। राम ने पुनः कहा कि हे जानकी मुझे बहुत दुःख है कि मैं तुम्हारा उद्धार भी न कर सका और तुम्हें रावण की कैद से मुक्त कराने में असफल रहा। इस प्रकार राम अपने जीवन को यहाँ विरोध, अभाव एवं असफलता का पुंज ही मानते हैं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में राम की आत्मग्लानि का चिह्न उनके चरित्र की सात्विकता का द्योतक है और अधिकांश समीक्षक 'धिक् जीवन को······ क्रिया शोध' नामक पंक्तियों में कवि निराला के व्यक्तित्त्व की झलक भी देखते हैं।' साथ ही इस काव्यांश में स्मरण, विषादन, व्याघात एवं वितर्क नामक अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

वह एक और मन············एक नयन। (पृष्ठ १०३)

शब्दार्थ—दैन्य = दीनता। मायावरण = माया का आवरण या परदा। विद्युत गति = बिजली के समान तीव्रता से। हतचेतन = चेतना रहित। सजग = सतर्क, सावधान, होशियार। प्रमन = प्रसन्न। मन्द्रित = मन्द या धीमे स्वर में गरजते हुए। सदा = हमेशा। राजीव नयन = कमल नयन। पुरश्चरण = किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला पूजन।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि जब महाशक्ति ने छिपकर हँसते हुए पूजा के अंतिम नील कमल को चुरा लिया और राम को उक्त कमल का फूल नहीं दिखाई दिया तब राम पहले तो हताश हो गये लेकिन उनके इस हतोत्साहित मन के अतिरिक्त उनका एक और भी मन था। कवि का कहना है कि राम का यह मन संकल्पवृत्ति प्रधान दृढ़ निश्चयी मन था जिसने कभी पराजय नहीं मानी थी और वह संघर्ष काल में कभी दीन और विनत नहीं हुआ था। कहने का अभिप्राय यह है कि उस अंतिम कमल के फूल को न देखकर राम पहले तो हताश हुए पर तुरंत ही उनके दृढ़ निश्चयी मन ने उन्हें उत्तेजित कर इस कठिन समस्या का समाधान ढूँढने के लिए प्रवृत्त किया। कवि कहता है कि ज्योंही राम में आत्म विश्वास की भावना जागृत हुई त्योंही उनकी चेतना पर पड़े हुए माया के समस्त आवरण हटने लगे और उनके मन ने अब बुद्धि का आश्रय ग्रहण किया।

कवि का कहना है कि जिस प्रकार बादलों में बिजली का प्रकाश कौंधता है इसी प्रकार राम को एक उपाय सूझ पड़ा और उन्हें अपने बचपन की घटनाओं की स्मृति होने लगी तथा उनकी नूतन भावनाओं ने मन की बढ़ती हुई व्याकुलता को शान्त कर दिया। इस प्रकार बादलों के से मन्द स्वर में

राम स्वतः कह उठे कि यह उपाय है जिससे कि मैं खोए हुए कमल के फूल का अभाव पूर्ण कर लूँगा। राम कहते हैं कि माता मुझे बचपन में हमेशा 'कमल नयन' कह कर पुकारती थीं और वे दो नील कमल अभी मेरे पास शेष हैं अतः मैं अब माँ शक्ति के चरणों में अपना एक नेत्र अर्पित कर यह पुरश्चरण पूर्ण करता हूँ।

टिप्पणी—इस काव्यांश में दार्शनिकता एवं मनोवैज्ञानिकता और हृदय पक्ष एवं बुद्धि पक्ष के अनूठे समन्वय का परिचय मिलता है। साथ ही इन पंक्तियों में स्मरण, परिकरांकुर, उपमा, रूपक, श्लेष और व्यतिरेक अलंकारों की योजना भी हुई है।

कहकर देखा···············**हस्त थाम। (पृष्ठ १०३)**

शब्दार्थ—तूणीर=तरकश। ब्रह्मशर=ब्रह्म बाण अर्थात् ब्रह्ममंत्रों से अभिषिक्त बाण। हस्त=हाथ। लक लक करता=जगमगाता हुआ, चमचमाता हुआ। महाफलक=विशाल और तेज धारवाला बाण। बामकर=बाएँ हाथ में। दक्षिण=दाहिना। लोचन=नेत्र। उद्यत=तैयार, प्रस्तुत। सुमन= त्वरित=शीघ्र, तुरंत। उदय=प्रकट होना।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राम ने उक्त वचन कहने के पश्चात् अपने तरकश की ओर देखा, जिसमें ब्रह्मबाण दिखाई दे रहा था। कवि का कहना है कि राम ने जगमगाता हुआ वह ब्रह्मबाण अपने बाएँ हाथ से पकड़ा और दाहिने हाथ से अपनी दाहिनी आँख को पकड़ कर उसे कमल के फूल के स्थान पर हर्षपूर्वक अर्पित करने को तैयार हो गए। कवि कहता है कि जब राम ने अपना दाहिना नेत्र निकालकर उसे कमल के फूल के स्थान पर महाशक्ति को अर्पित करने का संकल्प किया तब उनके इस संकल्प की दृढ़ता देखकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड काँप उठा और महाशक्ति भी तुरन्तु प्रकट हो गयीं। कवि कह रहा है कि महाशक्ति ने राम से यह कहा कि हे धर्मवान साधक राम; तुम्हारा कल्याण हो और धर्म धन से धन्य तुम निश्चय ही पवित्र हो और उन्होंने शीघ्र ही राम का वह हाथ पकड़ लिया जो उन्होंने दाहिना नेत्र निकालने के लिए बढ़ाया था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाशक्ति के स्वाभाविक मातृ सुलभ रूप एवं औदार्य का अंकन हुआ है और वीप्सा एवं अनुप्रास अलंकार की स्वाभाविक योजना के भी दर्शन होते हैं।

देखा राम ने........हुई लीन। (पृष्ठ १०३-१०४)

शब्दार्थ—भास्वर=तेजस्वी, जगमगाती हुई। वाम पद=बायाँ पैर। असुर स्कन्द=राक्षस का कंधा। हरि=शेर। हस्तदश=दस हाथ या भुजाएँ। मन्द स्मित=मन्द मुस्कान। श्री=शोभा। दक्षिण=दाहिने। रण रंग राग=युद्ध की साज सज्जा, युद्ध के राग से रंजित। पद पद्मों=चरण कमलों। प्रणत=झुके हुए। मन्द स्वर बन्दन=मन्द या धीमे स्वरों में प्रार्थना करते हुए। पुरुषोत्तम नवीन=नये विश्वास और दृढ़ संकल्प से युक्त राम। वदन=मुख। लीन=अंतर्हित, समायी हुई।

व्याख्या—कवि का कहना है कि राम ने जब मस्तक उठाकर ऊपर की ओर देखा तो उन्हें अपने सामने साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के दर्शन हुए। कवि कह रहा है कि महाशक्ति का मुख तेज से जगमगा रहा था और देवी दुर्गा अपना बायाँ चरण. असुर के कंधे पर रखे हुए थीं तथा उनका दाहिना चरण वाहन सिंह की पीठ पर रखा हुआ था। साथ ही महाशक्ति का रूप अत्यंत प्रकाशवान था और उनके दसों हाथ में विविध प्रकार के अस्त्र सुशोभित थे तथा मुख पर वह मन्द मुस्कान थी जिसे देखकर संसार की शोभा भी लज्जित हो जाती थी। कवि का कहना है कि महाशक्ति के दक्षिण भाग में लक्ष्मी, बाएँ भाग में सरस्वती, दक्षिण में गणेश और बाएँ भाग में युद्ध की साज सज्जा से सज्जित कार्तिकेय तथा मस्तक पर शंकर विराजमान थे।

कवि कह रहा है कि महाशक्ति दुर्गा के दर्शन कर राम श्रद्धा भाव से गद्‌गद् होते हुए मंद स्वर में उनकी वन्दना कर सहज ही उनके चरण कमलों की ओर झुक गये। कवि का कहना है कि राम की श्रद्धायुक्त वन्दना सुनकर महाशक्ति प्रसन्न हो उठीं और उन्होंने राम को यह आशीर्वाद दिया कि हे नवीन विश्वास और दृढ़ संकल्प से युक्त पुरुषोत्तम राम युद्ध में तुम्हारी विजय

अवश्य होगी तथा यह आशीर्वाद देने के पश्चात् महाशक्ति राम के मुख में समा गयीं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाशक्ति के सहज मातृ सुलभ रूप और स्वाभाविक औदार्य का चित्रण हुआ है। साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कथानक सुखान्त ही रहा है और चित्रण की विराटता तथा पावनता आदि विशेषताएँ भी दर्शनीय हैं। इन पंक्तियों में वीप्सा, अनुप्रास, स्वाभावोक्ति और मीलित आदि अलंकारों का सराहनीय प्रयोग भी हुआ है।

समीक्षा—विचारक काव्यकला की दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' को हिन्दी काव्य साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों में स्थान प्रदान करते हैं और डॉ० प्रतिभा कृष्णबल ने अपने शोध प्रबंध 'छायावाद का काव्य शिल्प' में यही कहा है 'अभिव्यंजना कौशल की दृष्टि से इस कविता की चरम सिद्धि विराट् चित्रों के ओजस्वी अंकन में है। विराट् चित्रांकन के लिए निराला ने विविध कवित्त्वपूर्ण साधनों का आश्रय लिया है।.........विराट् चित्रों के अंकन के साथ ही सुकुमार एवं मधुर भाव-व्यंजना द्वारा निराला ने अपनी इस विशिष्ट कला की एकांगिता का निराकरण कर कोमल और मधुर, ओजस्वी और सुकुमार दो विरोधी पक्षों के चित्रण की अनुपम शक्तियों का परिचय दिया है—ह्रस्व स्वरों तथा अल्पप्राण व्यंजनों की सुकुमार शब्द मैत्रियों तथा मधुर कोमल शृंगारिक प्रतीकों द्वारा सीता स्वयंवर तथा जनक वाटिका प्रसंग की सुखद स्मृति का अंकन भी उतना ही मधुर है जितना की विराट् चित्रों का अंकन ओजस्वी एवं महाप्राण है। संक्षेप में, राम की शक्ति पूजा निराला की महा-काव्यकार प्रतिभा एवं उदात्त कला की चरम उपलब्धि है

४२—नर्गिस (पृष्ठ १०७-१०८)

संदर्भ—कवि निराला के 'नर्गिस' नामक कविता में 'नर्गिस' नामक एक फूल का सुन्दर भावपूर्ण वर्णन किया है।

बीत चुका.........तरल लाल। (पृष्ठ १०७)

शब्दार्थ—शीत = ठंड। दीर्घतर = बड़े से बड़ा। तारक प्रदीप कर =

अनेक तीव्र किरणों रूपी हाथों वाला सूर्य । रव = ध्वनि, आवाज, शोर गुल । विहगों = पक्षियों । नीड़ों = घोसलों । शाश्वत = अमर ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि ठंड का समय बीत गया और बड़े से बड़े दिन का वैभव छः गया अर्थात् ठंड की ऋतु बीत गयी और दिन पुनः बड़े होने लगे । कवि कहता है कि अनेक किरणों रूपी हाथों वाला सूर्य पश्चिम में अस्त हो गया और कोमल एवं शान्त दृष्टि वाली संध्या मंद-मंद गति से प्रिय की समाधि ओर बढ़ रही है । कहने का अभिप्राय यह है कि जिस दिशा में सूर्य अस्त हुआ है उसी दिशा में संध्या भी बढ़ रही है । कवि का कहना है कि अब पक्षियों के घोंसलों से सुनाई देने वाला शोरगुक बंद हो गया है और जिस प्रकार अमर सत्य ही स्पष्ट रूप से सुनाई देता है उसी प्रकार गंगानदी का स्वर सुनाई दे रहा है । कवि कहता है कि साथ ही साथ बीते हुए लम्बे समय का गौरव प्रवाहित हो रहा है और लहरें झूम-झूमकर ताल देती सी जान पड़ती हैं ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सांध्यकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है ।

चैत्र का है·········तन खींचकर । (पृष्ठ १०७-१०८)

शब्दार्थ—गगन = आकाश । ज्योत्स्ना = पूर्णिमा की चाँदनी । नंदन = इंद्रलोक का एक बगीचा । धरा = धरती, पृथ्वी । नैश = रात्रि । उपवन = बगीचा । सुरम्य = सुन्दर । जाह्नवी = गंगा नदी । करार = कगार, तट । महाम्बर = महाकाश । दिक्कुमारियाँ = दिशारूपी कुमारियाँ ।

व्याख्या—कवि का कहना है कि आज चैत्र माह का कृष्ण पक्ष है और आकाश में चाँदनी को सजाये हुए तीज का चन्द्रमा उदय हो रहा है । कवि कहता है कि ऐसी दशा में धरती को सुनसान समझकर देवलोक की एक अप्सरा पृथ्वी पर भयपूर्वक गंगा स्नान करने के लिए उतरी । यहाँ अप्सरा के भयपूर्वक होने का कारण यह है कि वह अप्सरा देवलोक में रहती थी और उसे धरती पर गंगा स्नान के लिए उतरते समय यह डर हो रहा था कि कहीं वह पहचान न ली जाय । कवि कह रहा है कि गंगा नदी के किनारे

पर सुन्दर बगीचा है और मैं वहाँ मौन बैठे हुए संसार की सुन्दरता देखता हूँ। कवि का कहना है कि गंगा के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे किनारे हैं और पूर्णिमा के चन्द्रमा की छवि आकाश एवं धरती दोनों पर फैली हुई है तथा जो ऊपर सूक्ष्मतम तत्त्व विद्यमान है उसे लोगों ने महाकाश कहकर श्रेष्ठ मान लिया है। कवि कहता है कि धरती से स्वर्ग उसी प्रकार श्रेष्ठ है जिस प्रकार बड़े शरीर से सूक्ष्म कल्पना श्रेष्ठ समझी जाती है और इस साकार चाँदनी रूप में ही स्वर्ग की श्रेष्ठ सृष्टि विद्यमान है। कवि का कहना है कि धरती रूपी युवती का यह वसंत काल है और उसके हरे-भरे स्तनों पर कलियों की माल पड़ी हुई है तथा पवन अपनी सुगंधि से दिशारूपी कुमारियों का मन सींच कर प्रसन्नता के साथ प्रवाहित होता है।

टिप्पणी—इन कवियों में निराला की उत्कृष्ट कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं।

पृथ्वी स्वर्ग ········ दृग बन्द। (पृष्ठ १०८)

शब्दार्थ—होड़ = प्रतिद्वंद्विता, प्रतिस्पर्धा। निष्काम = कामना रहित; जिसे किसी भी प्रकार की इच्छा न हो। अभिराम = सुन्दर। एकटक = टकटकी लगाकर। निगड़ = जंजीर, बंधन। देह = शरीर। सुघर = सुन्दर। दृग = नेत्र।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि धरती अब कामनारहित होकर स्वर्ग से प्रतिद्वंद्विता कर रही है और मैंने मुख फेर कर देखा तो मुझे सुन्दर नर्गिस का फूल खिला हुआ दिखाई दिया। कवि का कहना है कि नर्गिस के फूल को देखकर मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि उसके प्रेमपूर्ण नेत्र, प्रियभाव से पूर्ण होकर अपलक देखते हुए थक से गये हैं और मुख पर लिखी हुई अविश्वास की रेखाएँ पढ़कर वे स्नेह के बंधन में बँधे हुए भी अलग जान पड़ते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि नर्गिस के फूल में प्रेमपूर्ण भावनाओं का आधिक्य है और अपने प्रेमियों के स्नेह बंधन में बँधे रहने के बावजूद यह फूल स्वतंत्र है। कवि कहता है कि नर्गिस का फूल कहने लगा कि स्वर्ग की जो परी धरती पर आयी थी, उसके कारण ही शायद यह पृथ्वी

सुन्दर प्रतीत होती है तथा वह अंधकार पार कर जो आकाश पर छा गयी; उसे देखकर मित्र तुम स्वयं बतलाओ कि वह पुनः स्वर्ग प्राप्त कर सकी या नहीं ? कवि का कहना है कि नर्गिस ने उससे पूछा कि तुम यह बतलाओ कि शरीर या आँखों में से कौन अधिक सुन्दर है और तुम जिसे चाहते हो वह पक्षी है या उसके पंख हैं। कवि कहता है कि नर्गिस ने उससे यह जानना चाहा कि स्वर्ग यदि धरती पर झुक आता है तो वह अधिक सुन्दर है या धरती जब स्वर्ग की ओर बढ़ती है तब उसे सुन्दर कहा जाएगा। कवि कह रहा है कि हवा बहने लगी और नर्गिस की सुगंध चारों ओर व्याप्त हो गयी तथा मैंने यह कहकर कि यह दृश्य धन्य है तथा स्वर्ग भी यही है, नेत्र मूँद लिए।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि की सौन्दर्य कल्पना के साथ-साथ उत्कृष्ट विचार दर्शन की अभिव्यक्ति भी हुई है।

४३–वसंत की परी के प्रति (पृष्ठ १०९)

सन्दर्भ—महाकवि निराला ने अपनी कविता 'वसंत की परी के प्रति' में ऋतुराज वसंत का भावपूर्ण चित्रण किया है।

आओ आओ··············**निर्झरी छबि विभावरी।** (पृष्ठ १०९)

शब्दार्थ—अम्बर = आकाश। चपल = चंचल। पूरितपरिमल = सुगंधि से पूर्ण। निस्तल = किनारा रहित। निर्झर = छोटा झरना।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे मेरे वसंत की परी तुम्हारा रूप बहुत ही अधिक सुन्दर है और तुम पुनः आगमन करो तथा हे आकाश की सुन्दरी; तुम स्वरपूर्ण होकर सिहर उठो। कवि वसंत की परी को सम्बोधित कर कहता है कि पुनः चंचल ध्वनि करनेवाली कलकल तरंगें प्रवाहित होने लगें और नवीन एवं स्वच्छंद क्रीड़ा के अवसर आयें। कवि का कहना है कि हे रूपवती वसंत की परी तुम्हारा पुनः आगमन हो और तुम्हारा स्वच्छ एवं सजल शरीर सुगंधि से पूर्ण है तथा वह मेरे किनारा रहित तन को शीतल एवं सुख प्रदान करने वाली निर्झरी के सदृश्य प्रतीत होती है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला का प्रकृति के प्रति अनुराग

दर्शनीय है और सरल एवं सुबोध शब्दावली में अनूठी भाव व्यंजना के दर्शन होते हैं।

निर्जन ज्योत्स्ना चुम्बित········विहरी छबि विभावरी। (पृष्ठ १०९)

शब्दार्थ—निर्जन=एकान्त, सुनसान। ज्योत्स्ना चुम्बित=पूर्णिमा की चाँदनी से चूमा गया। समीरण=पवन। निरावरण=बिना किसी आवरण अर्थात् वस्त्र के। बेला=समय। परिणय=प्रेम। हेला=खेल, क्रीड़ा। सुमिलन=सुन्दर भेंट।

व्याख्या—कवि वसंत की परी के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कह रहा है कि एकान्त जंगल को पूर्णिमा का मधुर चुम्बन प्राप्त हो अर्थात् सुनसान जंगल में पूर्णिमा की चाँदनी का प्रसार हो और सघन स्वाभाविक पवन भी प्रवाहित होती रहे। कवि कहता है कि कली बिना किसी वस्त्र के दिखाई दे रही थी और पवन ने उसका आलिंगन कर उसे अपना मन प्रदान कर दिया। कवि वसंत की परी को अपूर्व रूपवती मानते हुए कह रहा है कि मेरी छोटी सी जीवन नौका विचार सागर में नृत्य करती हुई दिखाई दे रही है।

कवि का कहना है कि पुनः बेला का यह समय आ गया और यह जुही की कली का अपने प्रियतम पवन से प्रेम क्रीड़ा करने का मधुर क्षण है। कवि वसंत की परी को सम्बोधित कर कहता है कि मैं तुमसे न जाने कितनी एकांत बातें करता रहा हूँ और इस सुन्दर मिलन के समय न जाने कितने मधुर भावों से पूर्ण हो तुम मेरे मन में विहार कर रही हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में हमें महाकवि निराला की नवोन्मेषशालिनी कवि प्रतिभा के दर्शन होते हैं और यहाँ भावपक्ष एवं कलापक्ष का अनूठा संगम भी दर्शनीय है।

तुलनात्मक दृष्टि—सामान्यतया अधिकांश कवियों का ध्यान वसंत की सुषमा के चित्रण की ओर गया है और यहाँ उदाहरणार्थ सुप्रसिद्ध आधुनिक कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत की कविता 'अल्मोड़े के वसंत' से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत हैं—

पतझड़ के कृश पीले तन पर,
पल्लवित तरुण लावण्य लोक;
शीतल हरीतिमा की ज्वाला,
दिशि दिशि फैली कोमलऽलोक,
आह्लाद, प्रेम औ यौवन का,
नव स्वर्ग; सद्य सौन्दर्य सृष्टि;
मंजरित प्रकृति मुकुलित दिगंत,
कूजन गुंजन की व्योम वृष्टि।

४४–अपराजिता (पृष्ठ ११०)

संदर्भ—महाप्राण निराला की 'अपराजिता' कविता में सौन्दर्यमूलक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है।

शब्दार्थ—नागरी=नगर की रहनेवाली स्त्री, चतुरस्त्री। पाँखें=पंख। नभ=आकाश। तरु=वृक्ष। तरुण=युवा। शाखें=शाखा, वृक्ष की डाल।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि परी नागरी की आँखें देखकर हमारे नेत्र पराजित नहीं हुए। कहने का अभिप्राय यह है कि यद्यपि परी एक चतुर स्त्री थी और उसके नेत्रों में अद्भुत आकर्षण था परन्तु उसके नेत्रों को देखकर मनुष्य के नेत्र अपराजित ही रहे। कवि का कहना है कि परी नागरी के पंख आकाश को पार कर गये और वह अर्थात् परी नागरी आकाश में ऊपर की ओर बढ़ती चली गयी। कवि कहता है कि आकाश की नीलिमा स्नेह से पूर्ण हो गयी और एक अपूर्व ज्योति जाग्रत होकर धरती पर अवतरित हुई तथा वह एक नवीन रंग से पूर्ण हो गयी। कवि कह रहा है कि वृक्ष की युवा शाखायें अर्थात् नवीन डालें हरी भरी हो गयीं और परी नागरी का प्रभाव सर्वत्र ही दिखाई दे रहा है पर उसे देखकर मेरे नेत्र पराजित नहीं हुए।

टिप्पणी—कवि निराला की 'अपराजिता' कविता में स्वाभाविकता और मर्मस्पर्शिता के दर्शन होते हैं तथा मिल्टन की यह उक्ति कि—'Poetry is the art of uniting pleasure with, truth by calling imagin

ation to the help of reason.' इस कविता के प्रति पूर्ण चरितार्थ सिद्ध होती है।

४५—आये पलक पर प्राण (पृष्ठ ११०-१११)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि ने परमब्रह्म परमात्मा के प्रति अपनी हार्दिक भावनाएँ प्रकट की हैं।

शब्दार्थ—जोत=ज्योति। उदोत=प्रकाश, ज्योति। बानिक=सजधज, बनाव, वेष।

व्याख्या—कवि परम ब्रह्म परमात्मा को सम्बोधित कर कहता है कि ज्योंही लपक पर प्राण आये तुम बंदनवार बन गये और कंठ से गीत उमड़ उठे तथा तुम गले के हार बन गये। कवि का कहना है कि हे देव; तुम शरीर की माया की ज्योति हो और जिह्वा रूपी सीप के मोती हो तथा प्रतिक्षण ज्योतियुक्त होकर तुम वसंत बहार बन गए हो। कवि कहता है कि दोपहर की सघन छाँह में वह अज्ञात शक्ति अपूर्व सजधज के साथ मेरे समीप प्रकट हुई और देवों के तार बन कर उसने मेरी बाँह पकड़ ली अर्थात् वह अज्ञात शक्ति और कोई नहीं स्वयं परमपिता परमात्मा ही हैं। कवि परमपिता परमात्मा की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहता है कि उन्होंने अपनी प्रणय भिक्षा का अपूर्व दान प्रदान किया तथा वे तो जल में रहने वाले कमल के सदृश्य हैं और मेरे जीवन के लिए मान तथा हृदय के प्यार बने हुए हैं।

टिप्पणी—इस कविता में सरल सुष्ठु शब्दावली में ही अनूठी भावनाओं का चित्रण किया गया है और हमें यह न भूलना चाहिए कि शब्द सौष्ठव को कविता में अनिवार्य तत्त्व माना जाता है तथा लोंजाइनस ने अपने 'पेरि इप्सस' नामक ग्रंथ में कहा भी है 'उपयुक्त एवं प्रभावक शब्दावली श्रोता को आश्चर्य-जनक रूप में आकर्षित और अभिभूत कर लेती है। ऐसी शब्दावली की वक्ता और लेखक कामना करते हैं क्योंकि उसी के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में किसी रचना में सुन्दरतम मूर्त्तियों की भाँति भव्यता, सौन्दर्य, मार्दव, गरिमा, ओज और शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव होता है और मृतप्राय वस्तुएँ जीवित हो उठती हैं।······सुन्दर शब्द ही वास्तव में विचार को विशेष प्रकार

का आलोक प्रदान करते हैं।' भाषा सौन्दर्य सम्बन्धी उक्त विशेषताओं से यह कविता पूर्ण है।

४६—स्नेह की रागिनी बजी……(पृष्ठ १११)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि की प्रणय भावनाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ—अयन = आश्रय, स्थान। आर्स = तलवार। मूर्च्छना = संगीत में एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने का उतार-चढ़ाव।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि शरीर की सुर बहार पर स्नेह की रागिनी बजने लगी और प्रिय के अश्रुहार पर वर विलासिनी सुसज्जित हो गयी है। कहने का अभिप्राय यह है कि मानव तन में स्नेह भावनाएँ विकसित होने लगीं और हृदय में प्रिय-मिलन की इच्छा तीव्र हो उठी। कवि कहता है कि नेत्रों की दशा अब कुछ ऐसी हो गयी है कि उनका आश्रय ही खो गया है तथा सुख की सेज के लिए वे तलवार की धार पर आये हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रेम का पथ सहज नहीं है और प्रेम के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए भी तत्पर रहना पड़ता है। कवि का कहना है कि प्रातःकाल होते ही कली अब ओस कणों से धुल गयी और रवि के नेत्र भी खुल गये तथा संसार के तार-तार पर तरुण मूर्च्छना जाग्रत हो गयी। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रातःकाल के समय कली पर ओस बिखरी हुई दिखाई देती है और सूर्योदय के साथ-साथ सम्पूर्ण सृष्टि में एक प्रकार का नवीन संगीत गूँजने लगता है।

टिप्पणी—इस कविता में कवि निराला की उत्कृष्ट कल्पना शक्ति के दर्शन होते हैं और पाश्चात्य कवि वर्डस्वर्थ (Wordsworth) ने जो कविता को भावनाओं का अनायास प्रवाह मानते हुए कहा है 'All good poetry is sportanious overflow and powerlful feelings.' वह इस कविता के प्रति पूर्ण सत्य जान पड़ता है।

४७—हँसी के तार (पृष्ठ ११२)

सन्दर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि निराला बहार के दिनों का प्रशंसायुक्त परिचय दे रहे हैं।

शब्दार्थ—निगह=दृष्टि। सिंगार=शृंगार।

व्याख्या—कवि का कहना है कि ये बहार के दिन न केवल हँसी के तार होते हैं अपितु हृदय के हार भी होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि बहार के दिन हमारे लिए हँसी खुशी से युक्त होते हैं। कवि कह रहा है कि यदि कभी हमारी दृष्टि कुछ देर के लिए रुक जाती है तथा केशर को धारण करने वालों से ज्ञात होता है कि ये बहार के दिन सुगंध भार के होते हैं। कवि कहता है कि यदि कहीं किसी स्थान पर बैठी हुई तितली की ओर हमारी आँख जाती है तो ज्ञात होता है कि ये बाहर के दिन शृंगार के होते हैं। कवि का कहना है कि हवा प्रवाहित होने लगी और हवा के साथ साथ फूलों की सुगंध भी चारों ओर फैलने लगी तथा इससे यह अनुभव हुआ कि ये बहार के दिन पवन के होते हैं। कविता के अंत में कवि कहता है कि चारों ओर एक प्रकार की नवीनता के दर्शन होने लगे और इस नवीन वातावरण में जब प्रिय से चार आँखें हुईं तब यह बोध हुआ कि ये बहार के दिन प्यार के होते हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से मानवीय भावनाओं का कुशल निरूपण हुआ है और यह कविता सरल सुबोध शब्दावली की योजना की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है।

४८—वनबेला (पृष्ठ ११२-११८)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'वनबेला' कविता में मनोरम प्राकृतिक पीठिका का चित्रण करते हुए राजपुत्रों, समाचार पत्रों, पत्र प्रतिनिधियों, साम्यवादियों, नेताओं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कर्णधारों और एक एक पैसे में दस दस राष्ट्रीय गीत लिखनेवाले तथाकथित महाकवियों आदि पर तीक्ष्ण व्यंग्य किये हैं।

वर्ष का प्रथम······ सुकृत मान। (पृष्ठ ११२-११३)

शब्दार्थ—उरोज=स्तन। मंजु=सुन्दर। निरुपम=अद्वितीय, जिसकी कोई समता या बराबरी न कर सके। किसलयों=नवीन पत्तों। पिक भ्रमर गुंज=कोयल और भँवरों का गुंजन। प्रणय=प्रेम। प्रखर=तेज, तीव्र। सहसा=अचानक, एकाएक। ऊर्जित=शक्तिशाली। भास्वर=दिव्य। पुलकित

=प्रसन्न या हर्षपूर्ण होकर। शत शत=सैंकड़ों। रसा=धरती, पृथ्वी। दिनकर=सूर्य। क्षोभ= क्रोध। उत्कंठा=उत्सुकता। सुकृत=भाग्यशाली।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि वर्ष का पहला चरण था और धरती के उरोज उठे हुए थे अर्थात् धरती पर चारों ओर हरियाली छायी हुई थी और सुन्दर तथा अद्वितीय पर्वत शोभा पा रहे थे। कवि का कहना है कि नवीन पत्तों में बँधे कोयल और भँवरे गूँज रहे थे जो कि अपने जीवन की प्राणवता से प्रेम के गीतों की रचना कर रहे थे तथा इन गीतों को सुनकर तपन का यौवन अचानक ही तेज से बहुत अधिक तेज हो रहा था। कवि कह रहा है कि शक्तिशाली और चमकता हुआ सूर्य हर्षपूर्ण होकर अपने सैंकड़ों व्याकुल किरणों रूपी हाथों से गोद में भरकर, क्रोध से, लोभ से, ममता से और उत्सुकता से प्रेम के नेत्रों की समता से धरती को बार बार चूम रहा था, जो अपना सर्वस्व लुटाकर प्रिया के भाग्यशाली मान को पूर्ण रूप से ले रहा था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में संयोग श्रृंगार का उन्मुक्त चित्रण किया गया है।

दाब में ग्रीष्म ········ जड़चेतन। (पृष्ठ ११३)

शब्दार्थ—दाब=अधिकता। ग्रीष्म=गर्मी। भीष्म=भयंकर। प्रस्वेद=पसीन। जड़ चेतन=निर्जीव और सजीव। निर्जीवन=जीवन रहित, जीवन से शून्य।

व्याख्या - कवि कहता है कि गर्मी की अधिकता के कारण भयंकर ताप बढ़ रहा था और इसके फलस्वरूप न केवल शरीर पसीने से लथपथ हो गया था बल्कि कँपकँपी भी छूट जाती थी। कवि का कहना है कि ज्यों-ज्यों आकाश और धरती दोनों के हृदय पर लू का प्रकोप होता था, त्यों-त्यों धरती पर गर्मी की अधिकता के कारण दुःख और धरती के सघन निश्वास रूपी गर्मी के झोंके बढ़ रहे थे; जो कि जड़ और चेतन अर्थात् निर्जीव और सजीव दोनों को जीवन रहित बना रहे थे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में रूपक अलंकार का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है।

यह सांध्य समय........**रहा देश।** (पृष्ठ ११३)

शब्दार्थ—सांध्य = संध्या का समय। अम्बर = आकाश। पीताम = पीले रंग का। अग्निमय = अग्नि से युक्त। दुर्जय = अपराजित, जिस पर विजय न प्राप्त की जा सके। निर्धूम = धूम या धुँआ रहित। निरभ्र = बादलों से रहित। दिगन्त प्रसार = दिशाओं में फैला हुआ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि वह संध्या का समय था और आकाश पीला हो गया था पर वह आग के समान लाल रँग का भी जान पड़ता था। अतएव वह एक ऐसा प्रलय कालीन दृश्य उपस्थित कर रहा था जो किसी अपराजित व्यक्ति की भाँति धूम्ररहित और बादल रहित बनकर सभी दिशाओं में फैला हुआ हो तथा सम्पूर्ण विश्व को जलाकर भी अकेला बचा हुआ हो। साथ ही धूल उड़ने के कारण भी कहीं कुछ भी नहीं दिखाई पड रहा था।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्राम अलंकार की छटा दर्शनीय है।

मैं मन्द गमन........**स्वर भर।** (पृष्ठ ११३-११४)

शब्दार्थ—मन्द गमन = मंद या धीमी गति से चलता हुआ। धर्मोक्त = धर्म से युक्त। विरक्त = उदास। पार्श्वदर्शन = बगल या समीप का दृश्य। व्यर्थ = बेकार। मर्माहत = मन को चोट पहुँचाने वाला, दुःखपूर्ण।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मैं धीमी गति से चलता हुआ, धर्मयुक्त होकर और उदासीनता से समीप के दृश्यों को नेत्रों से ओझल करता हुआ, नदी के किनारे-किनारे चलता हुआ, मन में यह विचार कर आगे बढ़ रहा था कि मेरा जीवन बेकार हो गया और मैं जीवन संग्राम में असफल ही रहा। कवि कहता है कि मैंने यह कभी भी नहीं सोचा था कि मेरे भविष्य की रचना पर ही सब लोग चल रहे हैं और मैं इसी प्रकार की अनेक बातें सोचता हुआ, अपने इच्छित स्थान पर पहुँच गया तथा वहाँ के एकान्त वातावरण को देख, वहीं बैठ गया। कवि का कहना है कि उस समय मेरा हृदय दु ख के भावों से पूर्ण था।

टिप्पणी— इन पंक्तियों में कवि ने प्राकृतिक पीठिका में मानवीय मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है ।

फिर लगा सोचने········विशाल चित्र । (पृष्ठ ११४)

शब्दार्थ—यथासूत्र = पहले के विचारों के संदर्भ में । राजपुत्र = राजकुमार । विद्याधर = विद्वान । अनुचर = दास, सेवक । विनत सिर = शीश झुकाये । उद्यत कर = तत्पर हाथों से ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मैं पहले के विचारों के संदर्भ में सोचने लगा कि यदि मैं राजकुमार होता तो भले ही मैं हमेशा बुरे कार्य करता पर सभी विद्वान मेरे नौकर होते और मेरी प्रसन्नता के लिए अपना सिर नम्रता पूर्वक झुकाए रहते तथा मेरे द्वारा दिए गए पारिश्रमिक रूपी प्रसाद को तत्पर हाथों से स्वीकार कर मेरी कीर्ति की प्रशंसा में और भी अधिक लिखते । कवि का कहना है कि समाचार पत्रों में मेरा यशोगान होता और मेरा जीवन चरित्र भी प्रकाशित किया जाता । कवि कह रहा है कि सभी समाचार पत्रों में कुछ न कुछ मेरा योगदान अवश्य होता और सभी समाचार पत्रों के अग्रलेख में मेरा गुणगान किया जाता तथा सम्पादक मेरा विशाल चित्र छापकर अपने आपको धन्य समझते ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने आधुनिक समाचार पत्रों के प्रकाशकों एवं सम्पादकों की मनोवृत्तियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है और निरालाजी के इन उद्‌गारों में यथार्थता ही है ।

इतना भी नहीं········निज पिता पास । (पृष्ठ ११४)

शब्दार्थ—लक्षपति = लखपती । अविचल चित्त = एकाग्रता पूर्वक । उग्रतर = तेज, प्रबल । सुनिधरि = भली भाँति, सोच-विचारकर । गर्दभ-मर्दन-स्वर = गधे के स्वर को भी दबा देने वाली ध्वनि या आवाज । पग = चरण । त्वरित = तुरन्त । सहस्त्र षट् = छह हजार ।

व्याख्या—कवि कहता है कि यदि मैं राजकुमार न होकर किसी लखपती का पुत्र ही होता तो भी कुछ बुरा न था और उस समय मैं शिक्षा प्राप्त करने के लिए अरब समुद्र के पार, विलायत जाता । कवि का कहना है कि उक्त

स्थिति में मेरे पिता देश की नीति के पूर्ण पंडित माने जाते और वह धन पर अपना पूर्ण एकाधिकार रखते हुए भी उग्रतर साम्यवादी कहलाते तथा साम्यवाद का प्रचार करते। इस प्रकार जनता भली-भाँति सोच विचार कर उन्हें ही राष्ट्रपति चुनती और पैसे के लोभ में कविगण उनके सम्बन्ध में राष्ट्रीय गीतों की रचना करते तथा गधे से भी अधिक कर्कश स्वर में उन्हें गा-गाकर बेचते। साथ ही इस दिशा में हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी स्वयं को पीछे नहीं रखता और उन गीतों को अमर साहित्य मानकर, सँभालकर रखता, जिससे कि वे नष्ट न हो जायें। कवि कहता है कि मैं शीघ्र ही, तार द्वारा, समुद्र पार विलायत में इस सूचना को प्राप्त करता और लार्ड के पुत्रों को दावत देता तथा उनके साथ भ्रमण करता। कवि का कहना है कि इस तरह मैं प्रति मास छह हजार रुपया खर्च करता और अपना अध्ययन पूर्ण कर अपने योग्य पिता के पास लौट आता।

टिप्पणी—कवि निराला ने इन पंक्तियों में खोखले राजनीतिज्ञों और अवसरवादी साहित्यकारों एवम् देशसेवकों की आदतों का स्वाभाविक चित्रण किया है।

वायुयान से ········साम्यवाद इतना उदार ! (पृष्ठ ११४-११५)

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र, तुरन्त। अभिप्राय=मतलब, तात्पर्य। सतत=लगातार, निरंतर। मर्मान्तिक=भावपूर्ण। प्रांतिक=प्रांत का। विचक्षण=विद्वान, तीव्र बुद्धि वाला। अभंग=पूर्ण, जो छिन्न-भिन्न या अधूरा न हो।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मैं वायुयान द्वारा विदेश से भारत लौटता और भारत पर अपने चरण कमल रखता तथा मेरे आगमन से सभी समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों में हलचल मच जाती जिससे कि वे सभी अपने हाथों में कैमरा लिए दौड़कर विमानतल आते और तुरन्त अपने आने का अभिप्राय प्रकट करते अर्थात् मेरा चित्र लेने की प्रार्थना करते। कवि का कहना है कि मैं सभ्यता के नाते झुक-झुककर पत्र प्रतिनिधियों की प्रार्थना स्वीकार कर लेता और चित्र खिचवाने के लिए कभी इधर को तथा कभी उधर को मुख

कर खड़ा होता तथा लगातार नीचे ऊपर बीसियों भावमुद्राएँ बनाता। कवि कहता है कि इसके पश्चात् मैं अपने भारत देश को भावपूर्ण और दृढ़ संदेश देता जिसमें भाषा के अतिरिक्त और कोई प्रांतीय भाव न होते तथा मैं अस्थिर होकर रूस की साम्यवादी विचार धारा के ही भाव प्रकट करता। कवि कह रहा है कि मैं अपने भाषण में अपने पिता के साथ सम्पूर्ण रूप में जनता की सेवा में लीन रहने का व्रत लेता और अत्यधिक उदारता के साथ रंगमंच से साम्यवाद के सिद्धांतों का ही जोरदार प्रचार करता।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने यह संकेत करना चाहा है कि पूंजीपति किस प्रकार सर्वसामान्य जनता को भुलावे में रखते हैं और लोगों को हमेशा गुमराह करने का ही प्रयत्न करते हैं।

तप तप मस्तक··· ········दर्शन सर। (पृष्ठ ११५-११६)

शब्दार्थ—सांध्य नभ=संध्याकालीन आकाश। रक्ताभ=लाल। दिगन्त =दिशाएँ। आतुरता=उत्सुकता। त्रास=कष्ट। दुस्तर=कठिन, कठोर। सुषम=समता। सुघर=सुन्दर। सिक्ततन केश=शरीर और बाल भीगे हुए होना। शर=बाण, तीर।

व्याख्या—कवि कहता है कि संध्याकालीन आकाश का मस्तक तप तप कर लाल हो गया जिसके फलस्वरूप दशों दिशायें भी लाल हो गयीं और मैंने आतुरता से अपनी आँखें खोली तथा देखा कि चारों ओर से प्रेयसी के अलकों से आती हुई स्निग्ध गंध के सदृश्य तेज सुगंध आ रही है। कवि का कहना है कि उस समय मैंने विचार किया कि मैं यहाँ पर अकेला ही आया हूँ और इसलिए मैं वहीं बैठकर अपने चारों ओर हँसती हुई वनबेला को देखने लगा, जो कि दिन भर के ताप और कष्ट को अपने जीवन में भरकर और अतल की अतुल साँस लेकर इस प्रकार लहरा रही थी, जिस प्रकार किसी परम सिद्ध व्यक्ति की साधना धर्म, एवं जीवन के कठोर दुःखों को भेदकर और समता का भाव लेकर ऊपर आ गई हों। कवि कहता है कि वह वनबेला ऐसी जान पड़ती थी जैसे कोई सुन्दर अप्सरा क्षीर सागर को पार करके निकली हो और

जिसका शरीर तथा केश भीगे हुए हों और जो विश्व के चकित दृश्य के दर्शन बाणों से आहत होकर काँप रही हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में उदाहरण एवं अनुप्रास अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है।

बोला मैं............करो दर्श। (पृष्ठ ११६)

शब्दार्थ—वन्य गान=बन का गीत। प्रखर=तेज। सुरा=मदिरा, शराब। सुवातास=सुगंधित वायु। चितवन=दृष्टि। मुहर्मुहर=बार बार। अवहेला=अवहेलना, उपेक्षा, लापरवाही। दर्श=दर्शन।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मैंने वनबेला को देखकर कहा कि हे बेला; जिस वन में तुम गीत बनकर पुलकित हो, वहाँ पर लोगों का आगमन नहीं है और जब भयानक गर्मी पड़ती है तब तुम अपने छोटे प्याले में अतल की सुशीतलता भरकर इस सुगंध की मदिरा का पान कर रही हो। कवि का कहना है कि यह देखकर मैं लज्जा के कारण नम्र हो गया और वनबेला के अधिक समीप चला गया पर अचानक संध्या के समय की शीतल एवं सुगंधित वायु प्रवाहित हो उठी। कवि कह रहा है कि उस समय झुक-झुककर, तन-तनकर, फिर झूम-झूमकर और हँस-हँसकर झकोरें खाती हुई चिर परिचित चितवन को मेरे चेहरे पर डालती हुई अपना सुन्दर मुख मोड़ते हुए बार-बार अपने शरीर में सुगंध भरकर वनबेला कहने लगी कि मैं अपना सब कुछ अर्पित कर देती हूँ अतः तुम मेरा स्पर्श मत करो क्योंकि तुमने अपनी स्थिति की उपेक्षा की है अतः तुम्हारा स्पर्श अपवित्र हो गया है और तुम रुको तथा दूर से ही मेरे दर्शन करो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने मानवीकरण की आकर्षक योजना की है।

मैं रुका............वनबेला। (पृष्ठ ११६-११७)

शब्दार्थ—नवल=नवीन, नई। आलोक=प्रकाश। वन्य वह्नि=वन की आग। तन्वि=कोमल अंगोंवाली। दुग्ध धवल=दूध के समान उज्जवल। वामालक चुम्बित=नायिका की अलकों से चूमी हुई।

व्याख्या—कवि का कहना है कि वनबेला की बातें सुनकर मैं उसी उज्जवल राह पर रुक गया जो नवीन शिखा के प्रकाश की स्निग्धता दिखा गयी थी। कवि कह रहा है कि मैंने उस वनबेला से यह प्रार्थना की कि हे वन की अग्नि की नवीन कोमलांगी ; जिस प्रकार की तुम्हारी ये उज्जवल पंखुड़ियाँ हैं उसी प्रकार की विचार पंखुड़ियाँ, जो दूध के समान उज्जवल हों, कविता में भी नहीं प्राप्त होतीं और न ही इस प्रकार का अपल स्नेह मिलता है, जो विश्व के प्रेमी और प्रेमिकाओं के प्रति है। कवि वनबेला से कह रहा है कि तुम्हारे हृदय पर हार शोभित है और तुम्हारी गति सहज व मन्द है तथा तुम्हारे में नायिका की अलकों से चूमी हुई वह पुलक गंध भी है, जो कविता में भी नहीं प्राप्त होती। कवि का कहना है कि मेरे इस प्रश्न को सुनकर बेला ने मुझसे कहा कि तुमने केवल अपना आपा खोया है और इस जीवन में खेल ही खेला है तथा यह उत्तर देकर वह वनबेला सिहर उठी।

कूऊ कूऊ बोली..........**आलोक सृष्टि**। (पृष्ठ ११७)

शब्दार्थ—विष=जहर। छतर=बिखेरना। हरित=हरा। सरिता=नदी। तमश्चरिता=अंधकार में विचरण या भ्रमण करनेवाली। निरुपमिता =अद्वितीय, जिसकी तुलना न की जा सके। शत नयन दृष्टि=सैकड़ों नेत्रों की दृष्टि। विस्मय=आश्चर्य। विविध=अनेक प्रकार की। आलोक= प्रकाश।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि कोयल अपने अन्तिम सुख स्वर में 'कूऊ कूऊ' कहकर कूकने लगी और पपीहा 'कहाँ कहाँ' का विरह दग्ध स्वर बिखरा गया, जो कि मधुर जहर के समान था। कवि का कहना है कि हृदय में अनेक प्रकार की भावनाओं को उत्पन्न करके और हरे पत्तों को हिलाती-डुलाती वायु चलने लगी तथा लहरों में कम्प और उत्सुकता लेकर नदी तैरने लगी तथा रात्रि में विचरण करनेवाली आकाश की अद्वितीय तारिकाएँ बेला की शोभा देखने लगी। कवि कहता है इस विविध प्रकाश दृष्टि को देखकर सैकड़ों नेत्रों की दृष्टि आश्चर्य से पूर्ण हो उठी।

भाव में हरा..........**संचरिता**। (पृष्ठ ११७-११८)

शब्दार्थ—अस्फुट = अस्पष्ट । सुघर = सुन्दर । पावन = पवित्र । सुहृदवर्ग = मित्र मण्डली । आभा = चमक, कांति । दिग्देश = दिशायें और स्थान । वृन्त = डंठल । उपल = ओले । प्रहार = चोट, आघात । प्रखर = तीव्र, तेज । शुचि = पवित्र । संचरिता = संचरण करनेवाली ।

व्याख्या—कवि का कथन है कि वनबेला की अलौकिक आभा देखकर मैं विस्मय विमुग्ध हो गया और वह मुस्कराती हुई अस्पष्ट स्वर में मुझसे कहने लगी कि यह जीवन बाह्य सुन्दर वस्तुओं को लेकर जितना चमकता है, उतना ही आत्मा की पवित्र निधि पत्थर की बनती जाती है और वह कौड़ी के मोल भी यहाँ नहीं बिकती । कवि कह रहा है कि इस निर्जन वन में चाहे कितनी खोज करो, इस प्रकार की आत्मा प्राप्त नहीं हो सकती और नगरों में सम्मान रखनेवाले व्यक्ति नहीं रहते क्योंकि वहाँ हमेशा मान-अपमान का प्रश्न उठने के कारण वहाँ एक बड़ा है और शेष छोटे हैं तथा मूर्ख हैं । कवि का कहना है कि जहाँ पर शिक्षा एवं ज्ञान है, वहाँ सब बराबर होते हैं और बड़े भी छोटे होते हैं तथा असमान भी समान हो जाते हैं और वहाँ सब मित्रों के समान रहते हैं जिनके नेत्रों के प्रकाश से दिशाएँ और देश में स्वर्ग स्थिति सम्भव हो जाती है । कवि कह रहा है कि वनबेला की इन बातों को सुनकर मैंने उससे कहा कि तुम सत्य कहती हो और तुम्हारा कथन निस्संदेह सत्य एवं सुन्दर है तथा तुम तो उस समय भी अपनी डाल पर प्रसन्नता से नाचती रहती हो जब तुम्हारे ऊपर ओले का तीक्ष्ण आघात होता है । कवि वनबेला को सम्बोधित कर कहता है कि तुम केवल अपनी शुद्ध शोभा को संचरित करती हुई मेरे हृदय में और मेरी कविता में विद्यमान रहो ।

फिर उषःकाल··············**वायु बही । (पृष्ठ ११८)**

शब्दार्थ—उषःकाल = प्रभात का समय । निस्वन = निःस्वर, चुपचाप ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मै उषाकाल अर्थात् प्रभात के समय भ्रमण करते हुए गया और मैंने देखा कि एक ब्राह्मण वनबेला की झुकी हुई डाल को पकड़कर फूल तोड़ रहा है । कवि का कहना है कि वनबेला ने उससे

कहा कि मैं प्रिय के चरणों पर जीवन अर्पण करने जाती थी और उसकी इस अवस्था को प्रभात का वह पवन चुपचाप देखता रहा।

टिप्पणी—वस्तुतः 'वनबेला' कवि निराला की उल्लेखनीय कविताओं में से एक है और श्री धनंजय वर्मा ने इस कविता का परिचय देते हुए यही कहा है 'वनबेला का व्यंग्य मध्यवर्गीय बुद्धिवादियों की नारेबाजी है। यह व्यंग्य उन राजपुत्रों पर है जो अपनी राजपुत्रता से विद्या खरीदते हैं, उन लक्षपतियों पर है, जो भारत के विषयों में शून्यज्ञान रहकर भी राजनीति और साहित्य में अपना अधिकार दम्भ बतलाते हैं, उस पत्रकारिता पर है, जो पूँजी पर आश्रित है, उन साम्यवादी नेताओं पर है, जो रूस को पिता गुरु मानकर भारत की अवहेलना कर जाते हैं······कविता की पूरी अन्विति (बेला का कथन—चरम सीमा) इस जीवन के मेले की बाह्य चमक के प्रति तिरस्कार दर्शाती है। वन में कौड़ी के मोल बिकने वाली बेल की समता भी विश्व की कोई वस्तु नहीं कर सकती और कवि अपनी कविता के प्रति विश्वास के साथ अपनी साहित्यिक विजय को अनुभूत करता है। मन के उतार चढ़ाव के अनुरूप ही कविता की व्यक्त शैली में भिन्नता आती गयी है। कवि के मन में विचार आने के पूर्वतर उनकी परिमल कालीन कला का रूप है, जहाँ पृथ्वी और सूर्य का प्रणय चलता है, मध्य शैली यथार्थवादी, तीक्ष्ण चोट करने वाली और व्यंग्य प्रधान है, जो आक्रोश को व्यक्त करती है। अंत में एक प्रशान्त मनोदशा को व्यक्त करने वाली गम्भीर और दार्शनिक कवि की सी; यह उनके विजय के गर्व की अनुभूति भी व्यक्त करती है।

४६—तोड़ती पत्थर (पृष्ठ ११८-११६)

संदर्भ—वस्तुतः 'तोड़ती पत्थर' कविता निराला जी की प्रौढ़तम कविताओं में से एक है और इसे हिन्दी साहित्य की प्रगति धारा में विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है। इस कविता में इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली एक मजदूर स्त्री का चित्रण किया गया है और शोषित समाज के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावनाएँ भी व्यक्त की गयी हैं।

वह तोड़ती ········अट्टालिका, प्राकार। (पृष्ठ ११८—११९)

शब्दार्थ—पथ = मार्ग, रास्ता। श्याम तन = काला शरीर। नत नयन = झुके हुए नेत्र। प्रिय कर्म रत = प्रिय को प्रसन्न करने वाले कामों में लगा अथवा मन को अच्छे लगने वाले कार्यों में लगा। गुरु = भारी। तरुमालिका = वृक्षों की कतार। अट्टालिका = ऊँची हवेली। प्राकार = ऊँचे ऊँचे महल या भवन।

व्याख्या—कवि एक मजदूरनी की दशा का वर्णन करते हुए कहता है कि वह पत्थर तोड़ रही थी और मैंने उसे पत्थर तोड़ते हुए इलाहाबाद की सड़क पर देखा था। वहाँ पर कोई भी छायादार वृक्ष नहीं था जिसके नीचे बैठकर वह अपनी गर्मी दूर कर लेती। साथ ही उस मजदूर स्त्री का शरीर श्याम वर्ण का था अर्थात् उसका शरीर काला था और उसका यौवन अपने चरम रूप को प्राप्त होने के कारण उसके उरोज चोली से कसे हुए थे। इसी प्रकार उस मजदूरनी के नेत्र नीचे झुके हुये थे और वह अपने प्रिय काम को मन लगाकर कर रही थी तथा हाथ में भारी हथौड़ा लिए बार-बार पत्थरों पर प्रहार कर रही थी। कवि का कहना है कि उस मजदूरनी के सामने वृक्षों की कतार, हवेली और विशाल महल थे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में मजदूर स्त्री का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। और 'सामने तरु मालिका', 'अट्टालिका प्राकार' नामक पंक्तियों से पूँजीवाद की वैभवशालीनता का संकेत मिलता है जिससे उस मजदूरनी की दीन अवस्था और भी निखर उठती है। साथ ही यहाँ अनुप्रास अलंकर की योजना भी दर्शनीय है।

चढ़ रही थी········तोड़ती पत्थर। (पृष्ठ ११९)

शब्दार्थ—दिवा = सूर्य। भू = पृथ्वी, धरती। गर्द = धूल। चिनगी = चिनगारी।

व्याख्या—निराला जी इलाहाबाद के पथ पर पत्थरें तोड़ने वाली एक मजदूरनी का वर्णन करते हुये कहते हैं कि उस समय धूप चढ़ रही थी और गर्मियों के दिन होने के कारण सूर्य अपने जलते हुये रूप में प्रकट हो रहा था अर्थात् सूर्य सम्पूर्ण धरती को तपा रहा था। साथ ही झुलसाती हुई

रही थी जिससे रूई के सदृश्य धरती जल रही थी और उसकी गर्द रूपी चिनगारी चारों ओर छा रही थी। इस प्रकार उस मजदूरनी को पत्थर तोड़ते-तोड़ते लगभग दोपहर हो गई थी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किया गया है और कवि निराला ने गर्मी की भीषणता का भी स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। साथ ही यहाँ उपमा, रूपक अलंकारों के प्रयोग से मधुरता में भी विशेष अभिवृद्धि हुई है।

देखते देखा········तोड़ती पत्थर। (पृष्ठ ११९)

शब्दार्थ—छिन्न = बिखरा। छिन्नतार = क्रमभंग, फटे वस्त्र। सुघर = सुन्दर कुशल। सीकर = बूँद, पसीने की बूँदे। कर्म = कार्य, काम।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मैं उस मजदूरनी को देख रहा था और उसने भी मेरे इस प्रकार देखने को देख लिया पर वह एक बार मेरी ओर देखकर अपने सामने के विशाल भवन को देखने लगी और उसकी दृष्टि अपने जीर्ण अर्थात् फटे हुये वस्त्रों पर भी गयी। कवि कहता है कि यह देख कर कि वहाँ कोई नहीं है उस मजदूरनी ने मुझे इस प्रकार कातर दृष्टि से देखा जैसे कोई मार खाने पर भी न रोये।

कवि का कहना है कि मैंने सजे हुए सितार पर भी वैसी मर्मान्तिक झंकार कभी नहीं सुनी थी जैसी झंकार उसकी कातर दृष्टि मुझे सुना गयी थी। कवि कह रहा है कि एक क्षण के बाद अपने कार्य में कुशल वह मजदूरनी काँप उठी और उसके माथे से पसीने की बूंदे ढुलककर नीचे गिर पड़ीं मानों उस पसीने के माध्यम से अपने काम में लीन होते हुए उसने ये शब्द कह दिए थे कि मैं पत्थर तोड़ रही हूँ।

टिप्पणी—(१) इन पंक्तियों में मजदूरनी का दीन चित्र सजीव हो उठा है और 'जो मार खा रोई नहीं' नामक पंक्ति से मजदूरनी की दीन हीन विवशता भी स्पष्ट हो जाती है। साथ ही इन पंक्तियों में उदाहरण, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

(२) वस्तुतः 'तोड़ती पत्थर' कविता में कवि नें इलाहाबाद के पथ पर

पत्थर तोड़ती हुई एक सामान्य मजदूरनी की विवशताओं एवं उसकी कार्य-पटुता और गम्भीरता का सजीव चित्रण किया है तथा सम्पूर्ण कविता पढ़कर पाठकों का मन करुणा से आप्लावित हो उठता है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस कविता का रचनाकाल सन १९३५ है और यह कविता हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी धारा में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती है। एक समीक्षक के कथनानुसार 'इस कविता में प्रस्तुत इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ने वाली का चित्र उतना ही उदात्त है जितना कि परिमल की विधवा का, लेकिन वहाँ पर व्यंग्य का वह तीव्र सर संधान नहीं है जो तोड़ती पत्थर में है। साधारण और दलित वर्गों के प्रति जो सहानुभूति इन कविताओं में व्यक्त हुई है, वही प्रगतिवादी धारा का केन्द्र बनी है। पूँजीवादी सभ्यता का जो चित्र है, वह तत्कालीन साहित्य में अकेला है। साहित्य में मार्क्सवादी भौतिकवाद का नाम अभी सुना जा रहा था, श्रमिक और सर्वहारा अभी आकर्षण के विषय ही थे; निराला ने काव्य में श्रमिकों का यह आख्यान दिया। पूँजीपतियों पर यह हथौड़े का प्रहार हुआ।'

५०—उक्ति (पृष्ठ १२०)

संदर्भ—महाकवि निराला ने अपनी 'उक्ति' नामक कविता में मानवीय मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—आतप=ग्रीष्म, गर्मी। दीर्घकाल=बहुत समय तक, लम्बी अवधि तक। सिक्त=सींचा हुआ, गीला। आलबाल=क्यारी, थाला, वृक्षों की जड़ के चारों ओर का घेरा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि यह जीवन बहुत समय तक गर्मी में तपता रहा है और गर्मी के प्रसार के कारण ही भूमि, वृक्ष तथा गीली क्यारी आदि सूख गये। कवि का कहना है कि जिन कुंजों में भँवरें गूँजते रहते थे वे ही कुंज अब धूल धूसरित हो गए और वहाँ भँवरों की गुंजार अब सुनायी नहीं देती परन्तु आकाश के हृदय पर नीले बादलों की माला अवश्य पड़ी है।

टिप्पणी—इस कविता में शब्द एवं अर्थ—कला एवं भाव—का सुन्दर समन्वय है और कुंतक ने अपनी उक्ति 'व्यसनितया प्रयत्न विरचिते हि प्रस्तुतो

चित्यपरिहाणेर्वाच्यवाचकयोः परस्परस्पर्धित्वलक्षण साहित्य विरहः पर्यवस्यति' के अनुसार शब्द और अर्थ के संतुलन का कविता में एकांत महत्व स्वीकार किया है।

५१—लू के झोंकों झुलसे (पृष्ठ १२०-१२१)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि निरालाजी ने वर्षा के आगमन का भावग्राही चित्रण किया है।

शब्दार्थ—झोंकों = झकोरों। भरा दौंगरा = जल के समूह से अभिप्राय है। सविता = सूर्य्य। जग = संसार। अपावन = अपवित्र। दृग = नेत्र। गगन = आकाश।

व्याख्या—कवि वर्षा के आगमन का वर्णन करते हुए कह रहा है कि अब तक तेज गर्मी पड़ रही थी और जो वृक्ष आदि झुलसे हुए थे, उन पर जल गिरने लगा तथा जो बीज खेत में लगाये गये थे, उन्होंने धीरे-धीरे पौधों का रूप धारण करना प्रारंभ किया। कवि का कहना है कि खेतों पर हल चलने लगे और खेतों में नयी लकीरें सी पड़ गयीं तथा पेड़ों पर नवीन फल लगने लगे और ऐसा ज्ञात हुआ कि जैसे उक्त पौधों पर युवावस्था आते ही नवीन चमक सी आ गयी। कवि कहता है कि पुरवा हवा की नमी बढ़ने लगी और जुही की कली खिल उठी तथा न जाने सूर्य ने ऐसी कौन सी कविता पढ़ दी कि बादलों का ढंग ही परिवर्तित हो गया। कहने का अभिप्राय यह है कि आकाश मंडल पर नये नये बादल छा गये। कवि कह रहा है कि वर्षा का आगमन होते ही संसार की अपवित्रता धुल गयी अर्थात् कहीं भी गन्दगी नहीं दिखाई दे रही है और जो ढेले दिखाई देते थे वे भी घुल गये तथा नेत्रों में समता के भाव झलकने लगे और जो आकाश मंडल अब तक तेज गर्मी में तप रहा था वह अब बादलों से घिर गया। कहने का अभिप्राय यह है कि वर्षागमन के साथ साथ आकाश में बादल छा गये।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सरल एवं सुबोध शब्दावली में वर्षा के आगमन का अत्यंत सुन्दर चित्रण किया गया है।

तुलनात्मक दृष्टि—सामान्यतया वर्षा के आगमन का चित्रण अनेक कवियों

ने किया है पर हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन के लिए श्री जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' का यह सवैया उद्धृत कर रहे हैं—

तान-वितान दिया नभ ने, हरियाली ने चादर चारु बिछाई।
हाथ में ली चपला ने मशाल, है झिल्लियों ने मिल बीन बजाई।
वारिदों ने है मृदंग पै थाप दी, चातकियों ने मलार है गाई।
विश्व के प्रांगण में सज के, ऋतु पावस नर्तकी नाचती आई।

५२—उत्साह (पृष्ठ १२१)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'उत्साह' नामक कविता में गरजते हुए बादलों का अलंकृत एवं भावग्राही चित्रण किया है।

शब्दार्थ—धाराधर=बादल, मेघ। ललित=मन चाहा, प्यार, सुन्दर। विकल=व्याकुल। उन्मन=उदास। निदाघ=धूप, गरमी। सकल=सभी। तप्त धरा=तपती हुई पृथ्वी या धरती।

व्याख्या—कवि बादलों को सम्बोधित कर कह रहा है कि हे बादल; तुम जोर से गरजो और आकाश मंडल को चारों ओर से घेर कर घनघोर गर्जना करो। कवि बादलों का अलंकारिक वर्णन करते हुए कहता है कि आकाश में छाये हुए मेघ बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं और ये बादल काले घुंघराले बालों के समान हैं तथा इन बादलों को बाल कल्पना के अनुरूप समझना चाहिए। साथ ही ये बादल अपने हृदय में बिजली की छवि धारण किए हुए हैं और उनमें नवजीवन वाला वज्र भी विद्यमान है तथा इन बादलों की सुषमा देखकर कवि को नूतन काव्य रचने की प्रेरणा होती है।

वर्षागमन का वर्णन करते हुए कवि रंग-बिरंगे बादलों को घनघोर गर्जना करने के लिए जिस समय कहता है, उस समय उसका ध्यान वर्षा से पूर्व की परिस्थितियों की ओर भी जाता है और वह कहता है कि वर्षा का आगमन होने के पूर्व यह संसार तीव्र गर्मी के कारण व्याकुल तथा उदास था। इस प्रकार ग्रीष्म की तपन के कारण संसार के सभी मानव प्राणी उदास और व्याकुल थे। कवि का कहना है कि न जाने किस अज्ञात दिशा से असंख्य बादलों का आगमन हुआ और कवि उन्हीं बादलों को घनघोर गर्जना करने के

लिए कहते हुए कह रहा है कि हे बादल, इस तपती हुई धरती को पुनः अपने जल से शीतल कर दो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सरल सुष्ठु शब्दावली में ही अनुपम काव्य माधुर्य के दर्शन होते हैं और अनुप्रास अलंकार की आकर्षक योजना भी हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी वर्षाऋतु के बादलों का भावपूर्ण वर्णन किया है; देखिए—

लाये कौन संदेश नये घन।
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पंद हृदय में उसके उमड़े री पुलकों के सावन
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में दमक उठे विद्युत के कंकण।

५३—बादल छाये······(पृष्ठ १२२)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने वर्षा ऋतु के बादलों का सुन्दर वर्णन किया है।

शब्दार्थ—मँडलाये=गोलाकार या मंडल के आकार में घिर गये। तिर=तैरता हुआ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि बादल आकाश मंडल में छा गये और ऐसा जान पड़ता है कि मानो मेरे अपने सपने ही नेत्रों से निकल कर आकाश में गोलाकर घिर गये। कवि का कहना है कि धरती पर एक ओर जितनी बूँदें दिखाई देती हैं, दूसरी ओर मैंने उतनी ही अधखिली कलियाँ चुन लीं और बूँदों की लड़ियों के हार बनाकर तुम्हें पहना दिये। कवि कहता है कि सावन के बादल घिर घिर कर गरजने लगे और जंगलों में फिर फिर कर मोर भी नाचने लगे तथा जितनी बार मेरी हृदवीणा के तार झंकृत हुए उतनी बार मैंने अनेक प्रकार के छंदों में रच रच कर अपने गीत भी सुनाये। कवि के

कहने का अभिप्राय यह है कि वर्षाकालीन मेघों को देखकर कवियों को काव्य-सृजन की प्रेरणा होती है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सावन के मेघों का अत्यधिक आकर्षक चित्रण हुआ है। और अनुप्रास अलंकार की योजना भी दर्शनीय है।

तुलनात्मक दृष्टि—वस्तुतः वर्षाकालीन मेघों का वर्णन अनेक कवियों ने किया है पर हम यहाँ केवल श्री उदयशंकर भट्ट के 'मेघगीत' का यह अवतरण उद्धृत कर रहे हैं—

> **आ गए घन मोतियों का हार ले।**
> **नील नभ के हृदय में सब प्यास सावन की लिए वे,**
> **जलन अपनी को बुझाने अश्रु से तर दिल किए वे।**
> **किसी क्रन्दन के स्वरों से मूर्च्छनाएँ राग की भर;**
> **आग सी भरकर हृदय में रचकर मुक्ता दिल लिए वे,**
> **आह भर-भर गिर रहे हैं किसी प्रिय का प्यार ले।**
> **आ गए घन मोतियों का हार ले।**

५४–बातें चलीं सारी रात तुम्हारी··· (पृष्ठ १२२-१२३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में मानवीय मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—पुरवाई=पूर्व दिशा से प्रवाहित होने वाली पवन। पारस=एक प्रकार का पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है। राग=प्रेम। गात=शरीर। सुरति=भोग विलास।

व्याख्या—कवि किसी युवा हृदय की मनोभावनाओं को अंकित करते हुए कहता है कि एक युवा प्रेमी अपनी किसी प्रणयिनी को सम्बोधित कर कह रहा है कि प्रायः सम्पूर्ण रात तुम्हारे साथ प्रेमालाप होने का परिणाम यह हुआ कि प्रातःकाल तुम्हारे नेत्र जल्दी नहीं खुल सके अर्थात् प्रेमी प्रेमिका दोनों ही रात्रि में बहुत देर तक प्रेम पूर्ण बातचीत करते रहे और इसका परिणाम यह हुआ कि सुबह जल्दी जागरण संभव नहीं हो सका। कवि का कहना है पुरवा पवन के झकोरे जब शरीर को स्पर्श करते हैं तब जीवन में

एक प्रकार का जादू सा छा जाता है और यह देखकर कि समीप में ही पारस के सदृश्य प्रेमपूर्ण प्रिय मौजूद है प्रियतमा का कोमल शरीर रोमांचपूर्ण होकर काँपने लगता है। कवि कहता है कि यह जवानी रूपी बरसात भी विचित्र है क्योंकि इसमें भोग विलास की भावना प्रबल हो उठती है और इस अपरिचित जगत के प्रति आकर्षण बढ़ने लगता है तथा युवा हृदय अनेक सीखी हुई अनजानी बातों को जानने-समझने के लिए उत्सुक भी हो उठता है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में प्राकृतिक पीठिका में मानवीय मनोभावनाओं का अंकन करते समय कवि निराला ने यौवन काल में प्रणय की प्रबलता का होना स्वाभाविक माना है।

५५—काले काले बादल छाये······(पृष्ठ १२३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में राष्ट्र प्रेम की भावनाओं का यथातथ्य वर्णन किया है।

शब्दार्थ—कौंधी=चमकी। औंधी=उलटी। बिस=बिष, जहर। गाढ़ी=परिश्रम की, कठोर मेहनत की। निहत्थे=खाली हाथ, बिना किसी हथियार के। जत्थे=झुंड, दल।

व्याख्या—कवि निराला का कहना है कि काले-काले बादल आकाश में छा गए और उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो काले-काले नाग ही मँडलाये हों परन्तु वीर जवाहर नहीं आये। कवि कह रहा है कि बिजली चमक रही है और उसने औंधी खोपड़ी सीधी कर दी तथा सिर पर सरसर कर बादल छा रहे हैं परन्तु वीर जवाहर लाल अभी तक नहीं आये। कवि कहता है कि पुरवा हवा की फुफकारें ऐसी प्रतीत होती हैं मानो वे जहर की बौछारें छोड़ रही हों और हमारी दशा तो यह हो गयी है कि मानो हम किसी गुफा में समा गये हों परन्तु वीर जवाहर अब तक नहीं आये।

कवि कह रहा है कि दिन प्रति दिन वस्तुओं की कीमत बढ़ती जा रही है और ऐसा जान पड़ता है कि मानो मँहगाई की बाढ़ सी आ गयी हो। कवि का कहना है कि इस मँहगाई के कारण पास में जो कठोर मेहनत करने

के पश्चात कुछ पैसा था वह सब खर्च हो गया तथा हम भूखे-नंगे खड़े लज्जित हो रहे हैं परन्तु वीर जवाहर लाल नहीं आये। कवि कहता है कि हमारे झुंड आगे बढ़ते ही जा रहे हैं और समझ में नहीं आता कि हम अकेले ही बिना किसी हथियार के कैसे बच गये तथा बाट जोहते-जोहते हम भ्रमित से हो गये परन्तु वीर जवाहरलाल अभी तक नहीं आये।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्राकृतिक पीठिका में राष्ट्रीय भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। साथ ही निरालाजी का ध्यान समकालीन परिस्थितियों की ओर भी गया है और उन्होंने देश में प्रतिदिन बढ़ती हुई मँहगाई की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

५६-टूटी बाँह जवाहर की (पृष्ठ १२४)

संदर्भ—महाकवि निराला की प्रस्तुत कविता में सम-सामयिक घटनाओं का सांकेतिक चिणत्र हुआ है।

शब्दार्थ—निधि = खजाना, धरोहर। विधि = ब्रह्मा, विधाता। किस्मत = भाग्य।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि जवाहर की भुजा पर आघात होने से भुजा टूट गयी तथा पंडित की रनजिट लट बिखर गयी और लोगों का खजाना विधाता ने लूट लिया तथा पंडित का भाग्य ही फूट गया। कवि कहता है कि विद्या का सहारा भी चला गया और जो कंठ अभी तक सुरीले गीत गाता था वह गला अब असमर्थ हो गया। कवि कह रहा है कि जिस प्रकार मेघनाथ से युद्ध में आहत लक्ष्मण के लिए हनुमान संजीवनी बूटी ले आये थे उसी प्रकार आज भी लक्ष्मण आहत हो गया है परन्तु कोई भी उसके लिए उक्त बूटी नहीं ला सका। कवि का कहना है कि न जाने कब से बादलों का दल घेरा डाले हुए है और बिजली भी आँख तरेर रही है अर्थात् चमक रही है तथा झंडे ले लेकर पंडित की धी और बहूटी निकल पड़ी हैं।

टिप्पणी—इस कविता में सरल एवं सुबोध शब्दावली में अनूठी भावनाओं की योजना हुई है और यहाँ अनुप्रास अलंकार की छटा भी दर्शनीय है।

५७—खुला आसमान (पृष्ठ १२४-१२५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में विभिन्न मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

शब्दार्थ—जहान = संसार, सम्पूर्ण सृष्टि। भासमान = दिखाई देता हुआ, जान पड़ता हुआ। तले = नीचे।

व्याख्या—कवि का कहना है कि बहुत दिनों बाद खुला आसमान दिखाई दिया और धूप के दर्शन हुए तथा सम्पूर्ण संसार प्रसन्न हो गया कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि अब तक कोहरा पड़ रहा था और धुंध के कारण सम्पूर्ण सृष्टि स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई दे रही थी परन्तु अब कोहरा हट गया है और आसमान खुला हुआ होने के कारण धूप भी निकल रही है तथा सम्पूर्ण संसार प्रसन्न है। कवि कह रहा है कि इस खुले आसमान में दिशाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही हैं और पेड़ झलक रहे हैं तथा गाय, भैंस, भेड़ आदि पशु चरने के लिए निकल पड़े हैं तथा लड़के अब छेड़-छेड़कर खेल रहे हैं और लड़कियाँ घरों को सुशोभित कर रही हैं अर्थात् घर में ही दिखाई देती

कवि कहता है कि लोग गाँव-गाँव को चल पड़े हैं और कोई बाजार जा रहा है तथा कोई बरगद के नीचे जाँघिया लंगोटा पहने हुए दिखाई देता है तथा गाँव के सीधे-सादे पर हृष्ट-पुष्ट नवयुवकों से संभल कर रहना ही उचित है। कविता के अन्त में कवि कह रहा है कि पनघट में बहुत भीड़ हो रही है और किसी भी नारी को यह ध्यान नहीं रहा कि आज चूनरी भींग जायगी तथा वे सब खड़ी बातें करती हैं और उनके नेत्रों के सधे बान भी साथ-साथ चलते हैं।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी ने ग्रामीण जीवन का स्वाभाविक चित्रण किया है और यह कविता सरल एवं सुष्ठु शब्द योजना की दृष्टि से भी प्रशंसनीय है।

५८—आरे, गंगा के किनारे (पृष्ठ १२५-१२६)

संदर्भ—महाकवि निराला ने प्रस्तुत कविता में गंगा के तट का सुन्दर भावपूर्ण वर्णन किया है।

शब्दार्थ—झाऊ = एक प्रकार का छोटा झाड़। ठाट = सजावट। गेह = घर।

व्याख्या—कवि का कहना है कि गंगा के किनारे चलना चाहिए और यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस गंगा के तट पर एक ओर झाऊ के वन हैं तथा पास ही पगडन्डी भी है। साथ ही दूर-दूर तक रेत ही रेत दिखाई देती है और फूँस की एक छोटी सी झोपड़ी में बैठे हुए बाबा झार-बहार कर रहे हैं। कवि कहता है कि ऊपर हवाबाज अर्थात् वायुयान आवाज करते हुए चले जाते हैं। और इन वायुयानों में डाक एवं सैनिक आते जाते हैं तथा नीचे धरती पर लोग इन हवाई जहाजों को मन मारे देख रहे हैं।

कवि गंगा के तट का वर्णन करते हुए कह रहा है कि एक ओर रेलवे का पुल है और अपना दिल तो वहाँ है, जहाँ कुआँ है तथा मन बार बार इस गंगा तट से उठने का करता है पर इच्छा कहीं भी जाने को नहीं होती। कवि का कहना है कि पंडों के सुन्दर-सुन्दर घाट बने हुए हैं और पंडों ने तिनके की टट्टियाँ लगा रखी हैं पर उनकी सजावट बहुत सुन्दर है। कवि कहता है कि यात्री इन पंडों के पास जाते हैं और श्राद्ध भी करते हैं तथा ये पंडे यही कहते हैं कि उन्होंने न जाने कितनों को मुक्ति दिला दी। कवि कह रहा है कि इनमें कुछ साधक हैं और कुछ को जीवन का अनुभव भी है तथा कुछ ने अध्ययन भी किया है। साथ ही कुछ के नेत्रों में तेज है और कुछ में छाया है तथा कुछ उस छवि के साथ घर जा रहे हैं।

टिप्पणी—इस कविता में गंगा नदी के तट का कवि ने अत्यधिक सजीव चित्रण किया है। और पंडों आदि की मनोवृत्तियों पर भी व्यंग्य किया है।

५९—बाहर मैं कर दिया गया हूँ (पृष्ठ १२६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में मानवीय मनोभावों का कुशल निरूपण किया है।

शब्दार्थ—भीतर=यहाँ आंतरिक हृदय से अभिप्राय है। सहज वर=स्वाभाविक वरदान। अनश्वर=अविनाशी। सस्वर=स्वर सहित, स्वर पूर्वक।

व्याख्या—कवि का कहना है कि यद्यपि मैं बाहर कर दिया गया हूँ पर मेरा आंतरिक हृदय भर दिया गया है और उसमें पूर्णता ही है। कवि कहता है कि ऊपर वह बर्फ गल रही है और इस बर्फ के गलने से नीचे धरती पर यह नदी बह चली है तथा जिस तरह वृक्ष की सख्त शाखा पर नर्म कली खिल उठती है, उसी प्रकार मेरे कठोर शरीर में कोमल भावों की ही अधिकता है। कवि कह रहा है कि नेत्रों पर लज्जा का पानी है और अलग-अलग साज का राग बज रहा है तथा सूर्य की किरणों के प्रसार का रहस्य भी खुल गया। कवि का कहना है कि मुझे स्वाभाविक ही वरदान प्राप्त हुआ है पर मैं बाहर कर दिया गया हूँ। कवि का कहना है कि मैंने जब से भीतर बाहर और बाहर भीतर का अवलोकन किया है मैं अविनाशी हो गया हूँ तथा माया का यह साधन मुझे सस्वर प्रतीत होता है और ऐसा ही घर मुझे प्राप्त हुआ है तथा मैं बाहर कर दिया गया हूँ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला की कवि कल्पना का बहुत ही आकर्षक परिचय मिलता है।

६०—कुछ न हुआ······(पृष्ठ १२७)

संदर्भ—महाकवि निराला की प्रस्तुत कविता में सांसारिक विषयों के प्रति बहुत अधिक उदासीनता और रहस्यात्मक शक्ति के प्रति आसक्ति प्रकट की गयी है। साथ ही यह कविता कवि निराला के जीवन विषयक दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है और निराला जी का यही अटल विश्वास है कि वे रहस्यात्मक शक्ति की उपस्थिति में कष्ट एवं दुःखों के क्षणों में भी प्रसन्न रहेंगे।

कुछ न हुआ ·········हाथ यदि गहो। (पृष्ठ १२७)

शब्दार्थ—श्री=वैभव। नभ—आकाश, यहाँ जीवन से अभिप्राय है। तिमिर=अंधकार। अटे=समाप्त हो। लेश=किंचित, थोड़। गगनभास=आकाश का आभास।

व्याख्या—कवि रहस्यात्मक शक्ति के प्रति अपने अपार प्रीति का संकेत करते हुये कहता है कि यदि तुम केवल मेरे पास रहो तो मुझे सांसारिक सुख और वैभव की तनिक भी चाह नहीं है तथा यदि तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे सहारा दो तो मेरे जीवन रूपी आकाश के बादल भले ही न हटें पर मुझे इसकी कोई चिंता नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि कवि सांसारिक सुख और वैभव के लिये लालायित नहीं है और वह तो यही चाहता है कि उसे यदि रहस्यात्मक शक्ति का सहारा मिल जाय तो वह यही समझेगा कि उसे सब कुछ मिल गया। साथ ही उसके जीवन को भले ही विपत्ति रूपी बादल आच्छादित किये रहें और उसका भाग्यरूपी चन्द्रमा भी ढका रहे पर वह रहस्यात्मक शक्ति के सहयोग को पाकर ही संतुष्ट रहेगा। कवि कह रहा है कि मेरे जीवन में अंधकार रूपी दुःख रूपी रात्रि में यदि तनिक भी आकाश का प्रकाश न फैले तो भी मुझे कोई चिन्ता न होगी और यदि रहस्यात्मक शक्ति जीवन के इस बीहड़ पथ में मेरा हाथ पकड़ कर मुझे सहारा देगी तो मेरा सम्पूर्ण जीवन सुख और वैभव से युक्त रहेगा। कवि रहस्यात्मक शक्ति को सम्बोधित कर कहता है कि तुम्हारी उपस्थिति में मुझे घोर आपत्तियाँ भी अस्तित्वहीन जान पड़ेगी और मेरे अधर भी हमेशा हँसते रहेंगे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने रहस्यात्मक शक्ति के प्रति अपनी स्वाभाविक निष्ठा व्यक्त की है और स्वयं उनके जीवन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे रहस्यात्मक शक्ति के सहयोग का अनुभव कर सांसारिक बाधाओं से कभी भी विचलित नहीं हुआ।

बहु-रस-साहित्य विपुल·········कथा यदि कहो। (पृष्ठ १२७)

शब्दार्थ—विपुल = अधिक। मंद = मूर्ख या कम बुद्धि वाला। काव्यानुमान = काव्य प्रतिभा।

व्याख्या—कवि रहस्यात्मक शक्ति के प्रति अपने अपार प्रेम का परिचय देते हुए कहता है कि मैंने अनेक रसों से पूर्ण साहित्य का अध्ययन नहीं किया और लोगों ने मुझे यदि कम बुद्धिवाला कहा तो मुझे इसकी कोई चिन्ता भी नहीं है। कवि का कहना है कि यदि मेरी काव्य-प्रतिभा न बढ़ सकी और मेरा

ज्ञान जहाँ का तहाँ रह गया तो भी मुझे इस बात का कोई दुःख नहीं है पर यदि तुम अपनी कथा कहो तो मैं उसे अच्छी तरह समझ सकता हूँ क्योंकि उसे समझने की मुझमें पूर्ण प्रतिभा है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने यह संकेत करना चाहा है कि काव्य निर्माण के लिए अधिक ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक नहीं है और यदि रहस्यात्मक शक्ति की कृपा हो तो व्यक्ति सृष्टि के सभी रहस्यों को सरलता से समझ सकता है। इस प्रकार कवि ने यहाँ यह स्पष्ट करना चाहा है कि यदि रहस्यात्मक शक्ति अर्थात् अव्यक्त शक्ति अपनी कथा उसे सुनाती है और जीवन एवं जगत की रहस्यात्मक गूढ़ अनुभूतियों को व्यक्त करती है तो वह समझ सकता है तथा उसकी ही प्रेरणा से काव्य निर्माण में सफल हो सकता है।

६१—मरण दृश्य (पृ० १२७-१२८)

सन्दर्भ—महाकवि निराला ने 'मरण दृश्य' कविता में किसी अलौकिक प्रियतमा को संकेत कर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए कहा है कि भले ही इस संसार में कवि को उस अलौकिक प्रियतमा से मुक्ति मिल सकती हो पर उसके स्मरण में संसार की बाधाओं का जहर उसका कुछ भी अहित नहीं कर सकता है।

कहा जो न··········जलधि जीवन को। (पृष्ठ १२७-१२८)

शब्दार्थ—नित्य नूतन=हमेशा नवीन रहनेवाली। सीमाहीन=असीम। व्यथा=पीड़ा, दुःख। निधि=खजाना। विहग=पक्षी। मीन=मछली। मुक्त =खुला हुआ, स्वच्छंद। अम्बर=आकाश। जलधि=सागर।

व्याख्या—कवि अपनी किसी अलौकिक प्रियतमा को संकेत करते हुए कह रहा है कि हे प्रिये; मैं तुमसे जो कुछ नहीं कह पाया, उसे तुम कहो और मेरे कृतित्व एवं जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उन शेष अंशों को भी तुम व्यक्त कर दो, जिन्हें मैं नहीं कह पाया। कवि का अपनी अलौकिक प्रियतमा से कहना है कि हे प्राण; तुम शाश्वत रहकर नवीनता को धारण करने वाली हो अतः तुम अपने नवीन गीतों की रचना करो जिससे कि इस सीमाहीन

संसार और अपने जीवन की समस्त बाधाओं से संघर्ष करते समय मुझमें निराशा और भय का आगमन न हो सके। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि यह सीमाहीन संसार अति विस्तृत है और वह अलौकिक प्रियतमा उसे अर्थात् कवि को व्यथा से दीन बनाकर बाँधती जाती है तथा यह भी कहती है कि मैंने दुःख के अनेक एवं असंख्य रूपों में दुःख का यह खजाना मिला दिया है। साथ ही वह अलौकिक प्रियतमा कवि से यह भी कहती है कि उन्मुक्त होकर स्वच्छंद आकाश में विचरण करनेवाले पक्षी के पंख लग चुके हैं अर्थात् अब उसमें जगत के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया है और उसका जीवन जल की मछली के समान हो गया है। उस अलौकिक प्रियतमा का कहना है कि कल्पना एवं स्वप्न में विचरण करनेवाला आकाश दुःख और यथार्थ जीवन के सागर में परिणत हो गया है तथा जीवन अब गहनतम अनुभूति से पूर्ण और अगाध हो गया है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में व्यंजना शक्ति का प्रयोग दर्शनीय है और परिवर्तित जीवन की वास्तविकता का अतिव्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अलौकिक प्रियतमा और प्रियतम की अति महानता एवं उदारता का भी आकर्षण किया गया है तथा अनुप्रास एवं उपमा नामक अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है।

सकल साभिप्राय............न डरो। (पृष्ठ १२८)

शब्दार्थ—सकल = सभी, सम्पूर्ण। साभिप्राय = अभिप्राय सहित। गरल = विष, जहर। निरुपाय = असहाय, लाचार।

व्याख्या—कवि रहस्यमयी सत्ता को सम्बोधित करते हुए कहता है कि तुम्हारी सभी बातें अभिप्राय से युक्त थीं पर मैं अपनी अज्ञानता के कारण उन्हें समझ नहीं सका और इसीलिए मुझे इस संसार में दुःख सहना पड़ा। कवि रहस्यमयी सत्ता से कह रहा है कि तुमने किसी समय स्नेह से मुझे चूमा था और इन्हीं चुम्बनों के कारण मैं इस संसार के प्रति आकृष्ट हुआ था पर तुम्हारा आज वही स्नेह मुझे सुख की जगह दुःख प्रदान कर रहा है और मुझे जहर के समान प्रतीत हो रहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि उस अलौकिक

प्रियतमा के स्नेह चुम्बन में इतनी शक्ति है कि वह प्रिय को जहर पीने की शक्ति प्रदान करती है। कवि का कहना है कि वह अलौकिक प्रियतमा उसे वियोग-व्यथा से दुःखी देखकर हँसते हुए कहती है कि हे प्रिय; जीवन में इसे स्वीकार करो क्योंकि तुम इसे दूर करने में असमर्थ हो। कवि रहस्यमयी सत्ता से कहता है कि तुम मुझसे कह रही हो कि मैं मुक्ति हूँ और मृत्यु में भी आई हूँ अतः तुम मृत्यु की स्थिति में भी भयभीत न हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि जीवन में सुख के सदृश्य दुःख को भी उसी भाव से स्वीकार करना चाहिए और मृत्यु से भयभीत होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है बलिक जो शक्ति सुख में साथ रहती है, वही मृत्यु में भी साथ देती है।

६२—मैं अकेला (पृ० १२८-१२९)

संदर्भ—वस्तुतः 'मैं अकेला' कविता में महाप्राण निराला की आत्मानुभूतियों का ही चित्रण हुआ है। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस कविता के सृजन के समय निराला जी की आयु ४४ (चौवालिस) वर्ष की थी और सतत संघर्षमय जीवन व्यतीत करने के कारण जीवन और जगत के प्रति कवि निराला का जो दार्शनिक दृष्टिकोण निर्मित हुआ, उसका प्रभाव इस कविता में स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। इस प्रकार 'मैं अकेला' में कवि निराला अपने करुण जीवन कथा की ओर ही संकेत करते हैं।

मैं अकेला·········हट रहा मेला। (पृष्ठ १२८-१२९)

शब्दार्थ—दिवस = दिन, जीवन। सांध्य वेला = संध्या का समय, जीवन का अंत, वृद्धावस्था। निष्प्रभ = कांतिहीन, ज्योतिहीन, प्रभावरहित। मेला = जीवन या जग के प्रति आकर्षण।

व्याख्या—कवि जीवन के प्रति निराशा व्यक्त करते हुए कह रहा है कि अब इस जीवन में मैं अकेला रह गया हूँ और जीवन के अंतिम छोर पर पहुँच कर अपने जीवन के अंतिम समय अर्थात् वृद्धावस्था को देख रहा हूँ। कवि का कहना है कि मेरे आधे बाल पक गये है और गालों में अब पहले के समान कांति नहीं रह गयी तथा मेरी गति भी अब मंद पड़ गयी है अर्थात् मैं अब

पहले के समान संघर्षों का सामना करने की शक्ति नहीं रखता। कवि कह रहा है कि मेरे मन से जीवन का आकर्षण भी अब समाप्त हो रहा है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में अपने जीवन की वास्तविक दशा का प्रभावशाली चित्रण किया है।

जानता हूँ············नहीं भेला। (पृष्ठ १२९)

शब्दार्थ—भेला = नाव, नौका।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मुझे जो कुछ नदी और झरने प्राप्त करने थे मैं उन सबको पार कर चुका हूँ अर्थात् अपने जीवन में अनेक संघर्षों को झेलता हुआ अब इस वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहा हूँ। कवि का कहना है कि मैं यह देखकर स्वयं ही हँस रहा हूँ कि मेरे पास इस संसार सागर को पार करने के लिए कोई नौका भी नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि कवि ने जीवन के संघर्षों को बिना किसी की सहायता के अपने ही पुरुषार्थ से पार किया है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने सरल एवं सुबोध शब्दावली में अपने पुरुषार्थ एवं संघर्षशील व्यक्तित्व का चित्र अंकित किया है।

६३—स्नेह निर्झर बह गया है (पृ० १२९-१३०)

सन्दर्भ—महाकवि निराला ने 'स्नेह निर्झर बह गया है' कविता में नश्वरता की अभिव्यक्ति कर, अपने उपेक्षित एवं निराश जीवन की ओर संकेत किया है।

स्नेह निर्झर बह············दह गया है। (पृष्ठ १२९)

शब्दार्थ—स्नेह निर्झर = प्रेम का झरना। पिक = कोयल। शिखी = मोर। दह गया है = जल गया है।

व्याख्या—कवि जीवन की नश्वरता की ओर संकेत करते हुए कह रहा है कि मेरे हृदय में जो प्रेम का झरना बहा करता था वह अब बंद हो गया है और मेरा शरीर रेत के ढेर के समान रह गया है। कवि का कहना है कि आम की यह सूखी हुई डाल, जो सामने दिखाई दे रही है, स्वयं यह कहती है कि अब मेरे पास न तो कोयल आती है और न मोर तथा मैं अब उस लिखी

हुई पंक्ति के समान हूँ जिसका कोई अर्थ नहीं होता। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मैं अब निरुपयोगी हो गया हूँ और मेरे जीवन से यौवन के सुखद दिन बीत चुके हैं। इस प्रकार कवि कह रहा है कि अब मेरा जीवन जल चुका है और उसमें मधुरता एवं सरसता नहीं रही।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि ने अनुप्रास एवं उपमा अलंकार की सहायता से अपने व्यक्तिगत जीवन की सत्य अनुभूतियों का चित्रण किया है और अपने जीवन की निराशा एवं उदासीनता की ओर संकेत भी किया है।

दिये हैं मैंने............ढह गया है। (पृष्ठ १२९)

शब्दार्थ—प्रभा = ज्योति, प्रकाश। चल = चंचल, यहाँ चलायमान संसार से अभिप्राय है। अनश्वर = जिसका नाश नहीं होता। ठाट = वैभव।

व्याख्या—कवि आम की सूखी डाल के माध्यम से कहता है कि मैंने ही इस संसार को फूल और फल दिये हैं तथा अपनी ज्योति से इस संसार को चकित किया है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मैंने आम की डाल के सदृश्य मन एवं शरीर दोनों की तृप्ति की है और उसके फूल एवं फल की उपयोगिता के समान अपनी ज्योति से इस चंचल संसार को चकित कर दिया है। आम की एक सूखी डाल के माध्यम से कवि का कहना है कि मैंने सोचा था कि यह समय मेरे फूलने फलने का है और मैं हमेशा इसी प्रकार फूलता फलता रहूँगा पर मेरे जीवन का सम्पूर्ण वैभव एक दिन नष्ट हो गया।

टिप्पणी—कवि ने यहाँ यह स्पष्ट करना चाहा है कि सामान्यतया सर्वसाधारण व्यक्ति को यही विश्वास रहता है कि वह हमेशा ही सम्पन्न स्थिति में रहेगा परन्तु उसका यह विश्वास सत्य नहीं हो पाता। साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

अब नहीं आती............कह गया है। (पृष्ठ १३०)

शब्दार्थ—पुलिन = किनारा। निरुपमा = अत्यंत सुन्दरी। अमा = अँधेरी रात। अलक्षित = उपेक्षित।

व्याख्या—आम की सूखी डाल कह रही है कि अब मेरे पास किनारे की काली घास पर बिछी हुई पत्तियों पर बैठने के लिए वह अत्यंत सुन्दरी

प्रियतमा भी नहीं आती। आम की सूखी डाल का कहना है कि अब मेरे जीवन में केवल अँधेरी रात का सघन अंधकार ही रह गया है और कवि भी यही कहता है कि मैं इस संसार में अब उपेक्षित ही हूँ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने आम की सूखी डाल के माध्यम से यह संकेत करना चाहा है कि समय के अंतराल में सभी का महत्व रहता है। कवि अपने जीवन और जगत की इस वास्तविकता का उल्लेख भी करता है कि उसने भले ही संसार की भलाई के लिए बहुत कुछ किया हो पर वह इस संसार में उपेक्षित ही रह गया। साथ ही यहाँ अनुप्रास अलंकार की सुन्दर योजना भी हुई है।

६४—गहन है यह अन्ध कारा (पृ० १३०)

संदर्भ—कवि निराला ने 'गहन है यह अन्ध कारा' कविता में यह स्पष्ट करना चाहा है कि सम्पूर्ण संसार स्वार्थमय है और यही कारण है कि हमारी बुद्धि एवं मानवीयता समाप्त सी हो गयी है। इस प्रकार कवि ने इस कविता में व्यक्तिगत निराशा के स्थान पर निवृत्तिमार्गी दार्शनिक चिन्तन को प्रधानता देते हुए यही संकेत किया है कि अंधकारग्रस्त चेतना के लिए सहृदयता और प्रकाश की शरण आवश्यक है।

गहन है·········**नहीं तारा।** (पृष्ठ १३०)

शब्दार्थ—गहन = अधिक गहरा, अथाह, गम्भीर, भयावह। कारा = जेल, बंदीगृह। अवगुंठन = परदा। लुंठन = नाश, चोरी। जड़ = अज्ञानता। दिनकर = सूर्य। शशधर = चन्द्रमा।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि यह संसाररूपी भयंकर जेल अंधकार से पूर्ण है और इसमें स्वार्थों का परदा डाल दिया गया है। कवि कहता है कि स्वार्थ की अधिकता के कारण ही हमारा नाश हुआ है और यह अज्ञानता रूपी दीवार मेरे जीवन को घेर कर खड़ी हुई है तथा मेरे चेतनामय जीवन का लोप हो गया है। कवि का कहना है कि इस संसार में लोग मुझ से सीधे मुँह बात भी नहीं करते और मेरे प्रति अब किसी का भी आकर्षण नहीं रहा तथा मेरे

जीवन रूपी आकाश में मुझे सूर्य, चन्द्रमा और तारे आदि दिखाई नहीं देते। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि उसके जीवन में निराशारूपी अंधकार छाया हुआ है और अब जीवन से निश्चित दिशा एवं आशा का पूर्णतया लोप हो गया है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की नैराश्य भावना का चित्रण हुआ है और मुहावरों के प्रयोग से अनूठी प्रभविष्णुता भी आ गयी है।

कल्पना का ही..........श्यामल किनारा। (पृष्ठ १३०)

शब्दार्थ—तनु=शरीर। रुद्र=भयानक, भयंकर।

व्याख्या—कवि कहता है कि अब उसके जीवन में कल्पना का अपार सागर घिर आया है और यह सागर उनके शरीर को घेर कर गरजता है तथा वह बहुत भयानक प्रतीत होता है। कवि का कहना है कि इस विषम स्थिति में मेरी समझ में कुछ नहीं आता और न मुझे श्याम रंग का दूर स्थित किनारा ही दिखाई देता है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि कल्पना में भी उसके जीवन में भयंकरता विद्यमान रहती है और उसकी बुद्धि, आशा एवं चेतनता का उपाय ढूंढने में असमर्थ हो जाने के कारण उसे जीवन में अब केवल निराशा ही निराशा दीख पड़ती है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि जीवन में उनकी कितनी गहरी अनुभूति हो सकती है और उसकी व्याप्ति भी कितनी अधिक हो सकती है।

प्रिय मुझे..........हृदय हारा। (पृष्ठ १३०)

शब्दार्थ—देह=शरीर। वंचित=अलग। गेह=घर, गृह।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे प्रिय, तुम मुझे वह शारीरिक चेतना प्रदान करो जिससे मुझे अपने छोड़े हुए घर की याद बनी रहे अर्थात् मुझे पुरानी बातों का स्मरण होता रहे। कहने का अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति में अपने शरीर एवं परिवार के प्रति आकर्षण का भाव जाग्रत होगा तथा प्राण एवं जगत के प्रति आशा, चेतना और अनुराग की भावना होगी तब वह—व्यक्ति—अज्ञानतारूपी जेल में रहकर भी अपना मूल स्थान न भूल सकेगा।

कवि कहता है कि मैं अपने उस पूर्वजन्म के घर को खोज खोज कर भी अभी तक न पा सका और उसे ढूँढने में अब मेरा हृदय पूर्णतया हार चुका है ।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की अदम्य स्नेह भावना का चित्रण हुआ है ।

६५–मरण को जिसने वरा है (पृ० १३१)

संदर्भ—कवि निराला ने 'मरण को जिसने वरा है' कविता में मृत्यु को सस्नेह गले लगाकर उसका हार्दिक अभिनन्दन करना चाहा है । यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इस कविता में अन्य छायावादी कवियों से कवि निराला का स्वर सर्वथा पृथक् जान पड़ता है और उनकी अद्वैतवादी दार्शनिक चेतना भी इस कविता में विद्यमान है । साथ ही यह कविता महाप्राण निराला के संघर्षशील ओजस्वी एवं पुरुषार्थी व्यक्तित्व का भी परिचय देती है क्योंकि मृत्यु को सभी सरलतापूर्वक नहीं अपनाते ।

मरण को जिसने············हरा है । (पृष्ठ १३१)

शब्दार्थ—मरण = मृत्यु । वरा है = स्वीकार किया है, अपनाया है । जीवन भरा है = जीवन को पूर्ण किया है, जीवन की सार्थकता है । परा = लौकिक या सांसारिक उपलब्धि । अंक = गोद । यशोधरा = यहाँ यश को धारण करनेवाली पृथ्वी से अभिप्राय है । सुकृत = पुण्य । विसिंचित = सिक्त, सींचा हुआ । कल्प = कल्पवृक्ष, एक प्रकार का वृक्ष जो मनुष्य की प्रत्येक मनोकामना को पूर्ण करता है । उपवन = बगीचा, वाटिका । निस्तन्द्र = चेतना, चितवन । चयन = एकत्र, इकट्ठा ।

व्याख्या—कवि का कहना है कि जिसने मृत्यु को स्वीकार किया है अर्थात् जिसे मृत्यु का कभी भी भय नहीं हुआ उसका जीवन सार्थक है और उसका लौकिक उपलब्धियों पर भी अधिकार है तथा सत्य एवं यश को धारण करने-वाली पृथ्वी भी उसकी गोद में रहती है । कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मृत्यु से निर्भयता की उपलब्धि ही व्यक्ति के जीवन की सार्थकता है और उसी व्यक्ति को लौकिक उपलब्धियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं तथा सत्य और

यश को धारण करनेवाली धरती भी वही पूर्ण सुख प्राप्त कर सकती है। कवि कह रहा है कि मृत्यु को स्वीकार करनेवाले व्यक्ति की चेतन चितवन का चयन करने के लिए संसार के उपवन में पुण्य के जल से सींचा गया कल्प वृक्ष भी थोड़ा बहुत हरा भरा रहता है अर्थात् मृत्यु को अपनानेवाले व्यक्ति के पुण्य एवं चेतना से सम्पूर्ण सृष्टि आनन्द और नवीन जीवन प्राप्त करने में सफल रहती है।

गिरिपताक..........कोमल करा है। (पृष्ठ १३१)

शब्दार्थ—गिरिपताक=पहाड़, पर्वत। उपत्यका=तराई, घाटी। हरित =हरा। तन्वी=कोमलांगी। पुण्य भरणा=पुण्यों को अपनाने में समाहित करनेवाली। वंचित=अलग। आमर्ष=ईर्ष्या। करा=हाथ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि पहाड़ों और उनकी तराई पर हरी घासों से घिरी हुई जो कोमलांगी खड़ी हुई दीख रही है, वह उसी के पुण्यों को भरण करनेवाली अप्सरा है अर्थात् कवि के विषम एवं बाधा युक्त जीवन तथा अनेक संघर्षों से पूर्ण जीवन में सुकृति के लगे फूले फलों को अपने में भरण करनेवाली यह धरती उसके पौरुषमय जीवन की अर्चना के हेतु स्तुति करनेवाली अप्सरा ही जान पड़ती है। कवि का कहना है कि मरण को स्वीकार करनेवाले के लिए सांसारिक उपलब्धि स्वयं अप्सरा के समान आती है पर यह साधना को और ही अधिक गति प्रदान करने के लिए आती है। कवि कह रहा है कि जब संसार में मैं प्रेम से वंचित हुआ और मेरे जीवन में ईर्ष्या के क्षण आने के कारण मेरा जीवन अशांत हुआ तब जिन कारणों ने मुझे स्पर्श कर चेतना या मानसिक स्वस्थता प्रदान की है वे किरणें उसी सत्ता का एक कोमल हाथ है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि 'मरण को जिसने वरा है' उसे स्वयं रहस्यात्मक सत्ता ही अपने उपकरणों द्वारा मानसिक स्थिरता एवं स्वस्थता प्रदान करती है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला ने यह स्पष्ट करना चाहा है कि 'मरण को जिसने वरा है' के पुण्यों को भरण करने के लिए ही सम्पूर्ण सृष्टि सुन्दर एवं माधुर्ययुक्त रूप में स्वयं प्रस्तुत रहता है और उस व्यक्ति को

मानसिक शांति भी प्रदान करती है। साथ ही इन पंक्तियों में अनुप्रास, उपमा एवं उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की सफल योजना भी हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—हमारे यहाँ तो कुछ कवियों ने मृत्यु को जीवन का अनिवार्य सत्य ही माना है और श्री अनूप शर्मा के कथनानुसार—

"मृत्यु क्या है ? जीवन के मद का उतर जाना,
जीवन क्या ? कुछ ही दिनों का हेर फेर है।

६६. दलित जन पर करो करुणा (पृ० १३१-१३२)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'दलित जन पर करो करुणा' नामक कविता में भगवान की करुणा के प्रभाव, महत्ता और शक्ति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए भगवान की करुणा की याचना की है।

दलित जन············शक्ति अरुणा। (पृष्ठ १३१)

शब्दार्थ—दलित = दुःखी। करुणा = दया।

व्याख्या—कवि भगवान् से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे भगावन्, हमारे समान दुःखी प्राणियों पर कृपा करो और हम जैसे गरीब, दुःखी प्राणियों का दुःख दूर करने के लिए तुम्हारी रक्षक शक्ति तैयार रहे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में भक्ति भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है।

हरे तन मन············तरुणा। (पृष्ठ १३२)

शब्दार्थ—पावन = पवित्र। मनोभावन = मनोहर, सुन्दर।

व्याख्या—कवि ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे ईश्वर ; तुम्हारी कृपा हमारे तन मन के दोषों को दूर करे और उनमें पवित्र प्रीति भरे तथा हमारा मुख मधुर और मनोहर हो। कवि का कहना है कि हे भगवान ; हमारी सहज चितवन पर तुम्हारी तरुण किरणें तरंगित हों।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार है और ईश्वर की कृपा एवं स्नेह के प्रति निष्ठा भी व्यक्त हुई।

देख वैभव············भक्ति वरुणा। (पृष्ठ १३२)

शब्दार्थ—वैभव = धन सम्पत्ति। नत = झुका हुआ। समुद्धत = चंचल। भक्ति वरुणा = भक्ति की धारा।

व्याख्या—कवि भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे भगवान ; मुझे ऐसा वरदान दो कि सांसारिक वैभव के सामने मेरा सिर न झुके और मेरा चंचल मन हमेशा स्थिर रहे तथा मेरे जीवन में हमेशा तुम्हारी भक्ति धारा या भक्ति की वरुणा बहती रहे।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में अनुप्रास अलंकार की सुन्दर योजना हुई है। साथ ही कवि निराला ने यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि सांसारिक वैभव के प्रति उपेक्षा दिखाने पर ही ईश्वर की भक्ति सम्भव है।

६७. मुसीबत में कटे हैं दिन (पृष्ठ १३२-१३३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने स्वानुभूतियों का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

शब्दार्थ—मुसीबत = कठिनाइयों, आपत्तियों। राहु = राहू नामक एक क्रूर ग्रह जो ज्योतिष की दृष्टि से हानिदायक है। घात = आघात, प्रहार। हस्ती = ताकतवर, बलवान। पस्त = पराजित। गुजरती = जो बीत रही है या बीत गयी है। माजरा = स्थिति। गफलत = धोखा।

व्याख्या—कवि का कहना है कि जीवन में अनेक कठिनाइयों को सहना पड़ा और न केवल कठिनाइयों में दिन व्यतीत हुए हैं बल्कि रातें भी कठिनाइयों में ही बीतती रही हैं। अतएव ऐसा जान पड़ता है कि राहू लगातार चन्द्रमा और सूर्य पर आक्रमण कर रहा है। कहा जाता है कि राहू चन्द्र और सूर्य को अपना शत्रु समझता है तथा वह दोनों पर आक्रमण करने के लिए अवसर ढूँढता रहता है और अवसर मिलते ही इन दोनों पर आक्रमण भी करता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कवि ने मुसीबतों की उपमा राहू के प्रहारों से की है और स्वयं को उक्त प्रहारों से पीड़ित चाँद और सूरज माना है।

कवि कह रहा है कि जो किसी बड़ी शक्ति या ताकतवर के साथ हो जाते हैं और यह सोचने लगते हैं कि उनका बाल भी बाँका नहीं होगा, वे ही कठिनाई का अवसर आते ही हिम्मत हार बैठते हैं और पराजित हो जाते हैं। परन्तु इन्हीं को यह भी समझ में आता है कि वास्तविकता क्या है ?

कवि का कहना है कि जो जीवन में आगे कुछ करना चाहते हैं, उनकी बीती हुई जिन्दगी के साथ लोग हरकत से भरी बातें भी करते हैं परन्तु जीवन पथ पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने वालों को कोई भी नहीं रोक पाता।

कवि कहता है कि यह देखकर भले ही अचरज होता है कि कठोरता के समक्ष कोमलता हमेशा दब जाती है परन्तु यह स्थिति पूर्णतया सत्य है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि बलवान शरीर के व्यक्ति बलि पर झपटने के लिए आतुर रहते हैं अर्थात् जो व्यक्ति शक्तिशाली हैं उनकी दृष्टि में निर्बलों का तनिक भी महत्व नहीं और कमजोर तो हमेशा बलवान लोगों द्वारा चूसे जाते हैं।

कवि का कहना है कि यह दुनिया सुख की निद्रा में मग्न है और जो लोग जाग रहे हैं वे भी अब धोखे में ही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इस संसार के अधिकांश व्यक्ति बेसुध हैं और उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहता कि वास्तविकता क्या है ? अन्त में कवि कहता है कि लोगों को न तो अपने घर की सुधि ही रह गयी है और न उनके हृदय में स्नेह की भावना ही दिखाई देती है अर्थात् लोगों को केवल अपने स्वार्थ की ही चिन्ता है।

टिप्पणी—इस कविता में निरालाजी का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है और हम देखते हैं कि कवि निराला ने इन पंक्तियों में उर्दू शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है परन्तु कहीं भी दुरूहता नहीं है।

६८. स्वर के सुमेरु से······(पृ० १३३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—शीकर=पानी की बूंदें। मंजरित=नयी कोंपल निकलना। अविरत=लगातार।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि स्वर के सुमेरु, झरझरकर शब्दोंरूपी पानी की बूंदें एकत्र हो गयी हैं और वृक्षों की डालें कर फैलाए खड़ी हैं तथा लताएँ भी पल्लवित हो रही हैं। साथ ही वन-जीवन में सुन्दर समय फैल गया है और वृक्ष बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रकृति के

प्रसार का सुन्दर समय आ गया है और जंगलों में वृक्ष विकसित हो रहे हैं। कवि का कहना है कि चम्पा का फूल खिल रहा है और सरोवर में कमल भी खिले हुए हैं तथा किनारे पर सुवर्ण के रंग वाली सुन्दरी युवती रंगी हुई गागर भर रही है। कवि कहता है कि सैकड़ों पक्षी स्वाभाविक रूप में कलरव कर रहे हैं और नदी लगातार प्रवाहित होती जान पड़ती है तथा नाद की उसी वीणा से मानव जीवन भी झंकृत हो उठता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक छटा का मनोमुग्धकारी वर्णन हुआ है।

६६. शुभ्र आनन्द आकाश…(पृष्ठ १३४)

संदर्भ—महाकवि निराला ने प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक दृश्यों का यथातथ्य चित्रण किया है।

शब्दार्थ—अमल = स्वच्छ, निर्मल। सहज = स्वाभाविक। जन्तु = जानवर। बालुका = बालू, रेत। समीरण = पवन, वायु। हाट = बाजार। बाट = मार्ग, राह।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि सूर्योदय का समय हुआ और सूर्य ने जब अपनी किरणों का गीत गाया अर्थात् किरणों का प्रसार किया तब आकाश पर शुभ्र आनन्द सा छा गया और सफेद रंग के सैकड़ों पंखुड़ियों से युक्त स्वच्छ कमल विकसित हो गए तथा पक्षियों का समूह मधुर गीत गाने लगा। कवि का कहना है कि जब भयंकर जानवरों ने सूर्य के चरणों की ध्वनि सुनी अर्थात् सूर्योदय होने पर उन्हें दिन का प्रकाश फैलता दिखाई दिया तब उक्त जानवरों के मन में स्वाभाविक ही शंका उत्पन्न हुई तथा वे डरकर छिप गये। कवि कहता है कि प्रातःकाल होते ही भक्त लोग गंगा नदी में प्रेमपूर्वक स्नानकर अपने को पवित्र अनुभव करने लगे और शरीर का पालन करनेवाली सूर्य की किरणों का प्रसार होने लगा तथा सुखद वायु प्रवाहित होने लगी। कवि कह रहा है कि चाहे बाजार हो या मार्ग हो और चाहे ग्रीष्म हो या शीत का मौसम हो पर सर्वदा ही लोगों के कंठ मधुर पाठ रटते से जान पड़ते हैं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में प्रकृति और मानव का अभिन्न सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है तथा अनुपम शब्दमाधुरी के भी दर्शन होते हैं।

७०. बीन की झंकार कैसी...... (पृष्ठ १३४-१३५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में निरालाजी ने प्राकृतिक पीठिका में मानवीय मनोभावनाओं की कुशल अभिव्यक्ति की है।

शब्दार्थ—पंकज = कमल। पंक = कीचड़। विमल = स्वच्छ, निर्मल। दिगन्त = दिशाएँ। भ्रमर = भँवरा। उन्मद = मतवाला, पागल। निर्मम = निष्ठुर। प्रकृत = स्वाभाविक। काया = शरीर, देह।

व्याख्या—कवि का कहना है कि हमारे मन में न जाने कैसी बीन की झंकार बस गयी है और इस सृष्टि के नेत्र स्वच्छ हो गये तथा रवि, चन्द्र एवं तारों का रहस्य भी स्पष्ट हो गया। कवि कहता है कि जिस प्रकार शरदऋतु में सरोवर में कमल विकसित होते हैं उसी प्रकार हृदय में स्वच्छ एवं शुभ्र भाव विकसित हो रहे हैं और विभिन्न दिशाओं से मतवाले भँवरों का समूह कमल पुष्प का रस पान करने के लिए एकत्र हो रहा है। कवि कह रहा है कि पवन के हृदय में प्रेम का मन्द कम्पन विद्यमान है और जो जगत सुप्ति के कारण निष्ठुर हो गया है उसे यह पवन जागरूक कर रहा है तथा सभी लोग हारकर भी विजयी हो गये और वे विजयी होकर भी पराजित हो गये। कवि कहता है कि विज्ञान ने इस सृष्टि में अपूर्व माया सी भर दी है और प्रकाश की छाया सी फैल रही है तथा हृदय धन से प्रिया की स्वाभाविक देह मिलकर भी पृथक् हो गयी और दिशा रूप वधुओं ने मलिनतारूपी मद को समाप्त सा कर दिया।

टिप्पणी—इस कविता में कवि निराला ने अपनी कल्पना शक्ति का यथेष्ट परिचय दिया है और यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इन पंक्तियों में कल्पना एवं कवि सत्य का अद्भुत समन्वय दीख पड़ता है। विचारक कहते भी हैं 'निस्संदेह कल्पना कवि' का प्रधान संबल है किन्तु वह कल्पना को पुट देकर सत्य को ग्राह्य एवं प्रेषणीय बनाता है, उसे विकृत एवं घृणित नहीं बनाता है। कल्पना सत्य की विघातिनी नहीं प्रत्युत श्रेय को प्रेय बनाती है। आचार्य शुक्ल

के अनुसार कविता का कार्य अर्थग्रहण नहीं, बिम्बग्रहण है। कवि सत्य को कल्पना के सहारे हमारे मानस पटल पर अंकित करना चाहता है।...... कल्पना के द्वारा साहित्य में उर्वरा शक्ति और रागात्मकता का संचार होता है, जिससे साहित्य साहित्य बना रहता है, अन्यथा कविता, विज्ञान तथा इतिहास में कोई अन्तर ही न रहे।

७१–बेश रूखे, अधर सूखे (पृष्ठ १३५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

शब्दार्थ—हीन = तुच्छ, शोचनीय। क्षीण = कमजोर। आलम्बन = आधार, आश्रय। तिमिर = अंधकार। इह = इस स्थान पर, यह लोक।

व्याख्या—कवि देशवासियों की अवस्था का वर्णन करते हुये कहता है कि हमारे देश के अधिकांश व्यक्तियों का बेश रूखा है और उनके अधर भी सूखे हुए हैं तथा भूखा पेट लिए वे आज यहाँ आये हैं। साथ ही उनका जीवन शोचनीय अवस्था में है और उनकी चितवन दीन है तथा वे अपना आलम्बन भी कमजोर बनाये हुये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि अधिकांश देश-वासियों का जीवन अभावग्रस्त है और उनकी आकृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये किस शोचनीय अवस्था में हैं तथा उन्हें किस प्रकार का तुच्छ जीवन व्यतीत करना पड़ा है।

कवि देशवासियों की शोचनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कह रहा है कि जब अज्ञानता के अंधकार में तुम्हारे ज्ञान का प्रकाश हरण कर लेना चाहा तब कृति अर्थात् विधाता ने इस लोक का द्वार खोल दिया और संसार हार गया तथा जनता हार गयी और मुकुट कुंठित हो गये तथा जीवन सुहावना प्रतीत होने लगा। इसका तात्पर्य यह है कि इस संसार की कुछ विचित्र सी दशा है और जनता के जाग्रत होने पर ही उसका जीवन भी सुरक्षित रह सकता है।

कवि का कहना है कि जो प्यास सरलता से पानी द्वारा बुझायी जा सकती है उसे जब रक्त से बुझाने का अवसर आया तब आँखों से रक्त उमड़

आया और कोई-कोई शक्तिशाली तो प्रत्येक स्थिति का साहस के साथ सामना करने के लिए तत्पर रहते हैं। कवि कहता है कि खेत रुंडमुंडों से पूर्ण है और ऐसा जान पड़ता है कि मानो खेत पर गोले बिछे हुए हैं अर्थात् संघर्ष की अवस्था सम्पूर्ण सृष्टि में दीख पड़ती है।

टिप्पणी—इस कविता में सरल एवं सुष्ठु शब्दावली में आकर्षक भाव व्यंजना के दर्शन होते हैं।

७२–किनारा वह हमसे...... (पृष्ठ १३६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने इस संसार की विचित्र दशा का वास्तविक चित्रण किया है।

शब्दार्थ—किनारा करना = अलग होना, दूर हो जाना। सूत = धागा, यहाँ आपसी सम्बन्ध से अभिप्राय है। चोट = आघात, प्रहार। लहू = रक्त।

व्याख्या—कवि अपने प्रिय के उपेक्षापूर्ण व्यवहार की ओर संकेत करते हुये कहता है कि वह हमसे न जाने क्यों दूर होते जा रहे हैं और भले ही उन्होंने हमें पहले अपने दर्शन दिये हों पर वे अब हमसे दूर होते जा रहे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि भले ही प्रिय ने उसे अपनी झाँकी दिखाई हो पर वह अब उससे विमुख हो गया है और उसे प्रिय के लुभावने रूप को देखने के लिये भी तरसना पड़ रहा है। कवि का कहना है कि जिस धागे में सुहागिन ने मोती के दाने पिरो कर मोतियों की माला तैयार की थी उसी धागे को प्रिय ने तोड़कर वह मोतियों की माला बिखेर दी।

कवि कह रहा है कि जब मैंने छिपे हुए प्रहार के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो मुझे यह उत्तर मिला कि हम तो निराशा के डोरे ही सी रहे हैं और इस जमाने की रफ्तार में न जाने यह कैसा तूफान आ गया है कि एक ओर तो हम मरे जा रहे हैं पर लोग समझते हैं कि हम जीवित हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य जीवन में कभी-कभी ऐसी दशा भी आती है जब वह बहुत ही अधिक दुःखी रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है परन्तु लोग यही समझते हैं कि वह दुःखी नहीं है।

अन्त में कवि का कहना है कि हम जिसे रहस्य समझते थे वह रहस्य

अन्त में खुल ही गया और हमें यह समझ में आ गया कि जो लोग अब तक अपने आप को विजयी कहते थे वास्तव में, दूसरों का खून पीकर जीवित रह रहे थे। कहने का अभिप्राय यह है कि इस सृष्टि में बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो शोषक की मनोवृत्ति रखते हैं और वे दूसरों का अरमान कुचल कर अपने लिए विजयश्री प्राप्त करने में संकोच नहीं करते।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में सरल शब्दावली में ही जीवन के अनेक गहन सत्यों की अभिव्यक्ति हुई है और कवि निराला ने उर्दू शब्दों की भी सफल योजना की है। साथ ही महाप्राण निराला का प्रगतिशील दृष्टिकोण भी यहाँ दर्शनीय है और कवि ने इस कविता में यह वास्तविकता भी स्पष्ट कर दी है कि दूसरों का खून पीकर ही लोग विजय प्राप्त करते हैं अर्थात् विजय के हाथ हमेशा रक्तरंजित रहते हैं।

७३. किसकी तलाश...... (पृष्ठ १३६-१३७)

संदर्भ—महाकवि निराला ने प्रस्तुत कविता में मानव जीवन के तथ्यों की ओर संकेत किया है।

शब्दार्थ—तलाश = खोज। सायास = परिश्रम सहित, कष्ट सहित।

व्याख्या—कवि किसी व्यक्ति को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम किसकी खोज में इतने उतावले हो रहे हो और कहीं ऐसा तो नहीं है कि दुनिया ने यदि मुँह चुरा लिया तो तुम बावले से हो गये हो। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि कोई हमारी उपेक्षा करता है तो हम इससे दुःखी होकर बावले न हो जायँ बल्कि हृदय में साहस रखकर कर्म-पथ पर आगे बढ़ते रहें। कवि कहता है कि न तो खींचे बिना आकाश से शिशिरकण ही झरते हैं और जब तक आँच में आँवले को तपाया नहीं जाता तब तक आँवले का तेल भी तैयार नहीं होता। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आँवले का तेल तैयार करने के लिए आँवले को आग में तपना पड़ता है उसी प्रकार मनुष्य को जीवन में ऊँचा उठने के लिए कष्ट सहन करने के लिए तत्पर रहना

चाहिए तथा कष्टरूपी आग में तप कर ही मनुष्य जीवन में उन्नति कर पाता है।

कवि का कहना है कि इस मार्ग में न जाने कितने लोग चल चुके हैं और जिन्होंने संकटों की परवाह किए बिना आगे बढ़ना ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया वे कभी भी असफल नहीं रहे तथा उन्नति की सोपान पर पहुँचने में सफल रहे परन्तु जिन्होंने अपने को असमर्थ समझ दूसरों का सहारा लिया वे आगे बढ़ने में असफल हो गए तथा उनके पैर सँभल नहीं सके। कवि का विचार है कि यह एक विचित्र सी हास्यास्पद स्थिति आ गयी कि लाखों आँखों से दम घुटने लगा और अब गोरे तथा साँवले दोनों में अद्भुत एकता सी स्थापित हो गयी।

टिप्पणी—उस कविता में महाप्राण निराला ने मानव मात्र को यह प्रेरणा दी है कि उसे अपने जीवन की भयंकर बाधाओं से कभी भी विचलित न होना चाहिए। इस प्रकार यह कविता निर्विवाद रूप से प्रेरणादात्री ही है और सुप्रसिद्ध विचारक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता को एक दिव्य अनुभूति प्रदान करनेवाली शक्ति मानते हुए यही मत प्रकट करते हैं 'प्रायः सुनने में आता है कि कविता का उद्देश्य मनोरंजन है। पर जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।······मन को अनुरंजित करना, उसे सुख या आनन्द पहुँचाना ही यदि कविता का अन्तिम लक्ष्य माना जाय तो कविता भी केवल विलास की एक सामग्री हुई।'

७४. जल्द जल्द पैर बढ़ाओ······(पृष्ठ १३७-१३८)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला सर्वसाधारण जनता—विशेषकर निर्धन व्यक्तियों—को सम्बोधित कर अपने उद्‌गार प्रकट कर रहे हैं।

शब्दार्थ—पासी=एक जाति। ऐंठ=अकड़, गर्व, घमंड। कढ़ाओ=निकालो।

व्याख्या—कवि गरीब जनता को सम्बोधित कर कहता है कि तुम जल्दी-

जल्दी पैर बढ़ाओ और आगे-आगे बढ़ो तथा धनी व्यक्तियों की सम्पत्ति पर अधिकार कर लो। कवि का कहना है कि आज अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला होगी और धोबी, पासी, चमार व तेली मिलकर अँधेरे का ताला खोलेंगे तथा वट बिछाकर एक पाठ पढ़ेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि धनी लोगों के पास बड़े-बड़े मकान और हवेलियाँ हैं पर बेचारे गरीबों के लिए न तो रहने की ही समुचित व्यवस्था है और न पढ़ने के लिए ही कोई प्रबन्ध किया गया है। इस प्रकार कवि चाहता है कि धनी लोगों की हवेलियों में किसानों के लिए पाठशालाएँ खुलनी चाहिए और धोबी, पासी, चमार व तेली आदि जातियों के लिए भी पढ़ने लिखने की व्यवस्था होनी चाहिए तथा वे सब अज्ञानतारूपी अन्धकार दूर करने के लिए प्रयत्नशील हों।

कवि का कहना है कि यहाँ जिस स्थान पर सेठजी बैठे हुए थे और उनकी आँखों में चतुर बनिये का भाव झलक रहा था और उन्हें अपने धन के कारण अकड़ भी आ गयी थी तथा वे एक प्रकार के भुलावे में स्वयं को रखे हुए थे आज उसी स्थान पर किसानों का बैंक खुलना चाहिए। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि अब तक धनी सेठ महाजनों का जो सूदखोरी का व्यवसाय चलता रहा है वह व्यवसाय समाप्त हो जाना चाहिए और सेठ महाजनों के निवास स्थान में ऐसे बैंक स्थापित किए जाएँ जहाँ किसानों को सरल शर्तों पर ऋण मिल सके।

अन्त में कवि कहता है कि सम्पूर्ण सम्पत्ति देश की हो और सभी आपत्तियाँ भी देश की हों तथा जनता भी जातीय वेश की हो। और बाद में विवाद यह ठनना चाहिए कि काँटे को काँटे से निकाला जाय। इस प्रकार कवि सम्पत्ति पर सरकारी नियंत्रण के पक्ष में है और वह पूँजीपतियों का विरोधी जान पड़ता है। साथ ही उसका यह भी मत है कि भारत का प्रत्येक नागरिक राष्ट्रप्रेम की भावना को सर्वोपरि समझे।

टिप्पणी—महाकवि निराला की इस कविता में पूँजीवाद का कट्टर विरोध किया गया है और सेठ महाजनों की कटु निन्दा कर सर्वसामान्य जनता का समर्थन भी किया गया है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह कविता

मार्क्सवादी विचारधारा का ही समर्थन करती है और हम इस कविता को प्रगतिवादी साहित्य की एक उल्लेखनीय कृति मान सकते हैं।

७५. खून की होली जो खेली (पृष्ठ १३८-१३९)

संदर्भ—महाप्राण निराला की प्रस्तुत कविता सन् १९४६ के विद्यार्थियों के देश-प्रेम के सम्मान में लिखी गयी है।

शब्दार्थ—पलाश = टेसू, एक प्रकार का फूल। कुसुम = फूल। किंशुक = पलाश, टेसू। कोकनद = लाल कमल। लीची = एक प्रकार का फल। कचनार = एक प्रकार का फूल। अमलतास = एक प्रकार का फूल। पाटल = एक प्रकार का फूल।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि यह हमारे युवकों—यहाँ विद्यार्थियों से अभिप्राय है—की बहादुरी है जो उन्होंने खून की होली खेली और लोगों में सम्मान प्राप्त किया। इसका अर्थ यह है कि हमारे युवा विद्यार्थियों ने राष्ट्र-प्रेम के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर कर दिये और देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए अपना खून बिना किसी संकोच के बहाया। कवि कहता है कि जिस प्रकार वसंत ऋतु में पलाश के फूल लाल रंग में रंग जाते हैं और पलाश के ये फूल शोभायुक्त जान पड़ते हैं तथा लाल कमल में सजीवता सी आ जाती है उसी प्रकार हमारे युवा विद्यार्थियों ने अपना लाल लाल खून भारत माँ के चरणों में अर्पित किया।

कवि का कहना है कि वृक्षों में लाल लाल कोंपल निकल रहे हैं और चारों ओर फाग की धूम है पर इन युवा विद्यार्थियों ने जो खून की होली खेली है, उसके कारण फागुन की टेढ़ी तान है। कवि कह रहा है कि गीतों की रात का यह उन्मुक्त प्रसार है और प्रभात की किरणें हाथों में फूलों का वरदान लिए धरती पर अवतरित हुई हैं क्योंकि हमारे युवा विद्यार्थियों ने खून की होली खेली है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि भारत की स्वाधीनता के लिए जो हमारे युवा विद्यार्थियों ने अपना खून बहाया है, उसके लिए उनका स्वागत करने के लिए प्रकृति भी उत्सुक है।

कवि कहता है कि युवा विद्यार्थियों द्वारा भारतमाता की स्वाधीनता के

लिए अपने खून की होली खेलने के फलस्वरूप अब प्रकृति में भी उनके इस बलिदान के लिए उनका स्वागत करने की प्रबल उत्कंठा है। अतएव बाग़ों में बहार आ गयी है और आम एवं लीची की मंजरी विकसित हो रही है तथा कटहल भी पेड़ों में लटक रहे हैं। साथ ही कचनार के फूल खिल रहे हैं और पाटल नामक फूल के अधरों पर मुस्कान सी आ गयी है क्योंकि हमारे युवा विद्यार्थियों ने खून की होली खेली है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाप्राण निराला उग्र राष्ट्रवादी जान पड़ते हैं और उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के लिए क्रांतिकारियों द्वारा अपने प्राण अर्पित करने की घटना को आधार मानकर ही यह कविता रची है। साथ ही इस कविता में निरालाजी की उत्कृष्ट कल्पना शक्ति के दर्शन भी होते हैं और अनुप्रास अलंकार का भी सफल प्रयोग हुआ है।

७६. झींगुर डटकर बोला (पृष्ठ १३९-१४०)

संदर्भ—वस्तुतः 'झींगुर डटकर बोला' कविता अँग्रेजों के शासनकाल में रची गयी थी और इसमें एक ओर तो तत्कालीन काँग्रेसी नेताओं की मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है तथा दूसरी ओर तत्कालीन जमींदारों व पुलिसवालों के स्वभाव का उल्लेख हुआ है।

शब्दार्थ—टेढ़े = उत्तरप्रदेश का टेढ़ा नामक स्थान। निर्विरोध = बिना किसी विरोध के। वैरभाव = शत्रुता की भावना। गोड़इत = एक कर्मचारी। तामीली = पालन करना।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि उत्तरप्रदेश के टेढ़ा नामक स्थान के कांग्रेसमैन उस दिन वहाँ उस गाँव में पहुँचे और स्वयं गाँधीवादी होने के कारण बहुत देर तक ग्रामवासियों को यह समझाते रहे कि गाँधीवाद क्या है? साथ ही उन्होंने ग्रामीण जनता को यह भी बतलाया कि हम सबको मिलकर देश की भक्ति करनी चाहिए और यदि हम सब एक हो जाएँगे तो हमारी इस निर्विरोध शक्ति से भारत पर हमारा ही राज्य होगा। कवि का कहना है कि गाँधीवादी कांग्रेसी नेता ने ग्रामवासियों से यह भी कहा कि जमींदार और साहूकार अपने ही कहलाएँगे तथा अँग्रेजों की शासन सत्ता हिल जायगी और

हिन्दू एवं मुसलमान शीघ्र ही वैरभाव भूलकर जल्दी गले लगेंगे तथा नौकरी के लिये होने वाले सभी उत्पात अब समाप्त हो-जाएँगे।

कवि का कहना है कि जब ग्रामीण जनता के मध्य कांग्रेसी नेता भाषण दे रहे तब जमींदार का एक कर्मचारी दोनाली बन्दूक लिये वहाँ पहुँच गया और एक खेत फासले से गोली चलाने लगा। गोली चलने की आवाज सुनकर भीड़ भागने लगी और पुलिस का सिपाही खड़ा हुआ ग्राम-वासियों को ललकारता रहा पर कोई ठहरा नहीं। उसी समय झींगुर ने कहा कि हम सब किसान सभा नामक दल के सदस्य हैं और भाई जी (काँग्रेसी नेता से अभिप्राय है) के सहायक हैं; अतएव जमींदार ने पुलिस की आज्ञा का पालन करने के लिए गोली चलवाई है तथा यही आज की इस घटना का महत्वपूर्ण तथ्य है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने स्वतंत्रता पूर्व भारत के जमींदारों और ब्रिटिश नौकरशाही में सहायक पुलिस की मनोवृत्तियों का वास्तविक चित्रण किया है। साथ ही सरल शब्दावली में अनूठी भाव व्यंजना भी दर्शनीय है।

७७–राजे ने अपनी रखवाली की (पृ० १४०-१४१)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने राजा-महाराजाओं पर व्यंग्य किया है।

शब्दार्थ—रखवाली = देखरेख। चापलूस = चाटुकार, खुशामदी।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि राजे अर्थात् राजा ने अपनी देखरेख का पूर्ण प्रबंध किया और वह किला बनाकर रहा तथा बड़ी बड़ी फौजें अपनी सुरक्षा के लिये रखीं। साथ ही न जाने कितने ही खुशामदी सामन्त स्वार्थ की लकड़ी पकड़े हुए आये और कितने ही ब्राह्मण पोथियों में जनता को बाँधे हुए राजा के पास पहुँचे। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि राजा के पास आनेवाले खुशामदी सामन्त स्वार्थी थे और ब्राह्मण भी अपने मिथ्याभिमान का प्रदर्शन कर रहे थे। कवि का कहना है कि कवियों ने भी राजा की बहादुरी के गीत गये और लेखकों ने उसकी प्रशंसा में लेख लिखे तथा इतिहासकारों ने

इतिहासों के पृष्ठों में राजा का गुणगान किया और नाटच कलाकारों ने राजा की प्रशंसा में कई नाटक रचकर रंगमंच पर उन नाटकों का प्रदर्शन किया।

कवि कहता है कि जनता भी राजा से प्रभावित हुई और राजे के समाज का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा तथा लोक नारियों के लिए रानियाँ आदर्श कहलाईं अर्थात् रानियों के जीवन का अनुकरण सर्व सामान्य महिलाओं ने करना चाहा। कवि का कहना है कि राजे ने धर्म को बढ़ावा अवश्य दिया पर यह बढ़ावा धोखे से भरा हुआ था और धर्म एवं सभ्यता के नाम पर युद्ध हुआ तथा खून की नदी भी बही। कवि कह रहा है कि इस खून की नदी में जनता ने आँख मूँदकर डुबकियाँ लीं अर्थात् धर्म एवं सभ्यता के नाम पर होनेवाले युद्ध का प्रभाव सर्वसाधारण जनता पर भी पड़ा तथा जब जनता की आँखें खुलीं तब उसने देखा कि राजे ने अपनी रखवाली की।

टिप्पणी—वस्तुत: 'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता महाप्राण निराला की हास्य-व्यंग्य शैली का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण है और इसमें सामन्त-वादी युग पर व्यंग्य किया गया है। विचारक यही कहते हैं कि 'प्राचीनकाल से अब तक इन सामन्तों के बहुत से चापलूस आये। ब्राह्मण, इतिहासकार और साहित्यिकों ने इनकी महत्ता का गुणगान किया। राजाओं का स्थान सामान्य मानव में उत्तमश्रेणी का था। उसी प्रकार रानियाँ भी स्त्री वर्ग में आदर्श रूप में गृहीत हुईं। किन्तु मार्क्सवादी सिद्धान्तों से जनता पर पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ा और धीरे धीरे इसका लोप हो गया।'

७८—चर्खा चला (पृ० १४१-१४२)

संदर्भ—महाकवि निराला की 'चर्खा चला' कविता हास्य विनोदात्मक व्यंग्यपूर्ण रचना है और इस काव्यकृति पर मार्क्सवादी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव भी पड़ा है।

शब्दार्थ—सदियों = शताब्दियाँ। जबाँ = जबान। कटे = व्यतीत हुए, बीत गये। लीक = परम्परा, मर्यादा।

व्याख्या—कवि का कहना है कि वैदिक सभ्यता का विकास हुआ और धीरे धीरे कई शताब्दियाँ बीत गयीं तथा लोग अब एक स्थान में बसने लगे

परन्तु उनकी पर्यटन करने की आदत अभी भी बनी रही और वे एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते रहे। कवि कहता है कि जो मनुष्य पहले पहाड़ों में गुफा बनाकर रहता था, उसने अब घर बनाये और पहाड़ों से नीचे उतर समतल भूमि पर रहना प्रारम्भ किया। साथ ही मनुष्य ने अब भेड़ पालन के स्थान में गाय पालना चालू किया और मनुष्य के पास गायों की संख्या बढ़ने लगी तथा मनुष्य ने अब बाग और उपवन भी तैयार किये।

कवि कह रहा है कि सभ्यता के विकास के साथ साथ भाषा का भी विकास हुआ और मनुष्य जो अब तक स्वच्छंद विचार प्रकट करने का आदी था, उसने धीरे धीरे भाषा को व्याकरण के नियमों से बाँधना प्रारंभ किया और वैदिक काल में जिस भाषा को सुसंस्कृत रूप प्रदान किया गया वह भाषा संस्कृत कहलाई तथा भाषा के लिए अनेक नियम बने और शुद्ध रूपों का भी प्रचलन हुआ। कवि का कहना है कि धीरे धीरे मानव सभ्यता का विकास होता गया और लोगों की वेशभूषा में भी अन्तर आया तथा मनुष्यों ने जंगली जीवन छोड़कर अच्छी वेशभूषा को अपनाया और उनके रहन सहन में भी अन्तर आया। अतएव जिस प्रकार उबटन के स्थान में साबुन का प्रयोग किया जाने लगा उसी प्रकार सुख के नये नये साधनों की खोज की जाने लगी और धीरे धीरे सुख के अनेक नवीन साधन बढ़ गये।

कवि कहता है कि वैदिक सभ्यता के विकास के पश्चात् जाति चार भागों में विभाजित हुई और रामराज्य का युग आया तथा उसे उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। कवि कह रहा है कि संस्कृति एवं सभ्यता के सदृश्य भाषा एवं साहित्य में भी परिवर्तन आने लगा और सबसे पहले वाल्मीकि ने वेदों की परंपरा त्यागकर मंत्रों के स्थान में छन्दों को अपनाया तथा छन्दों में काव्य सृजन किया। साथ ही वाल्मीकि ने अपनी कविता में मनुष्य को महत्व दिया और धरती की प्यारी पुत्री सीता के गीत गाये।

कवि का कहना है कि कली ज्योति में विकसित हुई और धीरे धीरे पल्लवित होती गई तथा कालांतर में पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार से 'वर्जिन स्वेल' और 'गुड अर्थ' आदि शब्दों का भी प्रचलन हुआ पर हमारे देश में

सभ्यता का भारतीय संस्कृति के अनुरूप क्रमिक विकास ही हुआ। इस प्रकार राम के सदृश्य कृष्ण का युग आया और कृष्ण ने धरती के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कृषि की महत्ता भी स्पष्ट की तथा इन्द्र के स्थान पर न केवल गोवर्धन की पूजा करवाई अपितु मनुष्य, गाय और बैलों को सम्मान प्रदान किया। कवि कह रहा है कि कृष्ण के बड़े भाई बलदेव ने हल को अपना हथियार बनाया और वे हल को कंधे पर रखे हुए चारों ओर चलते थे तथा उनके प्रयत्न से खेती भी हरी भरी हुई लेकिन इस संसार को यहाँ तक पहुँचने में अभी बहुत देर है।

टिप्पणी—वस्तुतः महाप्राण निराला की 'चर्खा चला' कविता उनकी एक उल्लेखनीय कविता मानी जाती है और विचारक यही कहते हैं 'इसकी ऐतिहासिकता में पला व्यंग्य अत्यंत मर्मस्पर्शी है। इतिहास के अतिरिक्त साहित्य और समाज की कल्पनाओं का समावेश कवि की अपनी विशेषता है। वेदकाल से अब तक भारतवर्ष में बहुत से परिवर्तन दिखते हैं। सामाजिक परिवर्तन, साहित्यिक परिवर्तन तथा भौतिकवाद के प्रचार पर उनकी दृष्टि विशेष प्रकार से गई है। कवि भौतिकवादी सभ्यता का हामी नहीं, प्रत्युत वह उसका आलोचक बन गया है। ऐतिहासिक परिवर्तन में वह वाल्मीकि से लेकर आधुनिक युग के 'वर्जिन स्वेल' तथा 'गुड अर्थ' की प्रगति पर व्यंग्यमयी दृष्टि रखता है। वह आधुनिक समाजिक एवं साहित्यिक रूप की चर्चा का विस्तार इन्हीं दो पुस्तकों से करता है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में वह केवल वर्ण-व्यवस्था पर ही एक हलका सा व्यंग्य रख सका है। वह कहता है 'वर्जिन' और 'गुड अर्थ' इसके परिणाम हैं।'

७६—दगा की (पृष्ठ १४३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने आधुनिक मनुष्य का यथातथ्य चित्रण किया है।

शब्दार्थ—टोई = स्पर्श किया। पौ फटी = प्रातःकाल हुआ। दगा करना = धोखा देना।

व्याख्या—कवि आधुनिक मनुष्य का व्यंग्यपूर्ण वर्णन करते हुए कह रहा

है कि उसका चेहरा पीला पड़ गया और रीढ़ की हड्डी झुक गयी तथा वह हमेशा हाथ ही जोड़ता रहा अर्थात् खुशामद करने में उसका बहुत अधिक समय बीतने लगा। साथ ही उसकी आँखों के आगे अँधेरा बढ़ने लगा और ऐसी दशा में सैकड़ों शताब्दियाँ बीत गयीं। इस प्रकार बड़े-बड़े ऋषि, मुनि एवं कवि आये और तरह-तरह की वाणी जनता को दे गये अर्थात् सबने अपने-अपने मत का प्रचार किया और जनता को अपने-अपने दृष्टिकोण का अनुयायी बनाना चाहा।

कवि का कहना है कि यदि किसी विचारक ने कहा कि एक तीन हैं तो दूसरे ने बतलाया कि तीन तीन हैं तथा किसी ने नसों का स्पर्श किया, किसी ने कमल देखे, किसी ने बिहार किया और किसी ने अंगूठे चूमे। कवि कहता है कि यह सब देखकर लोगों ने कहा कि धन्य हो गये परन्तु खंजड़ी का प्रचार पहले के समान ही रहा और मृदंग के साथ-साथ तबला भी सुनाई देने लगा तथा वीणा की मधुर रागिनी भी गूँज उठी और आज हम सब पियानो के गीत सुनते हैं।

कवि कह रहा है कि प्रातःकाल का समय हुआ और धीरे-धीरे किरणों का जाल फैलने लगा तथा दिशाओं के अधर रंग गये। कवि का कहना है कि दिन में वेश्याओं के सदृश्य इस आधुनिक सभ्यता ने मानव मात्र को धोखा दिया। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारी आधुनिक सभ्यता में भोग-विलास और छल-कपट का ही अधिकाधिक प्रसार होने लगा।

टिप्पणी—वस्तुतः 'दगा की' कविता में आधुनिक मानव-सभ्यता का वास्तविक चित्र अंकित किया गया है और विचारक यही कहते हैं 'कई शताब्दियों पूर्व ऋषि मुनियों ने जनता को अपने अमर संदेश सुनाए थे। धार्मिक बन्धन में न पड़कर किसी ने तीनों (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश) को एक माना और शेष लोगों ने तीनों को अलग-अलग देखा। इसके अतिरिक्त लोगों के हृदय से प्राचीनता की बू-बास नहीं गई कि आधुनिक सभ्यता का प्रकाश सर्वत्र फैल गया। वैज्ञानिक युग के प्रभाव से सारा भारतीय वातावरण कुछ दूसरा ही हो गया, जिसके फलस्वरूप—

दिन में वेश्याएँ जैसे रात में
दगा की इस सभ्यता ने दगा की।

८०—कुकुरमुत्ता (पृष्ठ १४४-१५१)

संदर्भ—वस्तुतः 'कुकुरमुत्ता' निराला जी का प्रसिद्ध व्यंग्य (Satire) काव्य है और इसे उनकी उल्लेखनीय काव्यकृति माना जाता है तथा श्री रमेश चन्द्र मेहरा के शब्दों में 'सन् १९४२ में प्रकाशित उनकी कुकुरमुत्ता काव्य रचना कुछ समय पहले मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थी। इसमें दो भाग हैं, जिनमें पहला भाग काव्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर है। यह दूसरे भाग से कई मास पूर्व लिखा गया था। इस काव्य रचना में निराला जी टी० एस० इलियट की संदर्भगर्भित शैली से प्रभावित हुये थे। जिस प्रकार इलियट के लिए कहा जाता है कि उसकी 'वेस्टलैंड' कृति में इतना पांडित्य है, इतना संक्षेपीकरण है, इतने अधिक एल्यूजन्स या संकेत हैं, इतना गंभीर आशय है, इतनी गहन करुणा है कि उसे आज के युग का महाकाव्य भी कहा जा सकता है। निराला जी इन चर्चाओं को सुन चुके थे। इसीलिए उन्होंने कुकुरमुत्ता में कई स्थानों पर ऐसे अपरिचित और गूढ़ संदर्भ दिये हैं जिनका अर्थ समझने में गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है।.........

जिस तरह भारतीय दर्शन का परिचय हुए बिना इलियट की दत्त! दयध्वम्! दम्यत् की शब्दावली नहीं समझी जाती, या 'शांतिः, शांतिः, शांतिः का वाक्य किसी अँग्रेज पाठक के लिये निरर्थक हो जाता है, वैसे ही निराला जी के कुकुरमुत्ता काव्य के कुछ स्थलों को पाश्चात्य दर्शन की जानकारी के बिना समझा नहीं जा सकता। पूरे कुकुरमुत्ता काव्य में अतिशयोक्ति और अतिरंजना के माध्यम से हास्य और विनोद की सृष्टि की गई है। कुकुरमुत्ता अपनी अहमन्यता में अपने को बड़े-बड़े उपमान दे देता है। आत्म प्रशंसा की भूमिका पर वह संसार की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों को भी मात कर देता है। परन्तु एक प्रच्छन्न व्यंग्य द्वारा निराला के कुकुरमुत्ता के आत्मप्रलाप पाठक के लिये आद्यन्त एक विनोद भावना ले आते हैं। यद्यपि प्रगतिवादी समीक्षकों ने कुकुरमुत्ता की काव्यकृति को सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष का व्यंजक माना है,

परन्तु तटस्थ दृष्टि से इस काव्य का अनुशीलन करने वाले सभी सहृदय इस रचना में कुकुरमुत्ता के मिथ्या गर्व की प्रतीति पाये बिना नहीं रह सकते। निराला का आशय यह है कि कुकुरमुत्ता (सर्वहारा का प्रतिनिधि) अपने को गुलाब (सांस्कृतिक तथ्य का प्रतीक) से चाहे कितना ऊँचा घोषित करे, परन्तु दुनियाँ समझती है कि गुलाब गुलाब है और कुकुरमुत्ता कुकुरमुत्ता। इसी बहुचर्चित कुकुरमुत्ता का पहला भाग हमारी पाठ्य पुस्तक 'राग-विराग' में संकलित है।

एक थे नव्वाब..................कहीं झाड़ी। (पृष्ठ १४४-१०५)

शब्दार्थ—फारस=ईरान का एक नाम। बाड़ी=फुलवारी। मनहर=मन को अच्छा लगने वाला। तहजीब=सभ्यता, शिष्टता। तरतीब=सिलसिला, क्रम। चमन=बगीचा। खुशनुमा=सुन्दर। सुर्ख=गहरा लाल रंग। धानी=एक तरह का हल्का रंग। आसमानी=आसमान के रंग का। सब्ज=हरा रंग। फीरोजी=हरापन लिये नीला रंग। जर्द=पीला रंग। मृदुल=कोमल। आराम=आराम करने का स्थान। सुथरा=स्वच्छ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि एक नव्वाब थे और उन्होंने फारस से गुलाब के पेड़ों की कलमें मँगवाकर उन्हें अपनी बड़ी फुलवारी में लगवाया तथा अन्य देशी पौधे भी उसी फुलवारी में लगवाये। साथ ही कई माली नौकर रखे और नव्वाब साहब का वह बगीचा गजनवी के मनोहर बगीचे के समान लग रहा था। कवि का कहना है कि सभ्यता की साँस और क्रम की गोद पर एक सपना सा उत्पन्न हो रहा था और उस फुलवारी में अनेक सुंदर क्यारियाँ बनी हुई थीं तथा वे इस बगीचे में घनी होती जा रही थीं।

कवि कहता है कि नव्वाब के बाग में अनेक प्रकार के फूलों के पौधे थे और उनके कारण वह बगीचा बहुत सुन्दर लग रहा था। इस प्रकार नव्वाब के बाग में बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जूही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चम्पा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास, गेंदा, गुलदाऊदी, निवाड़ी, गंधराज आदि कई प्रकार के फूलों के पेड़ थे और कई फव्वारे भी थे तथा उक्त फूलों के रंग भी सुर्ख, धानी, चम्पई, आसमानी, सब्ज, फिरोजी, सफेद, जर्द, बादामी,

वसंती आदि थे साथ ही नव्वाब के बगीचे में फलों के भी कई पेड़ थे जिनमें आम, लीची, संतरे और फालसे आदि फलों के पेड़ उल्लेखनीय हैं।

कवि का कहना है कि नव्वाब के बाग में कलियाँ विकसित होने लगीं और उनसे कोमल गंध भी निकलती थी तथा उन कलियों के गले लगकर हवा मंद-मंद गति से प्रवाहित होती थी। उस बाग में बुलबुल चहकते थे और टहनियाँ मचलती थीं तथा वह बाग चिड़ियों के लिए बसेरा बना हुआ था। साथ ही उस बाग के मार्ग स्वच्छ थे और वहाँ बीच में आरामगाह भी थी जो कि नव्वाब के बड़प्पन का परिचय दे रही थी। इसी प्रकार नवाब की उस फूलवारी में कहीं झरने थे और कहीं छोटी सी पहाड़ी थी तथा कहीं स्वच्छ उपवन था और कहीं नकली झाड़ी थी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है और कवि ने नवाब साहब के वैभव का भी परिचय दिया है। साथ ही उर्दू एवं फारसी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है और इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महाप्राण निराला को उर्दू एवं फारसी भाषा का कितना ज्ञान था।

आया मौसिम············लफ्ज़ प्यारा। (पृष्ठ १४५-१४६)

शब्दार्थ—रोबोदाब = प्रभाव। खुशबू = सुगंध। रंगोंआब = रंग की चमक। अशिष्ट = असभ्य। इतराता है = घमंड करता है। केपीटलिस्ट = पूंजीवादी। गुलाम = सेवक। जानिब = दिशा, ओर। तबेले = घुड़साल, वह स्थान जहाँ घोड़े आदि पशु रखे जाते हैं। टट्टू = घोड़े से छोटा जानवर। न्यारा = पृथक्, अलग। हस्ती = अस्तित्व। ख्वाब = सपना, स्वप्न। पेट में डंड पेले हो चूहें = भूखा होना या भूख लगना। जबाँ = जबान, जिह्वा। लफ्ज़ = शब्द।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि उपर्युक्त मौसम आया और नव्वाब की फुलवारी में फारस का गुलाब खिला तथा बाग पर उसका प्रभाव पड़ा। कवि का कहना है कि वहीं गंदे में, पहाड़ी के समान उठे हुए सिर को ऐंठकर कुकुरमुत्ता भी उग आया था और वह कुकुरमुत्ता उस गुलाब को सम्बोधित कर

अपने उद्‌गार प्रकट करने लगा। इस प्रकार वह कुकुरमुत्ता फारस के गुलाब को सम्बोधित कर कहता है कि अबे, सुन बे, गुलाब तुझे जो सुगंध और रंग की चमक मिल गयी है उसके लिए तुझे घमंड नहीं करना चाहिए तथा यह न भूलना चाहिए कि तू खाद का खून चूसने वाला असभ्य गुलाब है और तू डाल पर इतराने वाला पूँजीवादी ही है।

कुकुरमुत्ता नव्वाब के बाग में खिलने वाले फारस के गुलाब को सम्बोधित कर कहता है कि तूने न जाने कितनो को अपना सेवक बनाया है और तेरे लिए माली रखा गया तथा उसे जाड़ा और घाम दोनों ही सहना पड़ा। साथ ही तू जिसके भी हाथ लगा वह सिर पर पैर रखकर पीछे को भागा अर्थात् जिसे भी फारस के गुलाब का एक फूल मिल गया वह इस डर से कि कहीं कोई दूसरा उसे न ले ले वह फूल लेकर भाग जाता है। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कुकुरमुत्ता कह रहा है कि वह (गुलाब) औरत की दिशा में यह मैदान छोड़कर उसी प्रकार चल देता है जिस प्रकार घुड़साल में बँधा हुआ टट्टू अपनी रस्सी तुड़ाकर भाग जाता है। कुकुरमुत्ता कहता है कि बादशाहों, राजाओं और अमीरों का प्यारा होने के कारण ही तू (गुलाब) साधारण फूलों से पृथक् रहा है।

नव्वाब के बाग में खिलनेवाले फारस के गुलाब को सम्बोधित कर कुकुरमुत्ता कह रहा है कि यदि तू बड़े-बड़े लोगों का प्यारा नहीं होता तो आज तेरा इतना अधिक महत्व न होता पर तुझे यह नहीं भूलना चाहिए कि तेरा कुछ भी अस्तित्व नहीं है और तू भी एक तुच्छ फूल ही है तथा काँटों ही से तू भरा हुआ है। कुकुरमुत्ता का कहना है कि ऐ गुलाब; तू यह मत भूल कि तेरी जो कली यदि विकसित नहीं होती तो आज तू खिल ही नहीं पाता और यदि तेरे वृक्ष को रोज पानी न मिलता तो वह कली काँटों में ही सूखकर रह जाती पर तू तो हरामी खानदानी है। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है कि तुझे सदा मेहरुन्निसा चाहिए जो इत्र निकालती रहे और तेरा मन ऐसी दिशा में जाने के लिए लालायित रहता है जहाँ कोई किनारा न हो और जहाँ अपना कोई भी सहारा न हो। इस प्रकार तू (गुलाब से अभिप्राय है) सपने में ही डूबने

और चमकनेवाला वह सितारा है जिसके पेट में चूहे डंड पेलते हैं पर जबान से प्यारी-प्यारी बातें निकलती हैं।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कुकुरमुत्ता गुलाब के फूल की कटु आलोचना कर रहा है और वह उसे तनिक भी महत्व नहीं देता।

देख मुझको..........खुशनसीब। (पृष्ठ १४६-१४८)

शब्दार्थ—उगा = उत्पन्न हुआ। कलम = पेड़ की डाल जो अन्यत्र लगाने या किसी दूसरे वृक्ष में पैबन्द लगाने के लिए काटी जाय। कौलिक = जुलाहा। जनखा = हिजड़ा। सधा है = बना है। पैराशूट = वह छाता जिसके सहारे सैनिक गुब्बारे या वायुयान से नीचे उतरता है। वक्र = टेढ़ा। कैंड़ा = सदृश। गल्ला = अनाज। कल्ला = जबड़ा। नमूना = उदाहरण। रफा = मिलाया अथवा दूर किया। रकीब = प्रेकिका का दूसरा प्रेमी। लंठ = मूर्ख, उजड्ड खुशनसीब = भाग्यवान।

व्याख्या—कुकुरमुत्ता गुलाब से कह रहा है कि तू मुझे देख और तुझे यह मालूम हो जायगा कि मैं किस प्रकार बढ़ रहा हूँ और मैं डेढ़ बालिश्त और ऊँचे चढ़ गयी हूँ। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं स्वयं अपने आप ही उत्पन्न हो गया और मुझे गुलाब के समान किसी की सेवा सहायता की जरूरत नहीं पड़ती तथा मैं बिना किसी की सेवा के आप ही आप उत्पन्न हो गया। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है कि मेरी कलम नहीं लगती और मेरा जीवन आप ही आप जाग्रत होता है तथा तू यदि नकली है तो मैं मौलिक हूँ और तू यदि बकरा है तो मैं जुलाहा हूँ। गुलाब को सम्बोधित कर कुकुरमुत्ता कह रहा है कि तू यदि रंगा हुआ है तो मैं धुला हुआ हूँ और मैं यदि पानी हूँ तो तू बुलबुला है तथा तूने दुनिया को बिगाड़ा है पर मैंने गिरते हुओं को उठाया है और यदि तूने हीजड़ा बनकर दूसरों की रोटी छीन ली तो मैंने एक एक को तीन तीन दीं।

कुकुरमुत्ता का कहना है कि इस दुनिया का काम मुझसे ही सधा है और मेरे सामने तो शेर भी गधा है तथा चीन में मेरी नकल का छाता बना है और मेरे समान ही भारत का छत्र भी तना है तथा सभी स्थानों में तुझे मेरा

रूप ही दिखाई देता है। कुकुरमुत्ता कह रहा है कि आजकल पैराशूट मेरे ही रूप का बना है और मैं ही विष्णु का सुदर्शन चक्र हूँ तथा इस संसार का काम मुझसे ही चलता है और मैं सीधा होते हुए भी टेढ़ा हूँ। कुकुरमुत्ता का कहना है कि यदि मुझे उलट दिया जाय तो मैं ही यशोदा की मथानी हूँ और मेरी कहानी अभी समाप्त नहीं हो जाती बल्कि अभी और भी लम्बी है तथा मेरी समकक्षता करने का साहस किसी में नहीं है क्योंकि मैं तो रामचन्द्र भगवान और कामदेव के धनुष से खींचा गया तीर हूँ तथा बलराम के कंधे पर पड़ा हुआ हल हूँ।

कुकुरमुत्ता कहता है कि मैं ही सुबह का सूरज हूँ और शाम का चन्द्रमा हूँ तथा मैं ही कलजुगी ढाल हूँ। कुकुरमुत्ता कह रहा है कि मैं नाव का नीचे का तला हूँ और ऊपर पाल लगा हुआ हैं तथा मैं ही डाँड़ी से लगा पल्ला हूँ और मुझे ही आधार मानकर दुनिया आनाज तोलती है। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मूझसे ही मूछों का महत्व है और मुझसे ही जबड़ा भी सुशोभित है। कुकुरमुत्ता कहता है कि हे मेरे लल्लू और मेरे लल्ला तुम चाहे रुपया कहो या अधन्ना और चाहे बनारस हो या न्यवन्ना पर रूप मेरा ही चमकता है और मेरा गोला ही सर्वत्र बमकता है तथा मैं ही पार लगाता हूँ और मैं ही मझधार में डुबाता हूँ। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं ही डब्बे का नमूना हूँ और मैं ही पान हूँ तथा मैं ही चूना हूँ।

कुकुरमुत्ता कह रहा है कि मैं कुकुरमुत्ता हूँ पर जिस प्रकार बेन्जाइन ने दर्शन शास्त्र का निर्माण किया और ओम्फलस एवं ब्रह्मावर्त का निर्माण हुआ तथा दुनिया के गोले और फर्ज बने उसी प्रकार मेरा भी निर्माण हुआ। कुकुरमुत्ता कहता है कि यह दुनिया एक प्रकार की सिकुड़न के समान और साड़ी की सफाई के सदृश्य है तथा मैं भी इस दुनिया में कुछ कम महत्व नहीं रखता। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं कास्मोपालीटन् एवं मेट्रोपालीटन् दोनों ही हूँ तथा फायड एवं लीटन दोनों के समान मेरी महत्ता है और मैं आवश्यकता एवं पूर्ति दोनों ही हूँ। कुकुरमुत्ता गुलाब से कह रहा है कि मैं सरसता में फ्राड हूँ और राजधानी में लेनिनग्राड हूँ तथा हे मेरे मित्र तू मेरी सभी

बातों को सच समझ और यह भी ध्यान में रख कि मैं लेखकों में लंठ के समान भाग्यशाली हूँ।

टिप्पणी—महाप्राण निराला ने कुकुरमुत्ता के इन उद्गारों में कुकुरमुत्ता के अहं का ही विस्तृत चित्रण किया और हम देखते हैं कि कुकुरमुत्ता स्वयं को विश्व में कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं बतलाता।

मैं डबल............पहुँचता। (पृष्ठ १४८-१५०)

शब्दार्थ—मन्द्र=सुन्दर, गम्भीर। क्षीणा=कमजोर, धीमी। अबला=स्त्री, नारी। लीरिक=गीतिकाव्य। तुरही=एक प्रकार का बाजा। गिरह=कलाबाजी। पैंतरे=दाँवपेंच। क्लाइमेक्स=चरम सीमा।

व्याख्या—कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं जब डबल हुआ तब डमरू बना और जब इकबगल रहा तब वीणा बना और कभी मेरी ध्वनि गंभीर रही तथा कभी मेरी धीमी ध्वनि रही पर जिस प्रकार मैं पुरुष और स्त्री दोनों ही हूँ उसी प्रकार मैं मृदंग और तबला दोनों हूँ। कुकुरमुत्ता कहता है कि मैं ही चुन्ने खाँ के हाथ का सितार, दिगम्बर का तानपूरा व हसीना का सुरबहार हूँ तथा मैं ही लायर हूँ और न केवल लीरिक मुझसे ही बने हैं बल्कि संस्कृत, फारसी, ग्रीक और लेटिन के मंत्र, गजले एवं गीत आदि भी मुझसे ही बनें हैं। कुकुरमुत्ता कह रहा कि मुझसे ही पैदा हुए और मेरे कारण ही लोग जीते हैं तथा फिर मर जाते हैं और फिर पैदा होते हैं।

कुकुरमुत्ता कहता है कि वायलिन मुझसे ही बजा और बेंजो मुझसे ही सजा तथा घंटा, घंटी, ढोल, डफ, घड़ियाल, शंख, तुरही, मंजीरे, करताल, कारनेट, क्लेरीअनेट, ड्रम, फ्लूट एवं गीटर, आदि बाजे भी मेरे द्वारा ही सुसज्जित होते हैं। कुकुरमुत्ता का कहना है कि बाजों को बजाने वाले हसन खाँ, बुद्धू, एवं पीटर आदि सभी मुझे बाँये से मानते हैं और दाँये से जानते हैं तथा जितने प्रकार की ताताधिन्ना चलती है उन सब में मेरी ही कला-बाजी लगी है। कुकुरमुत्ता गुलाब से कह रहा है कि नाच में भी मेरा ही जीवन खुला और मैं ही पैरों से तुला तथा कत्थक, कथकली और बाल डांस आदि सभी प्रकार के नाचों में मेरा ही अस्तित्व विद्यमान है।

कुकुरमुत्ता का कहना है कि किलयोपेट्रा, कमल, भौंरा एवं कोई भी रोमांस क्यों न हो और बहेलिया, मोर, मणिपुरी एवं गरबा कोई भी क्यों न हो तथा पैर, माथा, हाथ, गरदन, भौंहें मटकाने का अफ्रीकन या यूरोपीयन कोई भी नाच क्यों न हो पर सब में मेरी ही गढ़न है। कुकुरमुत्ता कह रहा है कि मेरे समक्ष किसी भी तरह का हावभाव नहीं ठहर पाता और सबमें मेरा ही आसीत्व रहता है तथा जहाँ भी शासक लड़ते हैं वहाँ पैंतरे बदल लेता हूँ परन्तु जहाँ कहीं पति-पत्नी के प्रोलेटेरियन झगड़े होते हैं वहाँ का तो कहना ही क्या है ? कुकुरमुत्ता कहता है कि जहाँ कहीं ब्याज डूबने लगता है वहाँ सूदखोर नाचते हुए दिखाई देता है पर मेरा नाच तो हमेशा चरम सीमा को पहुँच जाता है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में महाकवि निराला ने कुकुरमुत्ता के आत्मोद्गारों का सुन्दर चित्रण किया है और कुकुरमुत्ता स्वयं को सभी प्रकार के वाद्ययंत्रों, काव्यरूपों तथा नृत्य के प्रकारों में व्याप्त मानते हुए अपनी महत्ता का वर्णन करता है।

नही मेरे हाड़.........मैं ही बड़ा। (पृष्ठ १५०-१५१)

शब्दार्थ—हाड़ = हड्डियाँ। काठ = लकड़ी। जहन्नम = नरक, वह स्थान जहाँ बहुत अधिक दुःख और कष्ट हो। जिगर = हृदय। प्रोग्रेसीव = प्रगतिशील। जनक = पिता, निर्माण करने वाला। कनक = स्वर्ण, सोना।

व्याख्या—कुकुरमुत्ता कह रहा है कि मेरे शरीर में हड्डियाँ, काँटे, और लकड़ी आदि नहीं हैं तथा मेरा बदन आठोगाँठ का भी नहीं है बल्कि मैं तो पूर्णतया रसमय ही हूँ और एक ओर तो नरक सफेदी के लिए तरसता रहता है तथा दूसरी ओर मेरे शरीर में सफेदी ही सफेदी है। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं हमेशा रस में डूबता उतराता रहता हूँ और इस संसारमें सबने मुझसे रस चुराया है तथा मुझी में वाल्मीकि और व्यास ने गोते लगाये तथा भास और कालिदास ने मुझी से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। कुकुरमुत्ता के कहने का अभिप्राय यह है कि संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि वाल्मीकि और व्यास तथा प्रसिद्ध नाटककार भास और

कालिदास का उससे—कुकुरमुत्ता से—ही प्रेरणा प्राप्त हुई थी। कुकुरमुत्ता कह रहा है कि मेरे ही किनारे खड़े हुए हाफिज और रवीन्द्र जैसे बड़े-बड़े विश्व कवि टुकुर-टुकुर दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे।

कुकुरमुत्ता का कहना है कि अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि टी० एस० इलियट ने कहीं का पत्थर और कहीं का रोड़ा मिलाकर अपनी कविताएँ प्रकाशित करवा दीं तथा पाठकों ने इन कविताओं को पढ़कर, अपने हृदय पर हाथ रखकर कहा कि 'इलियट ने सम्पूर्ण संसार की वास्तविकता का चित्रण कर दिया पर इन पाठकों के सम्बंध में यही मत प्रकट करना उचित होगा कि जैसे शाम को किसी ने तारा देखकर समझ लिया हो कि मैं बहुत ज्यादा देखता हूँ। वास्तव में कवि यहाँ कुकुरमुत्ता के माध्यम से प्रयोगवादी साहित्यकारों पर व्यंग्य कर रहा है और उसने कुकुरमुत्ता से प्रगतिवादियों पर भी यह व्यंग्य करवाया है कि प्रोग्रेसीव लेखक तो लेखनी उठाते ही अपने जोश का पारा रोक नहीं पाता।

कुकुरमुत्ता गुलाब को सम्बोधित कर कहता है कि यहीं से यह कुल नवीन रूप धारण करने लगा और उसकी स्थिति तो यही हुई जैसे कोई स्त्री अम्मा से बुआ बन गयी हो। कुकुरमुत्ता का कहना है कि इजिप्त के पिरामिड मेरी ही सूरत के नमूने हैं और यूक्लीड मेरा ही चेला था और रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर तथा जगन्नाथ आदि के जितने सुन्दर मन्दिर हैं उन सबका मैं ही निर्माता हूँ तथा मैं ही सोने के जेवर के समान हूँ। कुकुरमुत्ता कहता है कि कुतुबमीनार, ताजमहल, आगरा एवं चुनार के किले, कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल, और बगदाद की मस्जिद तथा जुम्मा मस्जिद आदि प्रसिद्ध इमारतों के साथ-साथ सेंट पीटर्स गिरजाघर और घंटाघर आदि के गुम्बदों के निर्माण आदि में मेरी ही मोहर लगी है।

कुकुरमुत्ता कह रहा है मेरा ही प्रकाश एरियन पर्शियन, एवं गाथिक आर्च आदि पर पड़ता है और चाहे पहले के हों, बीच के हों या आज के हों तथा चेहरे से पिद्दी हों या फिर बाज के आकार के हों और चीन, फारस, जापान, अमरिका, रूस, इटली या इंगलिस्तान आदि स्थान के हों पर सभी

मुझसे ही प्रेरित हुए हैं। कुकुरमुत्ता का कहना है कि मैं ही सभी प्रकार के मकानों का—चाहे वे ईंट, पत्थर या लकड़ी के हों या फिर कहीं की भी मकड़ी के हों—निर्माता हूँ और मैं ही सभी का सर फाँसने वाला टेप हूँ तथा टर्की टोपी, दुपलिया टोपी और किस्ती केप आदि का निर्माण भी मेरा ही अनुकरण कर हुआ है। कुकुरमुत्ता नव्वाब की फुलवारी के गुलाब को सम्बोधित कर कह रहा है कि देख, यह अंगरेजी हेट मेरी ही नकल है और मैं आज सर पर चढ़ा हुआ घूमता हूँ तथा इससे सिद्ध हो जाता है कि तू नहीं; मैं ही इस संसार में बड़ा हूँ।

टिप्पणी—महाप्राण निराला ने कुकुरमुत्ता के इन आत्मोद्‌गारों में एक ओर तो कुकुरमुत्ता की आत्मप्रशंसा का चित्रण किया है और दूसरी ओर आधुनिक प्रयोगवादी एवं प्रगतिवादी साहित्यकारों की विचारधारा का व्यंग्यात्मक चित्रण भी किया है।

८१—वरद हुई शारदा जी हमारी (पृष्ठ १५५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने सरस्वती को वंदनीय माना है।

शब्दार्थ—वरद=वर प्रदान करने वाली, मनोकामना पूर्ण करने वाली। विशोक=शोक रहित। गगन=आकाश। पाँखों=पक्षियों। सुमंगल=शुभ, मंगलपूर्वक। मयूर=मोर। मेघ=बादल। कामिनी=स्त्री। ललक=गहरी चाह, उत्कट अभिलाषा।

व्याख्या—कवि का कहना है कि शारदा जी अर्थात् माता सरस्वती हमारी मनोकामना पूर्ण करने वाली सिद्ध हुईं और वह अर्थात् शारदा जी वसंत की शुभ्र सँवारी हुई माला धारण किए हुए हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि बंगाल में वसंत पंचमी के दिन सरस्वती की पूजा प्रचलित है अतः निराला जी ने भी इस कविता में सरस्वती को वसंत की सँवारी हुई माला धारण किये हुए अंकित किया है।

कवि कह रहा है कि शारदा जी के नेत्रों की कृपा से ही सभी लोक अब शोकरहित हो गए अर्थात् सरस्वती ने अपने करुणामय नेत्रों से संसार का

शोक हरण कर लिया। साथ ही जिस प्रकार आकाश मंडल के लाखों पक्षियों का झुंड उमड़ता हुआ दिखाई देता है उसी प्रकार अब शारदा जी की कृपा से मन में हर्ष का भी सागर उमड़ रहा है और कोयलें मंजरी की शाखों से तुम्हारी अर्थात् सरस्वती की प्रार्थना में सुमंगल होली के गीत गा रही हैं।

कवि कहता है कि प्रातःकाल होते ही मोर नाचने लगे और बादलों के नीचे एकत्र हो वे हर्षपूर्ण हो गए। साथ ही जिस प्रकार कोई युवती किसी मंत्र के वशीभूत हो अपना मन कहीं हार बैठती हो और उस प्रेमी से मिलने के लिए उत्सुक हो जाती हो उसी प्रकार मोर भी अपने प्रिय बादलों से भेंट करने के लिए उत्सुक प्रतीत हुए।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में एक ओर तो महाप्राण निराला ने अपनी भक्ति भावना का चित्रण किया है और दूसरी ओर प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण करते समय वसंत ऋतु की संक्षिप्त झाँकी भी अंकित की है।

८२—कूची तुम्हारी फिरी······(पृष्ठ १५५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने अज्ञात रहस्यात्मक शक्ति की महत्ता का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—कूची = तूलिका। कानन = जंगल, उपवन। आनन = मुख, वदन। श्वेत = सफेद। शतदल = कमल। सर = तालाब।

व्याख्या—कवि अज्ञात रहस्यात्मक शक्ति को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम्हारी तूलिका उपवन में फिरी और उसने फूलों का मुख स्पर्श किया। कवि कहता है कि जब अज्ञात रहस्यात्मक शक्ति की तूलिका ने उपवन के फूलों का स्पर्श किया तब वसंती एवं गुलाबी रंग के फूल विकसित हो उठे और लाल पलास के सुखपूर्ण फूल भी लिखने लगे। साथ ही तालाब के जल में नीले और सफेद कमल सुशोभित हो उठे तथा पंचानन में केशर चमकने लगी।

टिप्पणी—केवल छह पंक्तियों की इस कविता में कवि के प्रकृति सम्बन्धी दृढ़ अनुराग का परिचय मिलता है और विचारक उचित ही कहते हैं 'प्रकृति के प्रति हमारे इस अनुराग का ही यह परिणाम है कि हमने अपनी संस्कृति और साहित्यिक अभिरुचि का निर्माण करते समय अपने यहाँ की निसर्ग सुन्दर

रमणीय भूमि की ओर विशेष दृष्टिपात किया है। हमने प्रकृति को सदैव स्वास्थ्य-समन्वित माना है और उसके प्रति हमारा यह दृढ़ विश्वास रहा है कि वही हमें निरंतर पवित्र जीवन, यौवन और अनुरक्ति का संदेश प्रदान करती आई है। हमारी इस आस्था और अनुराग भावना का प्रकृति ने भी यथोचित उत्तर दिया है और अपने स्नेहशील क्रोड़ में हमारी समग्र भाव वृत्तियों को विकसित होने का अवसर प्रदान किया है।'

८३–कुंज कुंज कोयल बोली है (पृष्ठ १५६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्रकृति सौन्दर्य का सुन्दर भावपूर्ण चित्रण किया है।

शब्दार्थ—मादकता = मतवालापन। गुहा = गुफा। श्रवण = सुनाई देना, कान। उन्मादन = पागलपन मतवाली। सहज = स्वाभाविक। छादन = छाने का कार्य, एक वृक्ष। आच्छादन = वस्त्र, आवरण, ढकना। जरा = बुढ़ापा। सुरभित = सुगंधित। तारक = उद्धार करने वाला, यहाँ नक्षत्र से अभिप्राय है। रवि के कर = सूर्य की किरणें। संचित = एकत्र।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि कि कुंज-कुंज में कोयल बोल रही है और उस कोयल के स्वर का मतवालापन चारों ओर मधुर रस घोल रहा है। कवि कहता है कि बादल गरज रहे हैं और जंगल में पल्लव काँप रहे हैं अर्थात् हिल-डुल रहे हैं तथा बादलों की आवाज गुफा में गूँज रही है जो कि कानों को मतवाली लगती है। कवि का कहना है कि वृक्ष स्वाभाविक रूप से झूम झूम कर धरती को ढँक रहे हैं और प्रत्येक प्राणी के शरीर की नसें रसमय हो गयी हैं।

कवि कहता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में एक प्रकार की मधुरता सी व्याप्त हो गयी है और चाहे घर हो या जंगल सर्वत्र ही प्राणिमात्र को बुढ़ापे या मृत्यु का कोई डर नहीं रहा क्योंकि सभी के प्राणों को जीवन का रस पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कवि कह रहा है कि फूलों का पराग चारों ओर बिखर रहा है और इस मकरंद की बूँदों से पल्लव की चोली सुगंधित हो गयी है। कवि का कहना है कि सूर्य नक्षत्र की एकत्र किरणों का समूह धरती को

ज़ीवन प्रदान कर रहा है और वृक्षों की डालियों पर भँवरे गुंजायमान हैं तथा अलिका की कलिका डोल रही है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता को चित्रण कला का सुन्दर उदाहरण समझना चाहिए और डॉ० शम्भूनाथ सिंह का यही कहना है 'काव्य में चित्रण कला का बहुत अधिक महत्व है। काव्य भाव या वस्तु का शब्द चित्र है। शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति करके कवि अपनी अनुभूति को दूसरों तक पहुँचाता है।'

८४–फूटे है आमों में बौर (पृ० १५६-१५७)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने होली का संक्षिप्त वर्णन किया है।

शब्दार्थ—भौंर = भ्रमर। ठौर ठौर = प्रत्येक स्थान में।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि आम के वृक्ष में बौर आ गये हैं और भँवरे जंगलों में मँडराते घूम रहे हैं तथा प्रत्येक स्थान में होली की धूम मच गयी है और सभी प्रकार के बंधन छूट गये हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि होली के समय लोगों में जाति-पाँति का कोई बंधन नहीं रहता और सभी मिल जुलकर होली का त्यौहार मनाते हैं। कवि का कहना है कि फागुन के रंग राग की चारों ओर बहार सी है और बगीचों तथा जंगलों में फाग की धूम है तथा ऐसा जान पड़ता है कि मानो मोती के झाग से बिखरे पड़े हों और होली के इस उत्सव ने प्रत्येक मनुष्य का मन लूट लिया है। इसका अभिप्राय यह है कि होली ने प्रत्येक मनुष्य के मन को आनंद मग्न कर दिया है। कवि कहता है कि माथा अबीर से लाल हो गया और गालों की लालिमा देखकर यही प्रतीत होता था कि मानों उन पर सेंदुर सा लगा हुआ हो तथा आँखें भी गुलाल हुई जा रही थीं और सर्वत्र लालिमा का प्रसार देखकर यही प्रतीत होता था कि मानों गेरू के ढेले ही कूट कर बिखेर दिये गये हों।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है और छायावादी काव्यधारा में रीति बंधनों में जकड़ी हुई काव्य प्रतिभा को मुक्त करने की प्रतिक्रिया विद्यमान होते हुए भी छायावादी कवि अलंकारों का अपरोक्ष मोह किसी भी भाँति अपने अन्तर से नहीं निकाल सका

है। स्वयं छायावादी कविता के प्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत ने स्वीकार किया है 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं; वे भाव कि अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति नीति हैं; पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गयी हों विशेष भावों के झोंके खाकर बाल लहरियों, तरुण तरंगों में फूट गयी हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्त्तों में नृत्य करने लगी हों, वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक हाव भाव हैं।'

८५–अट नहीं रही है (पृष्ठ १५७-१५८)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने फागुन (फाल्गुन) माह की प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—अट = हिलना-डोलना। आभा = कांति, चमक। शोभाश्री = सुन्दरता का वैभव।

व्याख्या—कवि का कहना है कि फागुन के तन की कांति न तो हिल डोल रही है और न एक स्थान पर ही सट रही है अर्थात् फागुन माह में प्रकृति कुछ इतना अधिक सुन्दर प्रतीत होती है कि उसकी शोभा को सीमित नहीं किया जा सकता। कवि कह रहा है कि तुम कहीं तो साँस लेते ही घर को अपनी श्वास से पूर्ण कर देते हो तथा आकाश में विचरण करने के लिए अपने पंख फैलाते हो परन्तु मैं जब तुम्हारी ओर से अपनी आँख हटाना चाहता हूँ तो आँखें नहीं हट पातीं। कवि कहता है कि वृक्षों की डाल पत्तों से लद गयी है और कहीं हरी तथा कहीं लाल डाल दिखाई देती है और कहीं हृदय में मन्द मन्द गंधवाली फूलों की माला पड़ी है तथा प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य का वैभव इतना अधिक है कि उक्त वैभव सृष्टि में समा नहीं रहा है।

टिप्पणी—यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो सरलता इस कविता का प्रधान गुण है और Style should very in accordance with the

emotion अर्थात् भाषा-शैली भावानुरूप होनी चाहिए, नामक उक्ति प्रस्तुत कविता के प्रति पूर्ण चरितार्थ होती है।

८६–खेलूंगी कभी न होली (पृष्ठ १५८)

संदर्भ—महाकवि निराला की इस कविता में एक गोपिका के उद्‌गारों का वर्णन हुआ है।

शब्दार्थ—हमजोली = सहयोगी, साथी। तोली = टोली का विकृत रूप। ठठोली = दिल्लगी, मजाक। नाता = सम्बन्ध।

व्याख्या—एक गोपी कहती है कि जो मेरा सहयोगी नहीं है उससे मैं कभी भी होली नहीं खेलूँगी। गोपी का कहना है कि यह नेत्र कुछ बोलते से जान पड़ते हैं और यह तो श्याम के साथियों का ही झुंड है तथा उन्होंने हम गोपियों की गाढ़े रेशम की चोली पर रंग डालकर कुछ विचित्र सी दिल्लगी की है। गोपी अपनी सहेलियों से कह रही है कि तुम स्वयं अपना मुख धो लो और अपना घूँघट भी तुम्हीं खोलो क्योंकि मैं तो परायी टोली में जाकर बस रही हूँ। गोपी का कहना है कि मेरा जिनसे कुछ भी सम्बन्ध होगा उनके समक्ष यह माथा झुक जायगा और मैं अपने सच्चे साथी से सम्बन्ध स्थापित कर लूँगी तथा अपने प्रिय के समक्ष मोल बिक जाऊँगी।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में सरल एवं सुबोध शब्दावली में अनूठी भाव-व्यंजना की गयी है और यहाँ यह स्मरणीय है कि 'जिस कवि की अनुभूति सीधी और सच्ची होगी अर्थात् जिसका प्रत्यक्षीकरण जितना ही स्पष्ट होगा, मूर्ति विधायिनी और ग्राहिका कल्पना जितनी तीव्र होगी, स्मृति जितनी शक्तिशालिनी होगी और भावनाएँ जितनी वेगयुक्त होगी, भाषा शैली भी उतनी ही सीधी, स्पष्ट, प्रभाव पूर्ण, प्रवाहयुक्त और शक्तिशालिनी होगी।'

८७–केशर की, कलि की पिचकारी (पृष्ठ १५६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने होली का सुन्दर भावपूर्ण चित्रण किया है।

शब्दार्थ—पात-पात = प्रत्येक पत्ते में। कपोल = गाल। अमोल = अमूल्य। तरु = वृक्ष। उदोत = प्रकाश, ज्योति। अविरत = लगातार।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि प्रकृति ने कलियों की पिचकारी में केशर का रंग भर कर प्रत्येक पत्ते के शरीर पर छिड़क दिया है अर्थात् प्रत्येक पत्ता होली के रंग में सराबोर है। साथ ही पराग के राग से गाल लाल हो गये हैं और अमूल्य लाल-गुलाल कपोलों पर लगा हुआ है तथा वृक्षों का शरीर रंग से अनुरंजित जान पड़ता है। कवि का कहना है कि पवन की गंध चारों ओर बिखरी हुई है और शुभ्र प्रकाश की ज्योति प्रकृति की आरती उतार रही है। कवि कहता है कि पक्षियों के समूह का कंठ सैकड़ों मधुर गीत गा रहा है और ऐसा जान पड़ता है कि नदी के तट पर जब लहरें टकराती हैं तब मानो मृदंग की मधुर ध्वनि सी सुनाई देती है तथा वह लगातार सबका मनोरंजन करने में जुटी हुई है। कवि कह रहा है कि आकाश में विहार करने वाले पक्षियों के समूह ने सृष्टि को प्रणय के राग से अनुरंजित सा कर दिया है और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखरा हुआ दिखाई देता है।

टिप्पणी—वस्तुतः यह कविता महाप्राण निराला की अनूठी कल्पनाशक्ति का परिचय देती है और श्री रामदहिन मिश्र के कथनानुसार 'कल्पना की एक विशेषता यह है कि वह कुछ ऐसे सत्यों का स्वरूप भी निर्धारित करती है जो प्रत्यक्ष नहीं, अपितु संभावित है। यथार्थ जगत में जो प्रत्यक्ष है, वह उतना ही सब कुछ है पर कल्पना प्रसूत जगत में जो वह है, जो हो सकता है, जिसके होने की सम्भावना है इसी कारण हृदय जगत से भाव जगत का महत्व बढ़ जाता है।' इस कविता को इसी कल्पना शक्ति का उदाहरण कहा जा सकता है।

८८–गोरे अधर मुसकाई (पृष्ठ १५९-१६०)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने वसन्त की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ–परिमल=सुगंध। निर्झर=झरने। घात=प्रहार, चोट। भाल =माथा, मस्तक। अरुणाई=लालिमा।

व्याख्या—कवि का कहना है कि वसन्त की बिदाई का समय आ गया और गोरे अधर मुस्करा रहे हैं तथा अंग-अंग बल खा रहा है। साथ ही सुगंध

के जो झरने प्रवाहित हो रहे हैं वे अपने खुले नेत्रों से यही स्पष्ट करते हैं कि हमने इस निष्ठुर संसार के कई आघात सहे पर बात कुछ भी न बन पाई और न जाने बात कहाँ से कहाँ तक चली आई।

कवि कह रहा है कि आकाश के मस्तक पर ऊषा का टीका लगा हुआ है और पी का स्वभाविक संदेश चमक रहा है तथा पतिपावन जी का भय छूट गया। कवि का कहना है कि युवा अर्थात् नवीन लालिमा फैल रही है और ऐसा जान पड़ता है कि सगाई छूट गयी है।

टिप्पणी—महाप्राण निराला ने इस कविता में प्रकृति चित्रण की उद्दीपन एवं मानवीकरण प्रणालियों का आकर्षक प्रयोग किया है।

८९—फिर उपवन में खिली चमेली (पृ० १६०)

संदर्भ—महाकवि निराला ने 'फिर उपवन में खिली चमेली' नामक कविता में प्रकृति सौंदर्य का मनोमुग्धकारी चित्रण किया है।

शब्दार्थ—अपराजित = जो पराजित न हो। रंगरेली = आमोद, खेल, मौज।

व्याख्या—कवि कहता है कि बगीचे में फिर से चमेली खिली और मंद पवन उस अकेली की सुगंध को सर्वत्र प्रसारित करने लगी। कवि कह रहा है कि रूपवती युवती समाज के सभी सुख साज आज के छीन लिए गए और बादलों का झुंड सा एकत्र हो गया तथा उस कोमल कमल विलास सहेली पर उमड़ पड़ा। कवि का कहना है कि वह नेत्र झुकाए हुए चमेली अपराजिता ही रही और बादलों का दल उसे पराजित न कर सका क्योंकि वह अपने ही यौवन से विन्नत थी तथा जूही एवं मालती आदि सखियों के साथ मिलकर हँसते हुए मौज मना रही थी।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्राकृतिक सुषमा का अत्यन्त भावग्राही चित्रण किया है और यह कविता (Aesthetic Imagination) का उल्लेखनीय उदाहरण है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में 'कांट के अनुसार यह कल्पना सौन्दर्यानुभूति की जननी होती है। यह केवल विधायक ही नहीं होती, प्रत्युत स्वतंत्र होती है। कवि इसी कल्पना के बल

पर नवीन पदार्थों को, नूतन अनुभूतियों को जन्म दिया करता है। कालरिज के मतानुसार इसका अभिधान है अमुख्य प्रतिभा। यह प्रारम्भिक कल्पना के द्वारा उपस्थित अनुभूतियों का विश्लेषण तथा विभाजन करती है तथा उसका नवीन ढंग से निर्माण कर एक विचित्र सरस पदार्थ की रूपरेखा हमारे मानस पटल पर खींच देती है।'

९०—फिर बेले में कलियाँ आईं (पृष्ठ १६१)

संदर्भ—महाप्राण निराला की यह कविता प्रकृति चित्रण सम्बन्धी है और इसमें सावन मास की प्रकृति का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ—अलि = भ्रमर, भौंरा पर यहाँ कोयल से अभिप्राय है। स्फीत = बढ़ा हुआ, फूला हुआ। सहसा = अचानक, एकाएक। पूर्वा = पूर्व दिशा। सरिताएँ = नदियाँ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि फिर बेलों में कलियाँ आईं और डालों पर कलियाँ मुस्कराने लगीं। अब तक जो वृक्ष पानी से सींचे न जाने के कारण किसी प्रकार जीवित रह गये थे, वे अब अचानक ही जलरूपी रस का पान कर फूलने लगे और बढ़ने लगे। साथ ही प्रत्येक मनुष्य के नस नस में खुशी की लहर दौड़ गयी और नहरों की लालिमा लहराने लगी अर्थात् नहरें जल से पूर्ण हो गयीं।

कवि का कहना है कि सावन का आगमन होने पर चारों ओर कजली और बारहमासा आदि गाये जाने लगे तथा पूर्व दिशा में बादल उड़-उड़कर एकत्र होने लगे अर्थात् पूर्व दिशा में काले बादलों का समूह एकत्र हो गया। साथ ही मनुष्य के प्राणों में नव जीवन आ गया और वृक्ष के प्रत्येक पत्ते में नवीन बहार आ गयी।

कवि कहता है कि जो प्रवासी अब तक अपने घरों से दूर थे, वे अब आमों की सुगंध से खिंच कर घर लौट आये हैं। इस प्रकार घरों में सुन्दर बन्दनवार बंध गये हैं और नदियाँ जल से पूर्ण हो उमड़ उठी हैं तथा उतराने लगी हैं।

टिप्पणी—यह कविता शब्द सौन्दर्य की दृष्टि से सराहनीय है और यहाँ

यह भी ध्यान में रखना होगा कि अपनी काव्यसाधना के अन्तिम चरण में निरालाजी काव्य भाषा के ऐसे रूप की खोज कर रहे थे जिनमें लोक भाषा की बोधगम्यता और काव्य भाषा की मधुरता दोनों एक साथ मिल जायें। उन्होंने एक स्थल पर कहा भी है 'गीत के साथ गले का सम्बन्ध पहला है। प्रस्तुत गीतों की तद्वत् सफलता के न होने के कारण खड़ी बोली का पाठ, इसलिए गले को सफलतापूर्वक न उतर जाना है। साधारण जन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते। उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मँज कर मसृण नहीं हुई। खड़ी बोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है ; ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं।' इस प्रकार प्रस्तुत कविता की काव्यभाषा में बोधगम्यता, माधुर्य एवं गेयता आदि विशेषताएँ हैं और महाकवि निराला की काव्यभाषा के सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन सर्वथा सत्य है कि 'उन्होंने हिन्दी पद विन्यास को भी अधिक प्रशस्त बनाने का सफल प्रयास किया। अत्यन्त सार्थक शब्द सृष्टि द्वारा निराला जी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है। संगीतज्ञ होने के कारण शब्द संगीत परखने और व्यवहार में लाने में वे आधुनिक हिन्दी के दिशानायक हैं, अनुप्रास के वे आचार्य हैं।

६१—मालती खिली कृष्ण मेघ की (पृ० १६१-१६२)

संदर्भ—महाकवि निराला की इस कविता में प्रकृति सौन्दर्य की मुख्य झाँकी अंकित की गयी है।

शब्दार्थ—कृष्णमेघ = काले बादल। धरा = धरती। विपुल = बहुत अधिक। पल्लवित = हरा भर। मनोहर = सुन्दर, आकर्षक। दृगों = नेत्रों। स्निग्ध = स्नेहयुक्त, सरल। निदाघ दाह = ग्रीष्म या गर्मी की जलन। अरहर = एक प्रकार का अनाज।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि काले बादलों की मालती खिल गयी है अर्थात् काले-काले बादल चारों ओर छा गये हैं और धरती इन बादलों की छाया में घिरी हुई है। साथ ही जो धरती अब तक ग्रीष्मऋतु के कारण पीड़ित जान पड़ती थी, वह अब वर्षा के बादलों का आगमन होते ही जल से

सींची जाने के कारण मधुर जान पड़ती है और हरी भरी तथा सुन्दर प्रतीत होती है।

कवि का कहना है कि ग्रीष्मऋतु की जलन समाप्त हो गयी है और चारों ओर एक प्रकार की सरल शांति सी फैल गयी है तथा मन्द मन्द गंध का सुखद प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। साथ ही लताएँ हिल रही हैं और चारों ओर सरस उत्साह दिखायी दे रहा है।

कवि कहता है कि धरती पर अन्न के अंकुर दिखायी दे रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसे अब नवजीवन प्राप्त हुआ है। साथ ही धान, ज्वार, अरहर और सन के पौधे लहलहा रहे हैं तथा पके आम की गंध से युक्त मधुर पवन प्रवाहित हो रही है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्रकृति सौन्दर्य का मनोमुग्धकारी अंकन हुआ है और यह कविता महाप्राण निराला की अनूठी कल्पना शक्ति की भी द्योतक है।

६२—बाँधो न नाव इस ठाँव, बंधु (पृ० १६२)

संदर्भ—महाकवि निराला ने इस कविता में विगत स्मृतियों का भावपूर्ण चित्रण किया है।

शब्दार्थ—ठाँव = स्थान। बन्धु = भाई।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे भाई ; तुम नौका को इस किनारे पर मत बाँधो क्योंकि तुम यदि नाँव को यहाँ बाँध दोगे तो सारा गाँव उसके विषय में पूछेगा। कवि कहता है कि यह वही घाट है जिस पर वह हँसकर और गहरे पानी में जाकर स्नान करती थी तथा उसे स्नान करते देखकर पास के अन्य युवकों की आँखें उसे टकटकी लगाकर देखती रहतीं और वहीं उलझ कर रह जातीं पर लोक लज्जा के कारण उस युवती के हृदय में भय उत्पन्न हो जाता और उसके दोनों पैर काँपने लगते थे। कवि कह रहा है कि वह युवती किनारे पर स्नान करती हुई हँसती रहती थी और उसकी यह हँसी ही बहुत कुछ बता देती थी लेकिन वह अपने में ही मग्न रहती थी अर्थात् वह अपना संतुलन नहीं खोती थी। कवि कहता है कि हे बन्धु, वह युवती सबकी

बातों को सहन करती थी और सबकी बातें सुनती थी पर सबको दाँव देने में भी वह निपुण थी ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में विगत स्मृतियों का अंकन करने में कवि ने प्राकृतिक उपकरणों की भी प्रसंगानुसार सहायता ली है ।

६३–फिर नभ घन घहराये (पृ० १६३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने वर्षाॠतु के बादलों का मनोहर वर्णन किया है ।

शब्दार्थ—घन = बादल । चपला = बिजली । कौंधी = चमक रही है । अलक = घुंघराले बाल । दिवस = दिन । निशा = रात्रि । आतप = ग्रीष्म, गर्मी । प्रसून = फूल ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि आकाश मंडल पर फिर से बादल घहराने लगे और चारों ओर बादल छा गये । जिस प्रकार काले आकाश में बिजली रह रह कर चमक उठती है उसी प्रकार प्रिया का सुन्दर मुख घुँघराले बालों के मध्म सुहावना जान पड़ता है । साथ ही अश्रुधारा के समान आकाश से बूंदें धरती पर बिखर रही हैं और धरती का हृदय भीग गया है ।

कवि का कहना है कि दिन रात्रि का सुखद स्वप्न है और चारों ओर एक प्रकार की अपूर्व ज्योति सी फैली हुई है । साथ ही जो फूल ग्रीष्मॠतु की गर्मी के कारण कुम्हला रहे थे वे अब वर्षाॠतु के बादलों की जल वृष्टि के कारण विकसित हो रहे हैं तथा खिले हुये ये फूल बहुत अधिक सुन्दर जान पड़ते हैं ।

कवि कह रहा है कि धरती पर दूब विकसित हो रही है और चारों ओर दूब की हरियाली छाई हुई है तथा ऐसा जान पड़ता है कि गली गली में सुख की सेज बिछी हुई है । कवि का कहना है कि वर्षाॠतु के आगमन से प्राकृतिक वातावरण में जो नवीनता एवं रम्यता आ जाती है, उसे देखकर यही कहने की इच्छा होती है कि प्रकृति सुन्दरी की सुषमा अनेक रंगों से रंगी हुई है ।

टिप्पणी—महाप्राण निराल की इस कविता में मानव और प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध को प्राथमिकता दी गयी है ।

९४—प्यासे तुमसे भरकर हरसे (पृ० १६३-१६४)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने सावन (श्रावण) के महीने की प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—विद्युत = बिजली। अविकृत्रिम = जो नकली न हो अर्थात् स्वाभाविक।

व्याख्या—कवि सावन के बादलों को सम्बोधित कर कह रहा है कि सावन के घन प्राणों में बरस उठे और प्यासे प्राणी तुम्हारे कारण हर्षपूर्ण हो गये तथा नेत्रों में श्याम छटा छा गयी और बिजली की नवीन छवि नस-नस में उमंग का संचार करने लगी। कवि कहता है कि चारों ओर हरियाली फैल गयी और अनेक रंगों के बादल धरती का स्पर्श करने लगे अर्थात् रंग बिरंगे बादल धरती पर छा रहे हैं। कवि का कहना है कि प्रतिक्षण पश्चिमी पवन जब प्रवाहित होती थी तब ऐसा जान पड़ता था कि मानों लगातार रिमझिम करती वीणा बज रही हो और बादलों की ध्वनि मृदंग वादन के समान प्रतीत होती थी तथा मानव-मन स्वाभाविक रूप से प्रसन्न जान पड़ता था।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी ने प्रकृति सौन्दर्य की सुरम्य झाँकी अंकित की है और अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों की स्वाभाविक योजना भी की है।

९५. जिधर देखिये, श्याम विराजे (पृ० १६४)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला की भक्ति भावना के दर्शन होते हैं और उन्होंने सर्वत्र ही श्याम की सत्ता स्वीकार की है।

शब्दार्थ—गगन = आकाश। घन = बादल। घन वारिद = जल से पूर्ण बादल। गाजे = गरजता है। धरा = धरती, पृथ्वी। तृण = तिनका। गुल्म = पौधा। सुरभि = सुगंधि। बलाका = बक पाँति, बगुलों की कतार। शालि = एक प्रकार का धान। नभ = आकाश। मयूर = मोर। कोकिला = कोयल। श्यामा = काली। कूजन = कोयल की कूक। मृदु = कोमल। नयन = नेत्र।

श्रुति = वेद की रचनाएँ। दीपशिखा = दीप या चिराग की लौ। तामरस = कमल। सरोवर = तालाब। अनिल = पवन।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हमारी दृष्टि जिस ओर जाती है उधर ही हमें श्याम विद्यमान दिखाई देते हैं अर्थात् चारों ओर श्याम की शोभा फैली हुई है। कवि का कहना है कि कुंज और वन दोनों ही श्याम है। ताथ यमुना का रंग भी श्याम है। साथ ही आकाश भी श्याम है और श्याम रंग के बादल भी गरज रहे हैं तथा धरती भी श्याम दिखाई देती है और तिनके एवं पौधे भी श्याम रंग के हैं। इसी प्रकार श्याम सुगंधि ही चारों ओर फैली हुई है और बगुलों की कतार भी श्याम दिखाई देती है तथा शालि नामक धान के पौधे भी श्याम हैं। इतना ही नहीं आकाश पर श्याम की विजय के बाजे भी बज रहे हैं।

कवि सर्वत्र श्याम की विद्यमानता का संकेत करते हुए कहता है कि मोर भी श्याम हैं और वे सुन्दर नृत्यु कर रहे हैं तथा श्याम कोकिला की भी मधुर ध्वनि सुनाई दे रही है। साथ ही काम भी श्याम है और दिन के मध्य में रवि भी श्याम प्रतात हो रहा है तथा श्याम नेत्रों में श्याम काजल भी लगा हुआ है। साथ ही श्रुति के अक्षर भी श्याम हैं और दीपशिखा पर भी श्यामता ही दिखाई देती है तथा श्याम तालाब में श्याम कमल खिले हुए हैं। इसी प्रकार पवन भी श्याम है और श्याम की छवि ही सर्वत्र फैली हुई है।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी की धार्मिक आस्था के साथ-साथ काव्य कल्पना भी दर्शनीय है।

८६–पारस मदन हिलोर न दे तन (पृष्ठ १६५)

संदर्भ—महाकवि निराला ने प्रस्तुत कविता में सावन की प्राकृतिक पीठिका में प्रणय भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—मदन = कामदेव। द्रुम राजि = वृक्षों का समूह। नूपुर = घुंघरू।

व्याख्या—कवि किसी प्रणयिनी की भावनाओं का चित्रण करते हुए कह रहा है कि सावन झूम-झूमकर बरस रहा है और कहीं ऐसा न हो कि

कामदेव मेरे शरीर में उथल-पुथल मचा दे। उस प्रणयिनी का कहना है कि वन में वृक्षों का समूह अब सुसज्जित हो गया है और उसने हरे वस्त्रों के सदृश्य हरीतिमा को धारण कर लिया है तथा जूही की कलियों पर भँवरों का समूह मँडरा रहा है। वह प्रणयिनी कहती है कि मधु की गलियों में नूपुर की ध्वनि सुनाई दे रही है और पिछड़े हुए मन भावन अर्थात् प्रियतम घर लौट आये।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्रणयिनी के हृदयोद्गारों की स्वाभाविक व्यंजना ही हुई है और प्रेम भावना का इतना सुन्दर चित्रण बहुत ही कम कवियों ने किया है। यहाँ यह स्पष्टीकरण भी आवश्यक है कि निराला जी की प्रेम भावना वासनोन्मुख नहीं है और हमारे विचारक प्रेम एवं काम में विभिन्नता ही प्रतिपादित करते हैं तथा श्री परशुराम चतुर्वेदी के कथनानुसार 'काम एवं प्रेम के बीच महान् अंतर है। काम की वासना वस्तुतः स्थूल शरीरादि से सम्बन्ध रखती है और उन्हीं का उपभोग करना चाहती है तथा इस प्रकार वह कुछ काल के लिए तृप्त भी हो जाया करती है। किन्तु प्रेम के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसका आधार प्रधानतः मानसिक अथवा हृदय परक हुआ करता है और वह सदा एक रसता की अपेक्षा करता है। इसके सिवाय काम एक प्रकार की चाह वह अभिलाषा है जिसका प्रमुख उद्देश्य स्वार्थपरक हुआ करता है, जहाँ प्रेम के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता।'

८७—केश के मेचक मेघ छुटे (पृष्ठ १६५)

संदर्भ—महाकवि निराला की प्रस्तुत कविता में सौन्दर्य भावना की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है।

शब्दार्थ—मेचक=धुआँ, काला। पग=चरण, पैर। नद=बड़ी नदी। पौर=पुर का, नगर सम्बंधी।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि उस रूपवती रमणी के बादलों के समान काले-काले बाल बिखरे हुए हैं और उस रूपवती नारी के चरणों के समक्ष अनेक युवक अपने पलक पल्लव बिछाये रहते हैं। साथ ही उस रूपवती

रमणी के इतराए हुए नेत्रों में सुख उसी प्रकार छाया रहता है जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं पर फूल खिलते हैं और उसकी सुगंधि आकाश में फैली हुई तथा रम्भा भी उससे अनुरंजित सी है।

कवि का कहना है कि वह रूपवती रमणी साड़ी धारण किए हुए है और उस साड़ी में उसकी मुख-छवि बहुत सुन्दर जान पड़ती है। इस प्रकार उस रमणी का मुख देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो बहुत देर बाद सूर्य उदय हुआ है। कवि कह रहा है कि जिस प्रकार बड़ी नदी में जल की अधिकता होते ही बाढ़ आ जाती है और नगर उस नदी के प्रवाह में निमग्न होने लगते हैं उसी प्रकार रूपवती रमणी की सुहावनी छवि का दर्शन होते ही मन का दुःख दूर हो जाता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता बिम्ब योजना दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है और श्री जनार्दन द्विवेदी ने अपनी कृति 'निराला काव्य का अभिव्यंजना शिल्प' में कहा भी है 'प्रत्येक कवि के काव्य बिम्बों का अपना एक विशिष्ट वातावरण रहता है। निराला की कविता के प्रथम चरण में प्रकृति और लोक जीवन दोनों से बिम्ब ग्रहण किये गये हैं। निराला की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने प्रकृति के सुकुमार, कोमल तथा परुष विराट्, दोनों प्रकार की बिंब सृष्टि की है। छायावाद काल के कवियों के काव्य पर यदि हम इस दृष्टि से विचार करें कि किस कवि में किस इन्द्रियबोध की प्रधानता है तो हमें निराला में चक्षुरिन्द्रिय की प्रधानता मिलेगी। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि निराला के काव्य बिम्ब बहुत भास्वर और स्पष्ट होते। निराला ने जिस वस्तु को अपने काव्य का विषय बनाया है उसका बहुत ही साफ चित्र प्रस्तुत किया है। चित्रांकन की ऐसी क्षमता उनके समकालीनों में कदाचित किसी में नहीं थी।

९८–धिक मनस्सब मान गरजे बदरवा (पृष्ठ १६६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने सावन के गरजते हुए बादलों का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—मान = अहंकार। वारि = जल। वसन = वस्त्र। चरायन =

चारागाह। लरजना=हिलना, काँपना। कामद=इच्छा पूरी करने वाला। शिखर=पर्वत। शैल=पर्वत।

व्याख्या—कवि किसी प्रणयिनी की भावनाओं का वर्णन करते हुए कहता है कि अब किसी भी प्रकार का मान करना बेकार है क्योंकि बादल गरज रहे हैं और ऐसा जान पड़ता है कि बादलों की ध्वनि में कोई गीत गूँज रहा हो। अतएव अब तो झूला झूलने का समय आ गया है। कवि का कहना है कि चीर के धनुष के तीर छूट रहे हैं और बूँदों के जलरूपी वस्त्र में अद्भुत बूटे से दिखाई देते हैं तथा लोग मधुर गीत गा रहे हैं। साथ ही चारागाहों में अधिकाधिक घास उत्पन्न होने के कारण चारागाह पटे हुए जान पड़ते हैं और पेड़ के तले जल भर आया है तथा बादल हिल-डुल रहे हैं। कवि कहता है कि बादल पर्वत की चोटियों पर फैल गए हैं और चारों ओर बादलों का ही प्रसार दिखाई देता है तथा गाँवों से लेकर नगरों तक गीत गूँज रहे हैं और बादलों की गर्जना सुनाई देती है।

टिप्पणी—इस कविता में प्राकृतिक दृश्यों का यथातथ्य चित्रण किया गया है।

तुलनात्मक दृष्टि—श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी एक स्थल पर बादलों का अलंकृत वर्णन करते हुए कहा है—

बादलों के छायामय मेल, घूमते हैं आँखों में फैल।
अवनि औ अम्बर के वे खेल, शैल में जलद, जलद में शैल।
शिखर पर विचार मरुत रखवाल, वेणु में भरता है, जय स्वर।
मेमनों से मेघों के बाल, कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।
द्विरद दंतों से उठ सुन्दर, सुखद कर सीकर से बढ़कर।
भूति से शोभित बिखर बिखर, फैल फिर कटि के से परिकर।
बदल यों विविध बेश जलधर बनाते थे गिरि को गजवर॥

६९—(अ) धिक मद, गरजे बदरवा (पृष्ठ १६६)

संदर्भ—प्रस्तुत लघु कविता में गरजते हुए बादलों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

शब्दार्थ—सुहावे=अच्छी लगे, सुशोभित हो। नरवा=नाला। कगरवा =किनारा, मेंड़।

व्याख्या—कवि किसी प्रणयिनी की भावनाओं का वर्णन करते हुए कह रहा है कि बादल गरज रहे हैं और अब किसी भी प्रकार का अहंकार शोभा नहीं देता तथा यह मद धिक्कार तुल्य ही है। वह प्रणयिनी कहती है कि चमक चमक कर बिजली मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न करती है और बादलों से झरने वाली जल की बूंदें बहुत अच्छी लगती हैं पर नाले भर चुके हैं तथा जल कगारों को स्पर्श कर रहा है।

टिप्पणी—वस्तुतः 'राग विराग' में संकलित निराला की कविताओं में यह कविता आकार में सर्वाधिक छोटी है और इसे अपूर्ण भी कहा जा सकता है पर इन चार पंक्तियों की कविता में वर्षा के बादलों का एक चित्र अवश्य पूर्ण जान पड़ता है।

९९. (आ) समझे मनोहारि वरण जो हो सके (पृ.१६६-१६७)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला की विचारधारा का चित्रण हुआ

शब्दार्थ—वारि=जल। सर=तालाब। सरोरुह=कमल। मेह= बादल। रसना=जबान, जिह्वा। कलुष=पाप, गंदगी। करों=हाथों।

व्याख्या—कवि का कहना है कि सुन्दरता का महत्व तभी है जब उसे स्वीकार किया जाय और यदि जल उत्पन्न नहीं होता है तो धरती पर सूखा पड़ जाता है तथा न तो तालाब में कमल ही खिलते और न शरीर में जीवन ही रह पाता। इतना ही नहीं बादलों में जल नहीं होने से घर में दूध-दही भी नहीं रहता और जिह्वा नीरस ही रहती है तथा मृत्यु का ही स्पर्श करना पड़ता है और स्नेह से हँस कर ही तुम सरसता पूर्वक हरि के हुए हो।

कवि कह रहा है कि विश्व की सार्थकता उसके गतिशील होने में ही है अन्यथा उसका नाश ही होता है या उसे व्यथा ही सहनी पड़ती है अथवा जन्म-मरण के बंधनों में बँधकर रह जाना पड़ता है। साथ ही उसके बार बार पापमय होने से वह काल कवलित भी हो जाता है। कवि का कहना है कि धरती की कुछ ऐसी विपरीत गति है कि वह हरि के हाथों में सधी हुई है।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी ने एक ओर तो जीवन में स्नेह की सरसता आवश्यक मानी है और दूसरी ओर विश्व में गतिशीलता न रहने पर उसका विनाश होना अनिवार्य बतलाया है।

१००—ताक कमसिन वारि (पृष्ठ १६७)

संदर्भ—महाकवि निराला की यह कविता 'क्लासिकी' संगीत रचना है और इसमें कमसिन शब्द पर ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है।

शब्दार्थ—कमसिन=कम उम्र की, कम वस्त्र की।

व्याख्या—कवि कहता है कि कमसिन वारि पर दृष्टि डाली जाय। जिस प्रकार उस युवती की उम्र कम है उसी प्रकार वह कम वस्त्र भी धारण किए हुए है और उसे देखकर यही कहने का मन होता है कि हे कम उम्र की युवती तुम बहुत सुन्दर हो। कवि संगीत की स्वरलय का उल्लेख करते हुए कह रहा है कि इरावनि समक कात् एवं इरावनि सम वकात मौर इराव निसम ककात् तथा सम ककात् सिनवारि की ध्वनि सुनाई देती है।

टिप्पणी—कुछ विचारक इसे हिन्दी में प्रचलित 'ऐन्सर्डिटी' नामक नवीन विधा की कोटि की कविता मानने के बाद संकलित 'ताक कमसिन वारि' जैसी रचनाएं कवि निराला के विकृत मस्तिष्क की उपज हैं पर डॉ० रामबिलास शर्मा इसे क्लासिकी संगीत रचना मानते हुए कहते हैं कि 'डागर बंधुओं को ध्रुपद गाते सुना है न आपने ? पंक्ति एक, शब्दों को उलट पलट कर कहने की दस तरकीबें··· ।'

१०१—शरत् की शुभ्र गंध फैली (पृष्ठ १६८)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में निराला जी ने शरद ऋतु की प्रकृति सुषमा का मनोरम चित्रण किया है।

शब्दार्थ—शुभ्र=श्वेत, सफेद। ज्योत्स्ना=पूर्णिमा की चाँदनी। सीत= =श्वेत, सफेद। द्युति=चमक, कांति, आभा। खगों=पक्षियों। चह चह= पक्षियों की ध्वनि।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि शरद्ऋतु की शुभ्र गंध चारों ओर फैल गयी और पूर्णिमा की चाँदनी का प्रसार हुआ तथा आकाश मंडल को चीर चीर कर काले बादल धीरे धीरे मिटने लगे। साथ ही हृदय की पीड़ा धीरे

धीरे मिटने लगी और मैली कांति मिटकर चारों ओर शुभ्रता का प्रसार हुआ।

कवि का कहना है कि शरद्ऋतु के साथ साथ थोड़ी थोड़ी ठंड पड़ने लगती है अतः पक्षियों ने शीतावास की शरण ली और पेड़ों से पक्षियों के समूह की 'चह चह' करने की आवाज़ सुनाई देने लगी तथा वन-उपवन भी यौवन से अकड़ गये और ज्वारों की थैली लटकी हुई जान पड़ती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वन उपवन में वृक्षों का समूह एकत्र हो गया और खेतों में ज्वार की अच्छी फसल भी हुई।

टिप्पणी—इस कविता में प्रकृति सौन्दर्य का आकर्षक एवं स्वाभाविक वर्णन हुआ हैं।

१०२–आँख लगाई (पृष्ठ १६८)

संदर्भ—महाकवि निराला ने प्रस्तुत कविता में प्रेम भावनाओं का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—आँख लगाई=प्रेम किया। सम्बल=सहारा। निष्फल=व्यर्थ, बेकार। पंथ=रास्ता, मार्ग। बूझा=समझ में नहीं आया।

व्याख्या—कवि का कहना है कि एक प्रेमिका अपने प्रेमी को सम्बोधित कर कह रही है कि जब से मैंने तुम से आँख लगाई अर्थात् प्रेम किया तब से मुझे चैन नहीं मिला और अब छल ही प्राणों का सहारा हुआ तथा प्राणों का सहारा भी बेकार हो गया। इसका अर्थ यह है कि अब प्रेमिका को भुलावे में रहकर ही जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है और उसे अब अपना जीवन भी व्यर्थ जान पड़ता है क्योंकि प्रिय ने उसे विरह में तड़पता छोड़ दिया है। वह प्रेमिका पुनः कहती है कि अब तो जंगल में रमना ही मंगलदायक जान पड़ता है और जहाँ पहले ज्योति थी वहाँ अंधेरा घिर आया अर्थात् उसे—प्रेमिका को—प्रिय के वियोग में घर अच्छा नहीं लगता और उसके जीवन में आशा रूपी उजाला भी अब नहीं रहा। उस प्रेमिका का कहना है कि जहाँ राह रही, वहाँ मार्ग भी नहीं सूझा और जहाँ चाह रही वहाँ कोई भी परिणाम समझ में नहीं आया तथा सम्पूर्ण कुनबे में मेरे इस आचरण के कारण झगड़ा हो गया तथा सगाई की बात भी दूर हो गई।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में विरह भावनाओं का सफल अंकन हुआ है।

१०३–आँख बचाते हो......(पृष्ठ १६९)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने भक्त के हृदय की भावनाओं का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—लीक=परम्परा, रूढ़ि। हाथ बटाना=सहयोग देना।

व्याख्या—एक भक्त अपने आराध्य को सम्बोधित कर कह रहा है कि यदि तुम मुझ से आँख बचाना चाहते हो तो फिर बार बार हमें दर्शन क्यों देते हो? उस भक्त का कहना है कि हमें जब कभी नवीन रूप दिखाई दिया तब हमारा काम बिगड़ गया और क्या तुम्हारी यही महा दया है तथा तुम हमें भुलावे में डालने के लिए न जाने क्या समझाते हो पर दर्शन न देकर हम से आँख बचाकर चले जाते हो। भक्त अपने आराध्य से कहता है कि मैं लीक छोड़कर भला कहाँ चलूँ और जब पास में दाने ही न हों तब मैं क्या तलूँ तथा जब फूल ही नहीं होगे तब फल कहाँ से होंगे? भक्त अपने आराध्य से कह रहा है कि तुम मुझे दर्शन न देकर आँख बचाते हो और मेरा तो तुम से यही कहना है कि क्या तुम मुझे सहयोग प्रदान करते हो।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सर्वत्र सरलता के ही दर्शन होते हैं और भक्त-हृदय की शुभ्र भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं।

१०४–कौन गुमान करो जिन्दगी का (पृ० १६९-१७०)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला का जीवन दर्शन ही अभिव्यक्त हुआ है।

शब्दार्थ—गुमान=घमंड, गर्व। स्याह=काला।

व्याख्या—कवि का कहना है कि कभी भी जिन्दगी का घमंड करना उचित नहीं है और जो कुछ है वह कुल मान उन्हीं का है तथा यह घर-बार तुम्हारे ही बाँधे हुए हैं तथा हमारे माथे तो बस नील का टीका ही लगा है। कवि कह रहा है कि सम्पूर्ण शरीर में दाग लग गया है और पूरा शरीर काला पड़ गया है तथा रंग फीका पड़ता जा रहा है पर तुम्हारा कोई भी जी का नहीं रहा। कवि कहता है कि अब एक ही भरोसा और एक ही सहारा रह गया है तथा बन्दगी का वारा-न्यारा भी हो गया। कवि का कहना है कि कब

ज्ञान गढ़ पाया और कब मान हुआ तथा जब पी का ध्यान गया तब किसी की आन कब बन सकी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि की नैराश्य भावनाओं का प्रबल रूप ही दीख पड़ता है।

१०५—कठिन यह संसार······(पृष्ठ १७०)

संदर्भ—महाकवि निराला ने इस कविता में नीति परक भावनाओं की योजना की है।

शब्दार्थ—विनिस्तार=छुटकारा मिलना। ऊर्मि=लहरें। पाथार=जल समूह। अयुत=दस हजार की संख्या। भंगुर=टूटनेवाला। तरंगों=लहरों। सिंधु=सागर। तुमुल=शोर गुल। तट विटप=किनारे के वृक्ष। शय=साँप। सम्भार=इकट्ठा करना, समूह।

व्याख्या—कवि का कहना है कि यह संसार बहुत ही अधिक कठिन है और इसमें आपदाओं की जो अधिकता है उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय उन्हें कैसे पार किया जा सकता है। कवि कह रहा है कि इस संसार रूपी सागर में दुःख रूपी लहरों का अपार जल उमड़ रहा है अतः उसे पार कर पाना सम्भव नहीं है।

कवि इस संसार की उपमा सागर से देते कहता है कि इस संसार रूपी सागर के तट से हजारों लहरें टकरा रही हैं और इस में अपार जल राशि का शोरगुल हो रहा है तथा दूर तक इस सागर का जल दिखाई देता है। साथ ही किनारे के वृक्षा भी जलराशि में लुप्त हो रहे हैं और दूर तक केवल जल ही जल दीख पड़ता है।

कवि कह रहा है कि इस गजत में सभी ऋतुएँ क्रमानुसार आती जाती हैं और सर्प के समान दुष्ट पुरुष अपना नृत्य भी दिखाते हैं अर्थात् लोगों को धोखा देने में पीछे नहीं रहते पर जब उनकी परख का अवसर आता है तब वे मुँह चुरा लेते हैं और यहाँ सच में भी झुठ के दर्शन होते हैं तथा कोहरे का समूह ही दृष्टिगोचर होता है।

टिप्पणी—इस कविता में अनुप्रास एवं रूपक अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है और उत्तम कविता में बहुधा अलंकारों का सफल प्रयोग दीख

पड़ता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में 'शब्दार्थ का गुण तथा अलंकार से सम्पन्न होना नितान्त आवश्यक होता है। काव्य के उदय के साथ ही साथ यह विशिष्टता भी उसके साथ सर्वथा सम्बद्ध दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि आलोचना जगत में वामन ही प्रथम आलंकारिक हैं जिन्होंने गुणालंकृतयोः शब्दार्थयोः काव्य शब्दो विघते लिखकर गुणालंकार की सम्पत्ति को काव्य के लिए आवश्यक माना है, परन्तु काव्य जगत में यह उनमें बहुत ही प्राचीन है। हमारे आदि कवि वाल्मीकि और भरतकार व्यास के काव्यों में गुण तथा अलंकार की सम्पत्ति, स्वरूप तथा वैशिष्टच पर आग्रह हम भली भाँति पाते हैं।'

१०६—कैसे हुई हार तेरी निराकार (पृ० १७१)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला की विचारधारा अभिव्यक्त हुई है।

शब्दार्थ—निराकार = आकार रहित। दुर्धर्ष = कठोर, भयंकर। दुर्ग = किला। इंगित = इशारा, संकेत। सरिता = नदी। कारगर = असर करनेवाला। बिपत = आपत्ति, कठिनाई। क्षिति = पृथ्वी, धरती। विपन्नाव = दुःखी, विपत्ति में फँसा हुआ।

व्याख्या—कवि कहता है कि हे निराकार, तेरी पराज्य कैसे हुई और हे आकाश के तारकों सभी द्वार बंद क्यों है तथा इस भयंकर किले को यह कौन तोड़ रहा है? कवि का कहना है कि चाहे कितने ही प्रश्न क्यों न किये जायँ पर प्रकृति मौन ही रहती है और कौन उत्तर नहीं देता पर यह पवन पार निकलने का संकेत अवश्य कर रहा है। कवि कहता है कि नदी के जल की लहरें हथेली मारकर तुझ से यह कहती हैं कि तुझ पर यह असर पड़ना चाहिए कि विपत्ति के समय पतवार का सहारा ले लेना ही उचित है। कवि कह रहा है कि धरती के तले सीत विनत भाव से कहते हैं कि मानव का जीवन बिना अन्न के दुःखी रहता है और आपत्तियों में फँसा हुआ मनुष्य दुःख से न जाने किस प्रकार मुक्ति पा सकेगा?

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की शब्द योजना दर्शनीय है और जीवन का गहन चिंतन भी उल्लेखनीय है।

१०७—गीत गाने दो मुझे तो (पृष्ठ १७१-१७२)

संदर्भ—महाकवि निराला ने इस कविता में नैराश्य भावनाओं का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि का कहना है कि अपनी वेदना को रोकने के लिए मुझे गीत गाने दो। कवि कह रहा है कि जीवन पथ पर चलते समय आघात पर आघात खाकर मेरे होश छूट गये और मेरे पास मार्ग व्यय के लिए जो भी कुछ था वह सब रात के समय ठग-ठाकुरों ने लूट लिया। कवि कहता है कि देखो अब मृत्यु का समय नजदीक आ रहा है और मेरा कंठ रुकता जा रहा है तथा यह संसार हार खाकर जहर से भर गया है। कवि का कहना है कि लोग सही परिचय न पाकर लोगों को आश्चर्य-पूर्वक देखते हैं और पृथा की जो लौ बुझ गयी है वह करुणा से सींचने के लिए पुनः जल उठी।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में सरल शब्दावली में ही जीवन के मार्मिक तथ्यों का भावग्राही चित्रण हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि—महाप्राण निराला के सदृश्य पाश्चात्य कवि शैली (Shelley) को भी अपनी आत्मा वेदना से छटपटाती जान पड़ती है तथा उसने Stanzas written in Dejection में कहा भी है—

Smiling they live and can life Pleasure
To me this cup has been dealt with another measure.

१०८—ये दुख के दिन (पृ० १७२)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में निरालाजी ने मनोव्वथा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

शब्दार्थ—शशिमुख=चन्द्रमा के सदृश्य सुन्दर मुख। अमलिन=जो गंदा न हो।

व्याख्या—कवि का कहना है कि ये दुःख के दिन, जिस व्यक्ति ने प्रत्येक पल-क्षण में गिन-गिन कर काटे हैं उसके हृदय की मनोभावनाओं का चित्रण कहाँ तक किया जाय। कवि कहता है कि इस विरही ने आँसूरूपी मोती की लड़ के हार पिरोये और उज्जवल एवं अमलिन दुःखरूपी रात्रि में वह उक्त हार अपने प्रिय के गले में पहना कर उसका चन्द्रमुख देखने लगा।

टिप्पणी—मुक्तछंद में लिखित इस कविता में विरह भावना का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि—करुणा की कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी एक स्थल पर करुणापूर्ण दशा का वर्णन करते हुए कहा है—

प्रिय इन नयनो का अश्रु नीर !
दुःख से आविल सुख से पंकिल,
बुद् बुद् से स्वप्नों से फेनिल ;
कहता है युग युग से अधीर !

१०६–दुःखता रहता है अब जीवन (पृ० १७३)

संदर्भ—महाकवि निराला ने इस कविता में प्राकृतिक पीठिका में मानवीय काला मनोभानाओं का वर्णन किया है।

शब्दार्थ—नवल=नवीन। रिक्त=खाली। कानन=जंगल। विटप=वृक्ष। उन्मन=उदास।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि अब जीवन दुःखी ही रहता है और जो दशा वन-उपवन की पतझड़ के आने से होती है वही दशा अब मेरी हो गयी है। कवि का कहना है कि पतझड़ के आते ही वृक्षों के पत्ते झरने लग जाते हैं और केवल चिह्न मात्र ही सहारे के रूप में बच रहता है तथा उन्हीं से वह कानन लहराता है। साथ ही वृक्षों की बहुत सी डालियाँ भी सूख जाती हैं और उनमें कुछ दिनों तक नये पत्र भी नहीं आते तथा वृक्ष आधे से अधिक घट जाता है। कवि कहता है कि यह वसंती वायु आई है और कोयल की कुछ क्षणों तक कुछ गाती रही पर उसके स्वर में न जाने क्यों बुढ़ापे का आभास होता है तथा दोनों ही उदास से हो ढलते जाते हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में निरालाजी ने अपने जीवन की पतझड़ से तुबना कर यह स्पष्ट करना चाहा है कि उनका जीवन अब दिन प्रतिदिन ढलता जा रहा है और बुढाप उनके जीवन में प्रभावशील होता जा रहा है। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वसन्त समीर के सदृश्य उनके जीवन में सुख की हल्की सी आशा का भले ही आभास होता हो परन्तु उन्हें

यह विश्वास हो गया है कि उनके जीवन में अब अधिकांशतः उदासी और दुःख का ही साम्राज्य विद्यमान है।

११०–धीरे धीरे हँसकर आई (पृ० १७३-१७४)

सन्दर्भ—महाकवि निराला की यह कविता आत्मपरक ही है और इसमें उन्होंने अपनी निजी भावनाओं का उल्लेख किया है।

शब्दार्थ—जर्जर = पुराना, बुड्ढा। छायापथ = आकाश। पंक कर्दम = कीचड़। सत्तम = सबसे श्रेष्ठ, परम पूज्य। अलख = अगोचर, अनोखा, ब्रह्म।

व्याख्या—कवि का कहना है कि मेरे समक्ष धीरे-धीरे हँसकर प्राणों की बूढ़ी परछाईं आ गयी और मैंने अनुभव किया कि मेरा जीवन धीरे-धीरे ढलता जा रहा है तथा बुढ़ापा मुझ पर अपना प्रभाव डाल रहा है। कवि कहता है कि मेरा जीवनरूपी आकाश धीरे-धीरे सघन होता जा रहा है और उसमें कीचड़ के समान कालिमा फैलती जा रही है तथा सर्वश्रेष्ठ सूर्य जिस प्रकार आकाश में ढक जाता है उसी प्रकार मेरे नेत्र भी अब मुँदने ही वाले हैं और मुझे मृत्यु की पहली झलक दिखाई दे रही है।

कवि कह रहा है कि क्या हम आगे बढ़कर मृत्यु को गले से लगाने के लिए तैयार हैं और क्या अब अड़ अड़कर हमें अलख जगाना होगा तथा क्या हम यह भूल जाते हैं कि जिस प्रकार पतझड़ आने पर वृक्ष के पत्ते झड़ जाते हैं और पुनः नवीन पत्ते आते हैं उसी प्रकार सृष्टि में भी विनाश और निर्माण का क्रम चलता रहता है। कवि का कहना है कि पिछले कुल खेल समाप्त हो गए और जो नहीं मिले वे वर प्राप्त हुए तथा तन में बीसों विष व्याप्त हो गए परन्तु जीवन में तनिक भी घबराहट नहीं आई।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में निराला जी का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है और हम देखते हैं कि उन्हें मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है तथा मृत्यु को उन्होंने जीवन का अनिवार्य सत्य माना है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि सरल शब्दावली में ही इस कविता में अनूठी भावाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं और कवि ने पतझड़ की जीवन से समकक्षता भी अंकित की है।

१११—निबिड़ बिपिन, पथ अराल (पृ० १७४-१७५)

सन्दर्भ—प्रस्तुत कविता आत्मपरक है और इसमें कवि निराला ने अपनी निजी मनोभावनाओं का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—निविड़ = घना, गहरा। विपिन = जंगल। पथ = मार्ग, रास्ता। अराल = टेढ़ा, तिरछा। हिंस्र = हिंसक। जन्तु = जानवर। व्याल = शेर।

व्याख्या—कवि का कहना है कि सामने घना जंगल है और मार्ग भी सुगम न होकर टेढ़ा या तिरछा है तथा जंगल में शेर आदि हिंसक जानवरों की अधिकता है। साथ ही अन्धकार बढ़ता जा रहा है और वृक्षों की छाया भी सघन हो जाने के कारण जंगल पार कर आगे बढ़ना भी सम्भव नहीं प्रतीत होता तथा वृक्षों की छाया का जाल जटिल हो गया है। इसी प्रकार कहीं भी सुजलाशय, सुस्थल, गृह एवं देवालय नहीं है और केवल विशाल छाया का भ्रम ही जाग्रत होता है तथा अन्धकार के मजबूत हाथों में यह बूढ़ा शरीर बंधा जा रहा है और तन उदास एवं शरीर रहित होकर मरण ताल को सुन रहा है।

टिप्पणी—यह कविता महाप्राण निराला की वृद्धावस्था के संकटपूर्ण जीवन का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत करती है और हम देखते हैं कि कवि अब जीवन में सुख के स्थान पर व्यथारूपी अन्धकार की प्रधानता ही देखता है। साथ ही इस कविता में अनुप्रास अलंकार की भी स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है।

११२—शिशिर की शर्वरी (पृ० १७५)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में निरालाजी ने शिशिर ऋतु की प्राकृतिक पीठिका में मानवीय भावनाओं का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—शिशिर = ठंड की एक ऋतु। शर्वरी = शाम, रात। विमल = स्वच्छ। त्रास = कष्ट, आपदा। दिगम्बरी = श्री दुर्गा, अँधियारी। तरी = नौका, नाव।

व्याख्या—कवि का कहना है कि यह शिशिर की रात हिंसक पशुओं से पूर्ण है और यही दशा मैंने आज संसार के स्वच्छ नेत्रों की भी देखी है तथा प्राय: सभी सांसारिक प्राणियों को कष्ट का सामना करना पड़ रहा है। कवि कहता है कि हृदय संकोच से काँप उठा है और निराशारूपी अंधियारी श्री

दुर्गा के संहारकारी नृत्य के सदृश नाच उठी । कवि कह रहा है कि हे माता, प्रभात के समय किरणों ने सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाया और भय के हृदय से पकड़ कर मुक्ति भी दिखाई दी तथा चपलता पर मुझे अपल थल की नौका प्राप्त हो गयी । कहने का अभिप्राय यह है कि रात्रि के बाद जिस प्रकार सुखद सबेरा मन में आशा का संचार करता है उसी प्रकार कवि के निराश हृदय में अब आशा का उन्मेष हुआ ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक उपकरणों को मानवीय मनोभावनाओं के अंकन में सहायक माना गया है और विचारक यही कहते हैं कि 'प्रकृति के पदार्थ अनेक रसों के उद्गम के कारण बनते हैं । प्राणियों की वृत्ति विशेष के अनुसार ही प्रकृति अपनी लीला दिखाकर नाना रसों अथवा भावों का विलास प्रकट करती है । सांध्य समीरण के झोंके से झुकी हुई, रंगीन पुष्पों के भार से लदी हुई लतायें कामुकों के हृदय में शृंगार रस उत्पन्न करती हैं और प्रपंच से परांगमुख, विषयासक्ति से विहीन मानव के चित्त में वैराग्य उत्पन्न करने में सहायक बन शांत रस का आविर्भाव करती है । अतः सबसे अधिक विचारणीय वस्तु जो प्राकृत दृश्यों के ऊपर अपनी भावना का आरोप किया करती है, मानव चित्त ही है ।'

११३—घन तम से आवृत धरणी है (पृष्ठ १७५-१७६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला का व्यापक दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है ।

शब्दार्थ—आवृत्त = घिरा हुआ या घिरी हुई । धरणी = धरती, पृथ्वी । तरणी = नौका । वारण = हाथी । निष्कारण = बिना किसी कारण के । भरणी = पृथ्वी । संहत = जुड़ा या मिला हुआ, सहित । गर्तों = गड्ढों । पावनता = पवित्रता । सरणी = मार्ग, ढंग, लकीर ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि धरती सघन अंधकार से घिरी हुई है और नौका लहरों रूपी शोरगुल से हिलडुल रही है तथा चारण मंदिर में बन्द हैं और जंगल में हाथी चिंघाड़ रहे हैं । साथ ही बालक बिना किसी कारण के रो रहा है और पृथ्वी अब बिना किसी सहारे के है तथा सैकड़ों चक्रों से युक्त होकर जल पछाड़ खा रहा है अर्थात् जल लहरा रहा है । कवि का कहना है

कि जो पहाड़ ऊपर की ओर उठे हुए जान पड़ते हैं वे धँस कर गड्ढों में समा गये और यह मारण रजनी अर्थात् मृत्यु दायक रात्रि आ गयी। कवि कहता है कि यह अकाम लकीर जीर्ण शीर्ण होकर भी जीवित है और वह जीवन में रहकर भी खाली है तथा मन की पवित्रता का पान कर रही है।

टिप्पणी—यह कविता प्रेरणादायक है और इसमें मानवीय मनोभावनाओं का भी स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

११४—नील जलधि जल (पृष्ठ १७६-१७७)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में कवि निराला ने शाब्दिक चमत्कार की योजना की है।

शब्दार्थ—नयन द्वय = दो नेत्र। मृत्ति = मिट्टी। मृत्युशर = मृत्यु वाण। अनिल आग, सूर्य। निलय = घर, मकान, स्थान। कृत्य = काम, कार्य। कुसुम मग = फूलों का मार्ग, वह रास्ता जिस पर फूल बिखरे हुए हैं।

व्याख्या—कवि का कहना है कि समुद्र का जल नीला है और आकाश का तल भी नीला है तथा कमल दल भी नीला है और दोनों नेत्र भी नीले हैं। साथ ही नीली मिट्टी पर नीले मृत्यु-वाण का प्रहार होता है तथा सूर्य की किरणें भी नीली हैं और नीला ही निवास स्थान भी है। कवि कह रहा है कि नीले मोर का नीला नाच है और नीले काम से नीला शवाशय हो गया है तथा मार्ग पर नीले फूल बिछे हुए हैं। साथ ही नग्न नग भी नीला है और शील जग भी नीला है तथा कराभय भी नीला है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में कवि ने नीले रंग की व्यापकता का उल्लेख किया है और इस कविता में शाब्दिक चमत्कार ही दृष्टिगोचर होता है।

११५—नील नयन, नील पलक (पृष्ठ १७७)

संदर्भ—महाप्राण निराला ने इस कविता में नीलिमा का सर्वत्र ही प्रसार माना है।

शब्दार्थ—वदन = मुख। अमल = स्वच्छ। हास = खिला हुआ। वारिद = मेघ, बादल। जगती = धरती।

व्याख्या—कवि का कहना है कि नेत्र नीले हैं और पलकें भी नीली हैं तथा नीले मुख पर नीली झलक दीख पड़ती है। कवि कह रहा है कि स्वच्छ

नील कमल खिल रहे हैं और केवल सूर्य ही श्वेत किरणों का आभास देता है तथा नीले आसमान पर नये नये नीले नवीन मेघ छा गये। कवि कहता है कि नीला जल दिखाई देता है और इस धरती के जन कार्यशील हैं तथा नीले नाल से झुका हुआ नील कमल भी नीली-घुंघराली अलकों के सदृश्य जान पड़ता है।

टिप्पणी—इस कविता में कवि निराला ने नीलिमा का प्रसार अंकित करते समय प्रकृति की मधुर झाँकी भी प्रस्तुत की है और अनुप्रास अलंकार की योजना भी दर्शनीय है।

११६—हारता है मेरा मन······(पृष्ठ १७८)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने मानसिक मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण किया है।

शब्दार्थ—समर=युद्ध। विभूति=ऐश्वर्य। तृप्ति=संतोष। शोभन=शोभायुक्त, सुहावना, उचित।

व्याख्या—कवि किसी प्रणयिनी की मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कह रहा है कि मेरा मन जब विश्व के इस युद्ध में अर्थात् जीवन के उत्थान-पतन में पराजित होने लगता है और कलरव से मौन होकर शांति के लिए इच्छुक होता है तब मुझे यह आभास होता है कि हे प्रिय, मैं तुम्हारे गले की हार बन रही हूँ और विभूतिं, गंध, संतोष एवं निशा की कुछ न कुछ झलक अवश्य बच रही है। इसका अभिप्राय यह है कि उस प्रणयिनी को पराजय में भी एक प्रकार की तृप्ति का ही अनुभव होता है।

वह प्रणयिनी अपने प्रिय से कहती है कि मैं यह जानती हूँ कि तुममें ही मेरा शेष दान है और मेरा अस्तित्व भी पूर्णतया तुममें ही समाया हुआ है। वह प्रणयिनी कह रही है, कि इस संसार में जब दूसरे प्रभात का प्रसार होगा तब मुझ में कुछ भी देने के लिए नहीं रह जायगा क्योंकि अपना सर्वस्व तो मैं पहले ही अर्पित कर चुकी हूँ।

एक प्रणयिनी का अपने प्रिय से कहना है कि तुम आजीवन एक तत्व यह अवश्य समझोगे कि इस संसार में और क्या अधिकतर सुहावना प्रतीत होता है तथा और क्या जीवन में उचित हो सकता है। वह प्रणयिनी प्रिया से कह

रही है कि प्राणों के पास अब अधिक क्या बचा है और तुम्हें यह भी अनुभव होगा कि जीवन में अधिक आनन्दमय क्या है तथा अधिक कहने के लिए प्रगति की सार्थकता भी किस रूप में है !

टिप्पणी—वस्तुतः सौन्दर्य एवं प्रेम के कुशल गायक महाप्राण निराला की कविताओं में जीवन के अमूल्य तथ्यों की भी अभिव्यक्यि हुई है और यही कारण है कि विचारक निराला से सार्वभौम प्रतिभा का शुभ्ररूप मानते हुए यह मत प्रकट करते हैं 'महाकवि निराला से हिन्दी काव्य साहित्य को एक नया रूप मिला है, भावों की गति को दिशा मिली है, जीवन को एक विन्यास मिला है। निराला का काव्य एक निर्जीव संकेत मात्र नहीं है, वह दर्शन की दृष्टि से जीवन के विन्यास का बिन्दु है, रंग और आकार का केन्द्र है, शिल्प की दृष्टि से महान स्थापत्य का शिखर है, चित्र की दृष्टि से अर्थगर्भित सजीव भित्ति मुर्त्तिमाला का नेत्रांजन हैं, संगीत की दृष्टि से महाकाल का सम विषम है, सर्ग और प्रलय है, जिसके संदर्भ में नासदीय और अज्ञान सूक्त की क्रान्त-दर्शी ऋचाएँ औपनिषद तत्त्व का गम्भीर घोल तथा षड्दर्शनों की हिरण्य गर्भा ज्ञान राशि का अजरामर विभूति योग सुरक्षित है। शंकर और रामानुज का तत्त्व दर्शन, कबीर, और तुलसी का लोक संरक्षण, विवेकानन्द का अंतर-राष्ट्रीय वेदान्त, अरविन्द और रवीन्द्र की सौन्दर्यानुभूति निराला के काव्याम्बुधि में एक साथ समा गई है।

११७—भग्न तन, रुग्ण मन (पृष्ठ १७८-१७९)

संदर्भ—महाकवि निराला की प्रस्तुत कविता में नैराश्य भावनाओं का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ—रुग्ण=बीमार, उदास। विषण्ण=विषादयुक्त, दुखी चित्तवाला। क्षीण=कमजोर। देह=शरीर। मेह=बादल। प्रवर्षण=वर्षा करने वाले। उन्नत=ऊँचा उठा। विनत=नम्र, झुका हुआ। माथ=मस्तक, सिर। दोषरण=दोष या गलतियाँ दूर करने वाले।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मेरा शरीर भग्न है अर्थात् वृद्धावस्था के कारण शरीर टूटता सा जा रहा है और मन बहुत उदास है तथा शरीर क्षण प्रतिक्षण कमजोर होता जा रहा है। कवि का कहना है कि जो घर

पहले सुसज्जित था वह अब जीर्ण अर्थात् कमजोर हो गया और बादल घिर आये हैं तथा वे प्रलय के समान वर्षा करने वाले हैं। कवि कहता है कि अब मेरा हाथ नहीं चलता और कोई भी सहयोग देने वाला नहीं है तथा जो मस्तक हमेशा उठा रहता था अब नीचे झुक गया है। कवि भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे गलतियों को दूर करने वाले प्रभु, अब तुम्हीं मुझे सहारा प्रदान करो।

टिप्पणी—प्रस्तुत कविता में कवि निराला ने अपनी मनोव्यथा का मर्म-स्पर्शी वर्णन किया है और अंतिम पंक्ति में यमक अलंकार की योजना भी दर्शनीय है।

११८—मरा हूँ हजार मरण (पृष्ठ १७६)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता आत्मपरक है और इसमें महाप्राण निराला की व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

शब्दार्थ—तिमिरजाल = अधंकार का समूह, दुखों की अधिकता। अमित = बहुत, अधिक। सिताभरण = श्वेत आभूषण।

व्याख्या—कवि का कहना है कि जब मैंने हजार बार मृत्यु स्वीकार की तब मुझे भगवान के चरणों में शरण प्राप्त हुई। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि यह जीवन और मृत्यु का चक्कर तो चलता ही रहता है तथा भगवान की कृपा सरलता से प्राप्त नहीं हो पाती। कवि कह रहा है कि अंधकार का समूह अर्थात् दुःखों का जाल फैलता जा रहा है और मैंने आँसुओं की जो तेजयुक्त माला तैयार की है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि मानो बहुत अधिक श्वेत आभूषण एकत्र हो गये हों। कवि कहता है कि जल का कलकल नाद बढ़ रहा है और हृदय में विद्यमान हर्ष भी बाहर निकलने को आतुर है तथा जिसने भगवान के सुन्दर चरणों का आश्रय लिया है, उसी के स्वागत के लिये यह विश्व भी उमड़ उठा है।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी की भक्ति भावना के दर्शन होते हैं और सरल एवं सुबोध शब्दावली में अनूठी भाव व्यंजना भी दर्शनीय है।

११९—मधुर स्वर तुमने बुलाया (पृष्ठ १८०)

संदर्भ—महाकवि निराला की प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक पृष्ठभूमि में मानवी मनोभावनाओं का चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ—छद्म = नकली वेश । अवसान = समाप्ति, अंतिम समय । विरत = संलग्न, लगी हुई । सुषमता = सौंदर्य ।

व्याख्या—कवि अज्ञात शक्ति को सम्बोधित कर कह रहा है कि जब तुमने मधुर स्वर से मुझे बुलाया तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो नकली वेश धारण कर मृत्यु ने ही आगमन किया हो। कवि का कहना है कि पश्चिमी पवन ने वातावरण में विष बो दिया और बादल रिमझिम वर्षा करने लगे पर मुझे तो रागिनी में मृत्यु के स्वरों का ही आभास होता है तथा तान में भी अंतिम समय का क्षण आ गया। कवि कहता है कि चरणों की गति में लय संलग्न है और साँस में अवकाश का क्षय विद्यमान है तथा सौन्दर्य में असम संचित है पर मैं तो भगवान के शरण में जाने का अनुरोध गीत गा रहा हूँ।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी मृत्यु का स्वागत करने को उत्सुक हैं और उन्होंने अपनी हार्दिक भक्ति भावना का भी चित्रण किया है।

१२०—हे जननि, तुम तपश्चरिता (पृ० १८०-१८१)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला माँ पार्वती की बंदना कर रहे हैं।

शब्दार्थ—तपश्चरिता = तपस्या में लगी हुई, तप की प्रतिमूर्ति । सुमति = अच्छी बुद्धि, सुबुद्धि । निःस्व = धनहीन, जिसका निजी कुछ न हो । तमस्तरिता = अंधकार को दूर करने वाली ।

व्याख्या—कवि माता पार्वती की प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे माँ; तुम तपसाधना की साकार प्रतिभा हो और तुम इस जगत को गतिशील करने वाली हो तथा सुबुद्धि प्रदान करती हो। कवि का कहना है कि बहुत से सांसारिक प्राणी इच्छाओं के गुलाम रहते हैं और उनका मुख अनेक प्रकार की इच्छाएं प्रकट करते करते थक जाता है तथा उस समय इस सृष्टि में जो वास्तव में धनहीन अर्थात् अभावग्रस्त रहते हैं उनका दुःखरूपी अंधकार तुम्हीं (माता पार्वती) दूर करती हो। कवि माता पार्वती की बंदना करते हुए कह रहा है कि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर शंकर को अपना व्रत विवशता के साथ छोड़ना पड़ा और उन्होंने तुम्हें पत्नी-रूप में स्वीकार किया तथा

तुम्हें विजयरूपी वर प्राप्त हुआ। कवि माँ पार्वती के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए कहता है कि मैं तुम्हारे चरणों पर मस्तक झुकाकर तुम्हारी शरण आया हूँ और तुम मुझे अपनी शरण ले लो।

टिप्पणी—इस कविता में महाकवि निराला की अदम्य भक्ति भावना के दर्शन होते हैं और यहाँ सुललित शब्दयोजना भी प्रशंसनीय है।

१२१–माँ अपने आलोक निखाँरो (पृष्ठ १८१)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने माँ शक्ति अर्थात् देवी की प्रार्थना की है।

शब्दार्थ—नरकत्रास = नरक तुल्य कष्ट। व्याधि शयन = आपदाओं में सोया हुआ। सुरभि = सुगंधि। सुमन = फूल।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे माँ; तुम अपनी कृपा का प्रकाश सम्पूर्ण सृष्टि में फैलाओ और जो अनेक प्राणी नरक के समान कष्ट सहन कर रहे हैं उन्हें मुक्ति प्रदान करो। कवि देवी की प्रार्थना करते हुए कहता है कि हमारा मानव समाज अब अनेक वर्गों में विभाजित हो गया है और उसे बहुत ही अधिक समय से दुःख झेलना पड़ रहा है तथा अब मानव मन विभिन्न आपदाओं को सहते-सहते जर्जर हो गया है और उसका जीवन ज्ञान रूपी आकाश से शून्य ज़ान पड़ता है अतः तुम अब उस पर करुणा कर उसका उद्धार करो। कवि देवी की बंदना कर उससे यही इच्छा प्रकट करता है कि यह धरती ही स्वर्ग बन जाय और कवि का विचार है कि प्रत्येक पल्लव में रस हो तथा फूलों में सुगंधि हो और फलों में दल हों तथा उपवन में पक्षियों का कलरव भी होता रहे परन्तु यह सब माँ शक्ति की करुण सृष्टि होने पर ही संभव है।

टिप्पणी—इस कविता में महाप्राण निराला ने अपना सर्वग्राही दृष्टिकोण प्रकट करने का प्रयत्न किया है और उनका मत है कि यह धरती ही स्वर्ग बन जाय तथा प्रत्येक मानव प्राणी को सुख प्राप्त हो।

१२२–दुरित दूर करो नाथ (पृष्ठ १८१-१८२)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला भगवान से मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना कर रहे हैं।

शब्दार्थ—दुरित = पाप। गहो हाथ—हाथ पकड़ों, चरणों में स्थान प्रदान करो। जीवन रण—जीवन संग्राम। नैश = रात्रि का, रात्रि सम्बन्धी। कंटक पथ = काँटों अर्थात् कष्टों से पूर्ण मार्ग। विगत = जो बीत गया है। पाथ = पथ, रास्ता। व्याल = साँप।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हे नाथ, मैं तुम्हारी शरण में हूँ और तुम मेरे पाप दूर करो तथा मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने चरणों में स्थान प्रदान करो। कवि का कहना है कि मैं जीवन संग्राम में पराजित हो गया और मेरे सभी संगी साथी मुझे छोड़कर चले गये तथा रात्रि के इस अंतिम क्षण में मैं अकेला ही रह गया और मेरे समक्ष आपत्तियों से पूर्ण रास्ता मौजूद है।

कवि भगवान से कहता है कि मुझे प्रभात की सुन्दर किरणों का प्रसार दिखाई दे रहा है और मैंने तुम्हीं को अपना अशरण शरण माना है तथा तुम्हारी कृपा ही मेरे साथ रही है। कवि परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि सैकड़ों मोहरूपी कंठी बंधन मुझे जकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं तथा कई भयंकर सर्प भी मुझे घेरे हुए हैं अतः हे विश्वभाव; तुम इन बंधनों से मुझे मुक्ति प्रदान करो।

टिप्पणी—इस कविता में महाकवि निराला की परमपिता परमात्मा के प्रति अदम्य आस्था का सुन्दर चित्रण हुआ है।

१२३–भजन कर हरि के चरण, मन (पृ. १८२)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने भगवान के चरणों की वंदना की है।

शब्दार्थ—कलुष = पाप। मायावरण = माया मोह का परदा। उपकरण = सामग्री।

व्याख्या—कवि अपने मन को सम्बोधित कर कहता है कि हे मन; तू भगवान के चरणों का भजन कर और माया-मोह के परदे को पार कर भक्ति भावना को ही अपना। कवि का कहना है कि हम सब मानव प्राणी पाप के हाथों से गिरे हैं और भगवद्भक्ति के अभाव में बार बार जन्म-मरण के बंधनों को स्वीकार करने के लिए विवश है अतः हे मन, तू विपथ के रथ से उतरकर भगवान की शरण का उपकरण बन अर्थात् भगवान की शरण में जा। कवि

अपने मन को चेतावनी देते हुए कह रहा है कि यदि तूने परमपिता परमात्मा के चरणों का सहारा नहीं लिया तो मुझे आपत्तियों से पूर्ण जंगल-रूपी कारागार में रहना होगा और कष्टों रूपी प्रबल वर्षा की धारा में पड़कर यह टूटता हुआ शरीर, बिना किसी सहारे के उखड़ जायेगा तथा तेरे लिए तो भगवान की शरण में जाना ही उचित है।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी की भक्ति भावना दर्शनीय है और अनुप्रास एवं रूपक अलंकार की स्वाभाविक योजना भी हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—सुप्रसिद्ध कवयित्री मीरा ने भी इसी प्रकार अपने मन से यही कहा है—कि वह भगवान के चरणों की शरण ले; देखिए—

मन रे परसि हरि के चरन।

सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरना।
जिन चरन ब्रह्मांड भेंटचो, नरव सिखौ श्री भरन॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने, तरी गौतम घरन।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला, करन॥
जिन चरन धारचो गोबर्द्धन, गरब मघवा हरन।
दास मीरा लाल गिरिधर, अगम तारन तरन॥

१२४. अशरण शरण राम (पृ. १८३)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने भगवान राम की प्रार्थना की है।

शब्दार्थ—काम = कामदेव। रवि वंश = सूर्य वंश। अवतंस = अवतार लेनेवाले। निश्शंस = बिना किसी संदेह के, निस्संदेह। मनस्काम = मनोकामना। समुद्यम = आरम्भ, चेष्टा।

व्याख्या—कवि भगवान राम की प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि हे राम; जिन्हें कोई भी शरण नहीं देता; तुम उन्हें शरण प्रदान करते हो और तुम कामदेव से भी अधिक सुन्दर हो कवि भगवान राम का गुणगान करते हुए कहता है कि राम ऋषि-मुनि के मनोहंस हैं और सूर्य वंश में उन्होंने अवतार

धारण किया है तथा जीवन भर के बिना किसी संदेह के कार्यरत रहे अतः अब उन्हीं राम से यह निवेदन है कि वे अपने भक्त की मनोकामना पूर्ण करें। कवि का कहना है कि राम जानकी-मनोरम हैं और सुचारुतम नायक हैं तथा धर्म धारण करनेवाले श्याम भी हैं।

टिप्पणी—इस कविता में महाप्राण निराला ने भगवान राम के गुणों का उल्लेख किया है। और सामासिक शब्द योजना के भी दर्शन होते हैं।

१२५. सुख का दिन सहज डूबे डूब जाय (पृ. १८३-१८४)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला की मनोभावनाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है।

शब्दार्थ—दाल नहीं गलना=काम नहीं होना। उल्टी गति=विपरीत स्थिति।

व्याख्या—कवि परमपिता परमात्मा से कहता है कि भले ही सुख का दिन डूब रहा हो तो डूब जाय परन्तु मैं यही चाहता हूँ कि मेरा यह स्वाभाविक मन कभी भी तुमसे न ऊबे। कवि का कहना है कि मन में जो गाँठ पड़ गयी है वह भले ही न खुले और पास में जो धनराशि एकत्र हुई है वह भी न खर्च हो तथा शुभानन की आन भी मंद न हो और सारा जग भी मुझ से रूठ जाय परन्तु मेरे मन में परमपिता परमात्मा की भक्ति हमेशा विद्यमान रहे। कवि कहता है कि भले ही उलटी गति सीधी न हो और प्रत्येक व्यक्ति की दाल भी न गले अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा पूरी न कर सके परन्तु वह अपनी बात कभी न टाल सके और वह यदि यह बात जान लेता है तो यही कुछ कम नहीं है।

टिप्पणी—इन पंक्तियों में कवि निराला की भगवद्भक्ति का उत्कृष्ट रूप दीख पड़ता है।

१२६. दुख भी सुख का बंधु बना (पृ. १८४)

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने दुख को सुख के समकक्ष महत्व प्रदान किया है।

शब्दार्थ—प्रेयसी=प्रियतमा। श्रेयसी=बहुत शुभ, अत्यंत मंगलकारी। भीति=भय, डर। हेय—तुच्छ, साधारण, घृणित। उपादेय=उपयोगी।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि दुख भी सुख का भाई बन गया और पहले की रचना में परिवर्तन आ गया तथा परम प्रियतमा अब बहुत ही शुभ एवं मंगलकारी हो गयी। कवि का कहना है कि अब तक जिसे भय कहा जाता था वही दुःख अब गाने योग्य गीत बन गया और जिसे अब तक तुच्छ या घृणित समझा जाता था वह अब उपयोगी समझा जाने लगा तथा कठिन ने अब कमल, कोमल वचना का रूप धारण कर लिया। कवि कहता है कि ऊँचा स्तर अब नीचे आ गया और वृक्षों के नीचे छाया फैल रही है तथा ऊपर उपवन में फल उत्पन्न हो रहे हैं तथा अपना मन भी छल से मुक्त हो गया।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी का व्यापक जीवन दर्शन ही सरल सुबोध शब्दावली में व्यक्त हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि—महाकवि निराला के सदृश्य श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी दुःख और सुख में अभिन्न सम्बंध मानते हुए यही मत प्रकट किया है·

यह साँझ उषा का आँगन, आलिंगन विरह मिलन का।
चिर हास अश्रुमय आनन रे इस मानव जीवन का॥

१२१. ऊर्ध्व चन्द्र, अधर चन्द्र (पृ. १८४-१८५)

सन्दर्भ—प्रस्तुत कविता में महाप्राण निराला ने प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण किया है।

शब्दार्थ—ऊर्ध्व = ऊँचा, ऊपर की ओर। गुरु गर्जन = गंभीर गर्जना। रन्ध्र = छेद, छिद्र।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि ऊपर की ओर चन्द्र है और यह चन्द्र अधर के सदृश्य है तथा बादल भी मंद-मंद गति से आकाश में विचरण कर रहे हैं। कवि कहता है कि क्षण-क्षण में बिजली का प्रकाश हो रहा है और बादलों की गंभीर गर्जना में भी मधुरता का आभास होता है तथा कुज्झटिका का भी अट्टहास हो रहा है और अन्तर्दृग विनिस्तन्द्र हैं। कवि का कहना है कि इस संसार की सभी कलियाँ अभी बंद सी हैं और उन्हें देखकर यही अनुमान होता है कि मानो वे यतिहीन छन्द के समान हो तथा सुख की गति और भी अधिक मंद हो गयी है तथा एक-एक छिद्र भरता जा रहा है अर्थात् सृष्टि में शनैः-शनैः पूर्णता आ रही है।

टिप्पणी—केवल दस पंक्तियों की यह कविता लघु प्रकृति दृश्य की अभिव्यंजना की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

१२८. हे मनास के सकाल [पृ. १८५]

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि में मानवीय मनोभावनाओं का वर्णन किया है ।

शब्दार्थ—मानस = हृदय । अंतराल = घिरा हुआ स्थान, मंडल । अम्बर = आकाश । शारद घन = शरद ऋतु के बादल ।

व्याख्या—कवि का कहना है कि हे मानस के सकाल; तुम छाया के मंडल हो और तुम्हीं से आकाश की निलिमा में रवि एवं चन्द्रमा के प्रकाश का भी अनुमान होता है । कवि कहता है कि शरद् ऋतु के बादल आकाश मंडल में बिखरे हुए हैं और उनका गहन हास प्रत्यक्ष दिखाई देता है तथा तुम इस जगती के अंशुमाल भी हो । कवि मानस के सकाल को सम्बोधित कर कह रहा है कि तुम मानव के सुधर रूप का प्रतिरूप हो और मन की अमर भावनाओं का अतिरेक भी तुम्हीं में दीख पड़ता है तथा इस अभाव ग्रस्त विश्व के तुम सुन्दर माया के तमोजाल भी हो ।

टिप्पणी—महाप्राण निराला की इस कविता में अनुप्रास अलंकार की स्वाभाविक योजना हुई है और सरल एवं सुबोध शब्दावली का प्रयोग भी दर्शनीय है ।

१२९. जय तुम्हारी देख भी ली [पृ. १८६]

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने अपना जीवन दर्शन सरस वाणी में अभिव्यक्त किया है ।

शब्दार्थ—सुरीली = मधुर । जीर्ण = बहुत बुड्ढा, पुराना । जर्जर = पुराना, बुड्ढा ।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि मैंने रूप के गुण की मधुर विजय देख ली और मुझे समझ में आ गया कि जीवन की वास्तविकता क्या है ? कवि कहता है कि मैं अब भले ही वृद्ध हो गया हूँ पर मुझे जीवन की सार्थकता का ज्ञान है और मैं जानता हूँ कि ऋद्धि क्या है तथा साधना की सिद्धि क्या है ? कहने का अभिप्राय यह है कि कवि ने जीवन में कभी भी किसी भी

प्रकार की लालसा नहीं प्रकट की है और उसे चाहे जीवन में मान मिले या उपेक्षा, पर किसी भी बात का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथा, वह तो केवल साधना ही करता रहा है।

कवि यौवन की सुखद स्मृतियों का उल्लेख करते हुए कहता है कि किसी समय मेरे नेत्र ओजपूर्ण जान पड़ते थे और मैं प्रत्येक स्थिति एवं संकट का सामना करने के लिए तैयार रहता था पर अब मेरे माथे पर सिकुड़न पड़ रही है और शरीर पर नीली रेखा गहरी पड़ती जा रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि यौवन काल में रक्त की उष्णता रहती है और शरीर में सब कुछ करने का उत्साह रहता है पर वृद्धावस्था में रक्त की लालिमा शनैः-शनैः कम होती जाती है और उत्साह भी मंद पड़ता जाता है। इसी प्रकार कवि यहाँ मृत्यु की भी कल्पना कर रहा है और नीले रेखा से अभिप्राय मृत्यु की छाया से ही है।

कवि का कहना है कि अब जीवन में बुढ़ापा आ गया है और वृद्ध हो जाने के कारण शरीर की समस्त उष्णतारूपी स्फूर्ति समाप्त हो रही है तथा वह पहले जैसी मधुर रागिनी भी अब शांत हो चुकी है। साथ ही जीवन पुरानी मधुर स्मृतियों का स्मरण कर रहा है और में अब बहुत बड्ढा हो गया हूँ।

टिप्पणी—इस कविता में निराला जी ने मानव मात्र को यह प्रेरणा दी है कि वृद्धावस्था आने पर भयभीत नहीं होना चाहिए और चाहे कितनी ही भयंकर बाधाएँ मार्ग में क्यों न आवें पर मनुष्य को कभी भी विचलित न होना चाहिए।

१३०. पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा [पृ. १८६-१८७].

संदर्भ—प्रस्तुत कविता में महाकवि निराला ने अपने जीवन का सिंहावलोकन किया है।

शब्दार्थ—पत्रोत्कंठित = पत्र के लिए उत्कंठित या उत्सुक। प्रदीप = दीपक। दिङ-निर्णय = दिशाओं का निर्णय या दिशा ज्ञान प्राप्त करना। शरो = वाणों। निदाघ = ग्रीष्म, गर्मी।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है और हृदय कुंज में आशा का प्रदीप जलता है तथा अंधकार पूर्ण पथ में प्रकाश की एक ही किरण है तथा वह दिशा का ज्ञान करने वाले ध्रुव नक्षत्र के समान है। कवि का कहना है कि लीला की समाप्ति का समय फूलों के समान है जो कि फूलने के बाद फलते हैं और बाद में पत्तों पर झर जाते हैं। साथ ही सिद्ध योगियों या साधारण मानव के समान वह—कवि—भीष्म पितामह के समान बाणों की कठिन शय्या पर लेटा हुआ इस संसार की विषम स्थिति की ओर देख रहा है।

कवि कहता है कि गर्मी का मौसम अब मुझे शीतल जान पड़ता है और वर्षा भी सहज प्रतीत होती है तथा शरद्, हेमन्त, शिशिर एवं बसंत आदि ऋतुओं में कोई नवीनता नहीं रही और वे जीवन में सहज भाव से बीत रही हैं। कवि कहता है टिक् चुम्बित चतुरंग काव्य का युग बीत चुका है और गति, यति, ध्वनि, अलंकार, रास, राग एवं वाद्य छंद आदि के नियमों का समय भी अब नहीं रहा था क्रीड़ाएँ अब व्रीड़ा में परिणत हो गयीं और विरोधियों की मारें भी मूर्छित हो गयीं तथा अब उनके निशाने चूक जाने से उनके प्रहार का अनुभव नहीं होता। कवि कह रहा है कि उसकी खाल ढाल के समान तनी होने के कारण उस पर विरोधियों के आघात का कोई प्रभाव नही पड़ा और उसे तो मृत्यु के बाद भी पुनः नवीन प्रभात—नये सबेरे—का विश्वास है।

टिप्पणी—महाप्राण निराला की यह कविता ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसमें निराला जी का अदम्य आत्म विश्वास भी झलक उठता है।